वैदिक कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध

पर्यवेक्षक
डॉ० चन्द्र भूषण मिश्र
पूर्व आचार्य, संस्कृत—विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुसंधित्सु
ललित कुमार मिश्र
एम० ए० (संस्कृत—वेद)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
१६ नवंबर २००२

प्राक्कथन

वेद अतीन्द्रिय ज्ञान है। यह तप पूतपूज्य ऋषियों की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की देन है। इस वसुन्धरा पर प्राणिमात्र की सबसे प्राचीन उपलब्ध धरोहर है। वेद भारतीय जीवन का उपजीव्य तथा हिन्दू धर्म का आधार है। वेद जीवन में इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण में साधनभूत अलौकिक उपायों का ज्ञान कराता है। यह हिन्दुओं का प्राचीनतम विशिष्ट साहित्य है। ग्रंथवाची वेद शब्द ''विद्'' धातु से ''घञ्'' प्रत्यय लगाकर बना है। वैदिक साहित्य का तात्पर्य सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक् एवं उपनिषद् से है। मंत्र ब्राह्मणात्मक शब्द–राशि को ही एकीकृत रूप से वेद कहा गया है।–''मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्''। वैदिक वाङ्मय न केवल आधुनिक भारत के लिए अपितु समग्र मानवजाति के लिए प्राचीन–भारत की सर्वातिशायिनी एवं अतिसमृद्ध धरोहर है।

वेद की सत्ता ईश्वर की सत्ता की तरह सनातन एवं सार्वभौम है। ऋषियों नें उसका दर्शन कर वर्षों के चिन्तन–मनन द्वारा उन्हें संहिताओं के रूप में संकलित कर उसे आगे की पीढियो तक पहुँचाया है। वेदाङ्गों के द्वारा वेदों की भाषा एवं भाव को समझने का तथा इतने महत्वपूर्ण साहित्य की पूर्ण सुरक्षा का प्रयास किया गया है।

संहिताओं के अनन्तर मंत्रों के व्याख्यान के लिए ऐतरेय एवं शतपथादि ब्राह्मण ग्रंथों ऐतरेयारण्यक आदि आरण्यको तथा बृहदारण्यकोपनिषद् आदि उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् वेदार्थ के अनुशीलन के लिए शिक्षा, कल्प, छन्द, निरूक्त, व्याकरण एवं ज्योतिष आदि वेदाङ्गो की रचना हुयी।

वैदिक वाङ्मय में अनेक कथाएँ है। ऋग्वेद संहिता, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण तथा कठोपिनिषद, छान्दोग्योपनिषद एवम् वृहदारण्यकोपनिषद् आदि में कथाओं के माध्यम से अनेक दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक तथ्यो का व्याख्यान किया गया है।

अनुक्रमणी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहद्देवता में आचार्य शौनक नें ऋग्वेद के मंत्रों की अनुक्रमणी प्रस्तुत करने के साथ ही साथ ऋक्संहिता मे वर्णित अनेक कथाओं को किञ्चित् परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार आचार्य यास्क ने निरूक्त मे ऋग्वैदिक पदो के निर्वचन प्रस्तुत करने के साथ ही साथ अनेक कथाओं का वर्णन किया है। जो नामतः ऋग्वेद की कथाओं के समान होने पर भी स्वरूपतः भिन्न है। ये कथाएँ वैदिक आर्यो की सामाजिक आर्थिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक स्थिति की सूचना प्रदान करती हैं। इस प्रकार ये सभी कथाएँ भारतीय सस्कृति की सुदृढ़ आधार शिलाएँ है।

संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय से वेदवर्ग के छात्र के रूप मे परास्नातमक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् तदानीन्तन विभागाध्यक्ष प्रोफेसर हरिशंकर त्रिपाठी जी एवं गुरुवर्य प्रोफेसर चन्द्रभूषण मिश्र जी के आशीर्वाद से मुझे **"वैदिक कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन"** विषय पर शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

विषय–वस्तु विन्यास की सुगमता की दृष्टि से मैनें प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त किया है।

1. वैदिक कथाओं की उत्पत्ति
2. ऋग्वैदिक कथाएँ
3. ब्रह्मोद्य कथाएँ
4. वृहद्देवता में वर्णित कथाएँ
5. निरूक्त में वर्णित कथाएँ
6. वैदिक कथाओं का मूल्याङ्कन एवम् उनका संदेश

षष्ठ अध्याय शोध–प्रबंध के उपसंहारवत् है जिसमें पूर्ववर्ती पॉचों अध्यायों में वर्णित सामाग्री के आधार पर "वैदिक कथाओं का मूल्याङ्कन" प्रस्तुत किया गया है और उनमें निहित दार्शनिक वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवम् सामाजिक महत्त्व को सुस्पष्ट किया गया है।

शोध–प्रबंध के विद्वान परीक्षकों द्वारा परीक्षित होने के लिए प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सुनिश्चित समयावधि में शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करनें की अनिवार्यता के कारण यत्र–तत्र त्रुटियां अवश्यमेव हुयी हैं। एतदर्थ मैं सभी से क्षमा प्रार्थी हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में मैने जिन विद्वानों की कृतियों का अनुशीलन किया है, मै उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हुँ।

परम पूजनीय **प्रोफेसर डा० चन्द्र भूषण मिश्र** जी (पूर्व आचार्य संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) मुझे पुत्रवत् स्नेह प्रदानकर्ता एवम् मेरी जिज्ञासा के आदि गुरु हैं। मेरे अध्ययन रूचि को उद्दीप्त करनें में गुरूकृपा नें

एक विलक्षण शक्ति का कार्य किया है। मेरी प्रत्येक विकास कार्य में गुरुदेव का आशीर्वाद रूप प्रकाश सूर्य एवम् चन्द्र के समान मुझे समय—समय पर प्रकाशित करता रहा है। मैं उनकी असीम देववृत्ति का वर्णन करनें में असमर्थ हूँ। सम्प्रति मैं जो कुछ भी हूँ वह सब परमादरणीय गुरुदेव का ही कृपा—प्रसाद है, मै गुरुदेव को शतश. नमन करता हूँ ।

गुरुवर **प्रो० डा० हरिशंकर त्रिपाठी** जी (पूर्व विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) नें मुझे सतत आशीर्वाद प्रदान किया है। एतदर्थ मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

गुरुवर **डा० राम किशोर शास्त्री** जी (रीडर संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) का स्नेहिल आशीर्वाद मुझे अवाध गति से प्राप्त होता रहा है।ऐसे सतत प्रेरक श्रद्धेय गुरुवर को शत—शत प्रणाम।

परमादरणीया प्रो० डा० मृदुला त्रिपाठी जी (विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) से प्राप्त निरन्तर आशीर्वाद के लिए मैं उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

परमादरणीया **डा० रंजना** जी (रीडर संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) एवम् **डा० सुचित्रा मित्रा** जी तथा अन्य सभी विभागीय गुरुजन के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

उपर्युक्त सभी गुरुओं से प्राप्त ज्ञान—दीप ही मेरे शोध—मार्ग का प्रकाशक सिद्ध हुआ है। एततदर्थ मैं सभी को पौनःपुन्येन प्रणाम करता हूँ।

कीर्तिशेष पूजनीया जननी **श्रीमती सोना मिश्रा** की अदृश्य पुण्य प्रेरणा मुझे इस कार्य को सम्पन्न करनें के लिए उत्साहित करती रही है। इस शोध–कार्य की सम्पन्नता में उनका अदृश्य आशीर्वाद शोध–पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहनें में एक प्रबल पाथेय सिद्ध हुआ है।

आदरणीया माताश्री के आकस्मिक निधन के अनन्तर मेरे सम्बर्धन में मनसा, वाचा, कर्मणा तत्पर पूजनीय **पिताश्री श्री ब्रज लाल मिश्र** (अवकाश प्राप्त सस्कृत प्रवक्ता कान्ह शिक्षा निकेतन इण्टर कालेज करहिया बाजार रायबरेली) के पुनीत आशीर्वाद से ही मुझे इस शोध–प्रबन्ध को प्रस्तुत करनें का सुअवसर उपलब्ध हुआ। एतदर्थ मैं आप दोनों का चिर ऋणी रहूँगा।

पूजनीया पितामही **श्रीमती सम्पति मिश्रा** भी समय–समय पर मुझे इस पुनीत कार्य को यथा सम्भ्व शीघ्र पूर्ण करने की प्रेरणा देती रही हैं, मैं उनका भी चिर ऋणी हूँ।

शोध की पूर्णता में मेरे पितृव्यद्वय **श्री देवी प्रसाद मिश्र** तथा **श्री छोटे लाल मिश्र** (प्रवक्ता शारीरिक शिक्षा का०शि०नि०इ०कालेज करहिया बाजार, रायबरेली) एवम् ज्येष्ठ भ्राता **श्री रामकृष्ण मिश्र, श्री शीतला प्रसाद मिश्र** तथा श्री देव प्रसाद मिश्र का हार्दिक सहयोग रहा है। एतदर्थ मैं आप सभी लोगों का कृतज्ञ हूँ।

वैवाहिक जीवन की अनेक कठिनाइयों का सामना करती हुई मुझे अध्ययन करने एवम तत्पश्चात् शोध–कार्य में प्रवृत्त होनें की सतत प्रेरणादायिनी पाणिगृहीती **श्रीमती आशा मिश्रा** के अविस्मरणीय सहयोग से ही मेरा यह शोध प्रबन्ध निर्बाध पूर्ण हुआ है। एतदर्थ उन्हें साधुवाद प्रदान करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

आदरणीय राजा साहब "कैथौलेश" श्रीयुत् **श्री जगत् रणबीर महेश प्रताप सिंह** जी तथा उनकी साध्वी धर्मपत्नी करूणामूर्ति परमादरणीया रानी **श्रीमती सरस्वती** जी एवम् उनके आत्मजत्रय श्री **राजकुमार जगदेन्द्र प्रताप सिंह** जी, **श्री बाबू चन्द्र प्रताप सिंह** जी तथा **कुँवर सूर्य प्रताप सिंह** जी के अप्रतिम सहयोग के लिए मैं उनका चिर आभारी रहूँगा।

आदरणीय **डा० यशवन्त सिंह** जी एवम् **श्री अमरेश बहादुर सिंह** जी का स्नेह एवं उत्साहबर्धन मुझे सतत प्राप्त होता रहा है, मैं आप सबके प्रति भी आभार ब्यक्त करना अपना पुनीत कर्तब्य समझता हूँ।

अन्ततः इस शोध प्रबन्ध की लिखित अध्याय–सामग्री को यथा संभव शीघ्र टंकित करनें वाले एवम् इसे सुव्यवस्थित आकार प्रदान करने वाले भाई **श्री गुलाब चन्द्र मिश्र** जी के प्रति साधुवाद ज्ञापित करना मैं अपना पावन कर्तब्य समझता हूँ जिसके बिना मेरा यह शोध–प्रबन्ध निश्चित समयावधि में प्रस्तुत ही न हो पाता।

कार्तिक पूर्णिमा

१६ नवम्बर २००२

ललित कुमार मिश्र

विदुषांवशंवदः

ललित कुमार मिश्र
(शोध छात्र)
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रथम अध्याय

वैदिक कथाओं की उत्पत्ति

वैदिक कथाओं की उत्पत्ति

सृष्टि के उषःकाल में जिज्ञासु मानव ने अपने चारों ओर ऋतशासित प्रकृति की शक्तियों का अवलोकन किया । उसमें कुतूहल की राज्य वृतियॉं जगीं । उसने प्रकाशमान सूर्य को देखा, उसे देवत्व प्रदान किया । उसके विविध कार्यों के अनुसार उसे सविता, विष्णु, हिरण्यगर्भ आदि नाम दिये । सूर्य की तीनों गतियों की विष्णु का वेधा, विक्रमण कहा[1] । उषस् ने प्रतिदिन बन ठनकर चिरनूतन यौवन और नई रंगीनियों के द्वारा मानव के सौन्द्रय–प्रेमी मन को बरबस लुभाया[2] । उसने उसे 'युवतिः पुराणी' तथा 'पुनः पुनर्जायपाना पुराणी' कहा[3]। किसी ने उसे सूर्य की पत्नी और किसी ने सूर्य की मॉं तो किसी ने उसे प्रजापति की पुत्री के रूप में कल्पना की । प्रतिक्षण रूप बदलने वाली, अतएव मायावी बादलों का क्षितिज के छोर की ओर से घुमड़–घुमड कर उमडना और सूर्य रश्मियों का मंद पड जाना, उस पर पूर्व दिशा में सतरंगी तिरछी इन्द्र–धनुषी छटा और कभी–कभी बिजली की कडकड़ाहट, सब कुछ देखने के लिए उसकी आंखे मचल उठी । बूॅंदे आकाश से चतुर्दिक बरस पड़ी, और इधर–उधर बिखर गयीं । उसने जाना यह युद्ध है – 'इन्द्र और वृत्र का युद्ध' [4] । सूर्य इन्द्र है । उसकी रश्मियॉं उसकी गायें हैं । दिन भर चरते–चरते गायें प्रतीची के छोर की ओर पहुॅंची ही थीं कि रात्रि के निविर तमने अपने अङ्क मे समेट लिया । सूर्य की प्रथम रश्मि – सरमा ने गायों को प्रातः पुनः उन्मुक्त कर दिया । कवि की कल्पना में यह तथ्य 'वल कें बाड़े में बन्द इन्द्र की गायों और सरमा–पणि संवाद' के रूप में उद्‌भासित हुई[5]। रात के अन्धकार और दिन के

---

[1] निरूक १२ / १६

[2] ऋ०सं० १ / ६२ /४, ६ / ६४ /२ तथा १ / १२३ /११ आदि ।

[3] ऋ०सं० १ / ६२ /१० ।

[4] निरूक २ /१६ में यारक ने वृष्टि कर्म को इन्द्र ७वृत के युद्ध के रूप में प्रस्तुत हुए कहा है –अपाचज्योतिषश्चपिषीभाषकर्मणा वर्णकर्म जायते । तत्रोपपार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति –विवृध्या शरीरस्य स्रोतांसि निवारयात्रचकार तिस्मिन् हते प्रसस्यन्दि रे आय ।

[5] ऋ०सं० १० /१०

प्रकाश की ऑख मिचौली को निहारा : वैदिक कवि ने उसमे स्वर्ग से सीमाहरण की उद्‌भावना की [1] । उसने सूर्य को इन्द्र और चन्द्रमस् को गोतम कहा। सदैव साथ –साथ रहने के कारण रात्रि उसकी सहचरी और पत्नी है । दिन में लीन हो जाने के कारण वह अहल्या है। वह ऋषि की कल्पना मे इन्द्र–रूप सूर्य के पास अभिसरण करती है, उसकी गोद में छिप जाती है । अदित्य उसका जार है[2] । इस प्रकार सारी की सारी प्राकृतिक शक्तियों से संवद्ध–संघटनाओं नक्षत्रीय गति–विधियों सृष्टि की उत्पत्ति इल सबसे संबद्ध प्रश्नों का उत्तर उसने अपने जाने – पहचाने प्रतिदिन के जीवन में अनुभूत घटनाओं तथा सामाजिक संबधों के अनुरूप कथाओं की कल्पना कर देने का प्रयत्न किया । इसके लिए उसने इनके सघटनाओं से संबद्ध उन शक्तियों का दैवीकरण के साथ –साथ मानवीयकरण भी किया । उसे अवयवों से संयुक्त किया और कथाओं को जन्म दिया । सच तो यह है कि जैसे ही किसी प्राकृतिक – घटना से संबद्ध –शक्ति को मूर्त रूप दिया गया होगा । इस प्रकार पुरातन कथाओं का मूल तद्‌युगीन –मानव –मन है, जिसने प्राकृतिक – शक्तियों को मानव के समान शरीरी मान लिया गया[3]। इन्हीं कथाओं का बहुविधि विस्तार ब्राह्मणो में प्राप्त होता है । इन ब्राह्मण– ग्रन्थों में कर्मकाण्ड की संगति के लिये 'देवासुर – स्पर्धा' 'इन्द्र –वृत्र–युद्ध' 'देव –यजन' तथा 'सृष्टि–रचना' संबंधी कथाओं को अनेक प्रकार से कल्पित और विनियुक्त किया गया है । इसके अतिरिक्त संहिता तथा ब्राम्हणों दोनों में ही लौकिक– व्यक्तियों से संबद्ध घटनाएँ भी कथा रूप में उपनिबद्ध हुई है ।

कालान्तर में उन कथाओं में पर्याप्त विकास हुआ । कभी –कभी तो कथा मूल घटनां से इतनीं दूर चली गयी है कि मूल तथा उसकी विकसित कथा दोंनों

---

[1] ऋ०सं० १० /१०

[2] अहल्यायै जारः शत०ब्रा० ३४४१८ । तंत्रवार्तिक – १३६२ ।

[3] निरुक्त ७ /५–६

ज्वलन्त उदाहरणहै। कभी–कभी यह प्रकिया ऐतिहासिक कथाओं में भी दृष्टिगत होती है । हरिश्चन्द्र के यज्ञ में अजीगर्त द्वारा अपने पुत्र शुनश्शेष के रोहित के हाथ विक्रय से संबद्ध कथा[1] लोक में पर्याप्त परिवर्तित हो गई । लोक – कथाओं में हरिश्चन्द्र अपने पुत्र– रोहित और स्वयं को भी डोम के हॉथो बेचकर कंगाल का सा जीवन विताते है । अन्तर केवल इतना ही है कि जहॉ अजीगर्त अभावग्रस्त होकर पुत्र विकम आदि करता है, वहॉ हरिश्चन्द्र धर्म की रक्षा के लिए । ऋग्वेद में जहॉ प्रारम्भ में वशिष्ठ –विश्वामित्र में सौहार्द की मन्दाकिनी बहती थी, वहीं बाद में दोनों को परवर्ती साहित्य मे परस्पर घोर शत्रु कहा गया है[2]। इस प्रकार प्रायः समस्त कथाएं बहुशः मानव –जीवन की अनुभूतियों पर आधृत कवि की कल्पना के सहारे कर्मकाण्डीय प्रयोजन से पल्लवित हुई ।

वैदिक कथाओं का आदि –स्रोत

प्राचीन इतिहास के अनुसन्धाताओं का अनुमान है कि आर्यजन मूलतः किसी एक स्थान पर रहते हुए होगे और वहीं से संसार के विभिन्न देशो में फैले होगें । वस्तुतः इस अनुमान का आधार भारत की प्राचीन आर्य भाषा (वैदिक संस्कृत) से लेकर आयरलैण्ड तक की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक एवं भषावैज्ञानिक अध्ययन है। इन विभिन्न भाषाओं में प्राप्त प्राचीन कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह अनुमान पुष्ट होता है । इसके कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी । ऋग्वेद,[3] शतपथ ब्राह्मण[3] तथा तै० ब्रा० में त्रित आप्त्यों की कथा है । एकत, द्वित, और त्रित ये तीन भाई थे । शट्यायनियों की एक कथा के अनुसार[4] एकत और द्वित ने मिलकर तीसरे भाई त्रित को अंधेरे कुऐं में डाल दिया । त्रित ने मुक्ति हेतु

---

[1] ऐत० ब्रा० ३३–१ । कथा के विकास के लिए देखें –करवेदिक लिजेन्डस थ्रू एजेज – एच० एल० हरियणा ।
[2] ऋग्वैदिक लिजेन्ड्स थ्रू दि एजेज , एच० एन० हरियाणा ।
[3] ऋग्वैदिक लिजेन्ड्स थ्रू दि एजेज , एच० एन० हरियाणा ।
[3] शत० ब्रा० १ /२ /३ /१
[4] सृक० सं० १ /१०५ /१७ ।

कातर –भाव से देवताओ से प्रार्थना की । वृहस्पति ने उसकी प्रार्थना सुन ली और कुएँ से बाहर निकाल दिया[1]। बाद में त्रित ने इन्द्र के साथ त्रिशिरस् षडक्ष (६ आखों वाला) विश्वरूप का वध किया और गायो को मुक्त कर दिया । वृत्र –वध में भी उसने इन्द्र को सहायता प्रदान की।[2]

यह कथा अवेस्ता में भी वर्णित है । थ्रएतओन (– स० त्रैतन) अपने दो भाइयों के साथ अजीदहाक को मारने जा रहा था । मार्ग में दोनों भाइयों ने उसे मारना चाहा । किन्तु वह बच निकला । अन्ततः थ्रएतओन नें त्रिशिरस और ड्क्ष, अजीदहाक (– सं० अहिदंशक) को मार डाला । यह थ्रएतओन त्रित आथ्व्य का (–सं० त्रित आप्त्य) का पुत्र था[3] ।

ऐसी ही एक कथा स्लावीनिक आर्यों में भी प्रचलित है । इस कथा के अनुसार एक वृद्ध दम्पति के तीन पुत्र थे । उनमें से दो प्रकृत्या कुटिल थे । किन्तु तीसरा ईबान बड़ा वीर और सुशील था । इनके देश में एक सर्प के कारण दिन नहीं हो पाता था । सदैव रात्री ही रहती थी । ईबान ने उससे युद्ध किया और उसकी हत्या कर दी । सर्प के मरते ही यहॉ सूर्य के दर्शन हुए और दिशाऍं प्रकाशित हो गयीं ।

इन तीनों कथाओं में आश्चर्यजनक समानता है । तीनों में अन्धकार पर प्रकाश की विजय का संकेत है । यह सर्पराक्षस अन्धकार का प्रतीक है । ऋग्वेद में उल्लिखित इन्द्र द्वारा मारा गया 'दानु' 'अहि' तथा त्वष्टा का पुत्र (त्रिशिरस्) दोनों ही अवेस्ता के अजीदहाक के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं । हो सकता है त्रिशिरस् त्वाष्ट्र और अहि प्रारम्भ में एक ही रहे हों । त्रित आप्त्य, थ्रएतओन, और ईबान प्रकाश के देवता हैं । प्रकाश एवं अंधकार दोनों के संघर्ष में अवेस्ता का

---

[1] सृक० सं० १ /१०५ /१७ ।
[2] सृक० सं० १ /१८७ /१ ।
[3] हओमयश्त (यस्न ६) ।

थ्रएतओन जिसे अजीदहाक को मारने का श्रेय प्राप्त है, त्रित (—सं० त्रित) का पुत्र था । अन्तत. प्रकाश की विजय हुई । प्रारम्भ में त्वष्टा को मारने का श्रेय जो त्रित को प्राप्त था, ऋग्वेद में इन्द्र की प्रधानता के कारण इन्द्र को मिल गया।[1] शतपथ—ब्राह्मण[2] की कथा से भी यही तथ्य प्रमाणित होता है। अतएव बहुत कुछ संभव है कि पहले इन्द्र प्रकाश का देवता नही हो कर युद्ध एवं विजय का देवता रहा होगा[3]। ऋक् – संहिता में विष्णु – विक्रमण की कथा अनेकशः वर्णित है । इन्द्र के कहने पर विष्णु ने इन्द्र के सहायतार्थ लम्बे डग मारे थे । विष्णु ने तीन डगों मे तीनों लोकों को नाप लिया । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुरों से पृथ्वी मे अपना भाग लेने के लिए वामन—विष्णु को देवताओं की सहायता करनी पडी थी । स्वर्ग —प्राप्ति के लिए वे कहीं पृथ्वी में छिप गये थे । पुराणों की कथा के अनुसार बलि नें इन्द्र को जीत कर स्वर्ग प्राप्ति के उपलक्ष मे यजन किया । यज्ञ के समय विष्णु को वामन रूप धारण करना पडा । उन्होने दो पग में दो लोक तथा तीसरे पग में स्वयं बलि को ही नाप लिया और फलत. बलि को सदैव के लिए पाताल में रहना पड़ा । यह कथा भी अन्धकार पर प्रकाश की विजय का ही संकेत है । वृत्र वध के समय इन्द्र ने कहा था – 'हे सखा विष्णु ! लम्बे—लम्बे डग भरो'। इससे ज्ञात होता है कि जहॉ युद्ध हो रहा था, वहॉ विष्णु का एक पैर पड़ा था । युद्ध क्षितिज की छोर की ओर नीचे हो रहा था । फलतः विष्णु का पैर क्षितिज के नीचे पड़ा, जहॉ तीसरे पैर से बलि को पाताल लोक में कर दिया गया । इसीलिए विष्णु के दो पैर तो दिखायी पड़ते है, पर तीसरा नहीं । सूर्य की वार्षिक—परिक्रमा के तीन—भाग तीन पद माने जा सकते हैं । दो डगों से प्रकाश बहुल आठ महीने व्यंजित होते है । बाद के शेष चार महीने बहुल होने के कारण क्षितिज के नीचे पड़ने वाले डग के प्रतीक है । इसीलिए पुराणों में विष्णु को चार महीने तक शेष

---

[1] पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, 'इन्द्र इन ऋग्वेद एण्ड अवेस्ता एण्ड विफोर चतुर्थ' आ० इ० ओ० का० १६२६ ।
[2] शत० ब्रा० १ / २ / ३ /१ और आगे ।
[3] वही पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, 'इन्द्र इन ऋग्वेद एण्ड अवेस्ता एण्ड विफोर चतुर्थ', आ० इ० ओ० का० १६२६ ।

शैय्या पर निमग्न बताया जाता है । वह शेष–शैया अंधकार की प्रतीक है दूसरी संभावना के अनुसार दिन में सूर्य को प्रातः और मध्याह्न गति विष्णु के दो डगो की, तथा सन्ध्याकालीन गति तीसरे डग की सूचिका हो सकती है ।

यूनानी आर्यों से मिलते–जुलते फ्रीजियन आर्यो में भी ऐसी ही एक कथा प्रचलित है , जिसमें ऐसा संकेत है कि उनके देवता विष्णु की भांति शीतऋतु में निद्रा निमग्न रहते थे और ग्रीष्म में कार्य–रत हो जाते थे। इनकी कुछ कथाओं से ऐसी ध्वनि निकलती है कि उनके देवता शीतकल में कारागार में बन्द रहते थे, और ग्रीष्म में मुक्त हो जाते थे इसी प्रकार आयरिश आर्यों में भी एक कथा है जिसमें वहॅ के निवासी बहुत काल तक एलिल, मेडिल एवं फिगनोग के आक्रमण से परेशन रहते थे। इससे भी वर्ष में कुछ समय तक अंधकार रहनें का ज्ञान होता है। इस प्रकार इन सभी कथाओं में शीत और अंधकार पर ऊषा और प्रकाश की विजय का ही संकेत है।

वैदिक साहित्य में इन्द्र–वृत्र–युद्ध का अनेकशः वर्णन मिलता है। वृत्र सभी पदार्थों को आवृत्त की कर स्थित हो जाता है। इन्द्र को मारते हैं मृत कर वृत्र के शरीर के चारों ओर चारों ओर समुद्र ही समुद्र हो जाते हैं और प्रकाश हो जाता है, वृत्र को मार कर इन्द्र 'वृत्रहा' हो गया। इसी प्रकार का युद्ध अवेस्ता में तिश्क्षय और अपौष के मध्य कुरुकुस समुद्र में हुआ था। वह कुरुकुस कहीं बादलों के मध्य स्थित था । अपौष वर्णा को रोक लेता है। तिश्थ्य उससे युद्ध करता है। पहले उसकी हार होती है, किन्तु अन्ततः वह 'वाजस्ति' से अपौष को मार डालता है। जल युद्ध में अपौग पर विजय प्राप्ति के अनन्तर तिश्थ्य के प्रकट होनें की अवधि एक रात्रि, दो रात्रि, पचास तथा सौ पर्यन्त मानी गयी है । अन्ततः जल–राशि प्रकाश का उद्धार हो जाता है। इसी प्रकार की एक कथा नार्स साहित्य में भी है। शीतकाल के अंधदेवता 'टोडर' ग्रीष्म के देवता वाल्डर पर विजय प्राप्त कर उसे मार डालते हैं

परन्तु अन्त में वाल्डर का भाई अंध देवता के रूप में होडर को मार कर भाई की मृत्यु का बदला ले लेता है।[1] इन तीनों कथाओं में पर्याप्त समानता है। तीनों मे अवर्षण पर ऊष्मा और वर्षा की विजय सकेतित होती है। ऋग्वेद में वृत्र–वध का जो श्रेय इन्द्र को मिल गया है, वह अवेस्ता में वेरेथ्रघ्न को न मिलकर तिस्थ्य को मिला।

विश्व के अन्य देशों की अनेंक कथाओं तथा नवग्वों की इस कथा में बहुत अधिक साम्य होता है। इन सभी कथाओं अन्धकार पर प्रकाश की विजय का ही संकेत है।

ऋग्वेद संहिता[2] में यम–यमी की कथा है। यम–यमी विषयवस्तु एवम् सरण्यू की यमज संतानें हैं। एक बार यम यमी से आग्रह करती है कि मै समुद्र–मध्य इस निर्जन प्रदेश में तुम्हारे सहवास के लिए उत्कण्ठित हूँ। क्योकि सायं प्रातः आकाश में तारे रहते है, अतएव उस समय एकान्त नहीं मिलता। यम उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। अवेस्ता में भी यिम और यिमेंह की यही कथा मिलती है, जिसमें यिम् (यम) यिमेह के प्रणय –प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है।[3] शतपथ ब्राह्मण में जल प्लावन की कथा है। जल प्लावन सारी प्रजाओं की मत्स्य बहा ले जाता है। मनु वैवस्वत् के कहने पर नौका मे आरूढ होकर प्रतीक्षा करते है। मत्स्य उन्हें ऊँचे पहाड़ पर पहुँचा देता है, जहाँ वे आहुतियों से उत्पन्न अपनी प्रजा के साथ सहवास करके सन्तानोत्पत्ति करते है। अवेस्ता में भी यही कथा आई है। जहां विवङ्हत् पुत्र यिम सारी उपयोगी सामाग्रियो को नौका में रखकर उन्हें बचा लेते है।

---

[1] दि आर्कटिक होम आफ दि वैदाज पृ०ण २६६

[2] ऋ० सं० ३/३६/५

[3] भारत और ईरान में यमी यममी की कथा में उपलब्ध वैषम्य दोनों देशों की भिन्न संस्कृतियों में यम यममी के प्रस्ताव की ठुकरा देता है, और इरान में मान लेता है। ऐसा दोनों देशों की सामाजिक प्रथाओं में अन्तर के कारण है। ईरान में मिस्र और बेबिलोनिया के समान रक्त संमबद्ध सबसे में निकट की कन्या से विवाह करने का प्रथा रही है। किन्तु भारतीय संस्कृति में सगे भाई बहिन का विवाह वर्जित है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथा अन्य अनेक कथाओं में सारी, घटनाओ तथा उद्देश्यों की समानता देखते हुए यह निष्कर्ष अपरिहार्य हो जाता है कि आर्या जनों की अविभक्त स्थिति में ही इन कथाओं का जन्म हो चुका था और उनकी विभिन्न शाखाओं नें उन्हें अपने मूल स्थान से दाय के रूप में प्राप्त कर विभिन्न रूपों में विकसित किया।

वैदिक कथायें और वैदार्थ–निर्धारण संबंधी विविध सम्प्रदाय–

ब्राह्मणों और उपनिरूषदों में वैदिक मंत्रों की व्याख्या प्रायशः याज्ञिक कर्मकाण्ड के प्रसंग एवम् में अध्यात्म में की गई है। किन्तु उनमें कभी–कभी अन्य प्रकार के अर्थों का भी सद्भाव दीख पडता है। कहीं मंत्रों, कर्मो और पदार्थो के विनियोग और उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथाएं कहीं गई है तो कहीं पर निरूक्तियो का विन्यास । कहीं–कहीं पर अध्यात्मिक अर्थो के भी संकेत हैं। उपनिषदों में तो इसी अर्थ को ही प्रधानता है। इतनी विभिन्नताओं के होने पर भी ब्राह्मणों का कलेवर व अतीव संगत एवं सुगठित है। इन ब्राह्मण ग्रंन्थों में कहीं भी अध्ययन संम्प्रदायों के उल्लेख नही मिलते हैं।

वैदिक अर्थो से संबद्ध विविध सम्प्रदायो का उल्लेख निरूक्त में मिलता है। यास्क ने ऐसे १२ सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इन विभिन्न सम्प्रदायों में वैदिक कथाओं की व्याख्या भिन्न भिन्न प्रकार से उपलब्ध होती है।[1] अतः यहां पर इनका परिचय प्रसंग प्राप्त है–

१. पूर्व याज्ञिक   २. याज्ञिक

३. नैदान   ४. वैय्याकरण

५. परिव्राजक   ६. अध्यात्म

७.अधिदैवत्   ८. आर्ष

६. टात्मप्रवाद   १० आख्यान समय

११. ऐतिहासिक   १२. नैरुक्त

१. पूर्व याज्ञिक सम्प्रदाय

पूर्वयाज्ञिकों का उल्लेख निरूक्त (७/२३) में मिलता है वैश्वानर को आदित्य मानते हुए उल्लिखित इस प्रसंग मे वे है। पूर्व याज्ञिक नाम से ही स्पष्ट हैं कि उनके तर्क प्रकृति में कर्मकाण्डीय रहे होगे और यास्क के उल्लेख से भी विदित होता है, कि ये लोग वैदिक–मत्रों का अर्थ वैदिक यागो और तत्सबद्ध विविध कर्मों के प्रसंग में ग्रहण करते हैं।[1]

२. याज्ञिक

याज्ञिकों के मत का उल्लेख निरुक्त में एव ४३–कुल ६ बार हुआ है। नि० _में ऋक्संहिता केसरासि त्रिंशतम् आदि की व्याख्या के संबंध में उनका मत उद्धृत् है। नि० में से देवता रहित मंत्र को प्रआपत्य मंत्र कहते हुए बताए गए है। नि० ऐसा निर्देश है कि याज्ञिक लोग , अनुमति, एवं राका को पूर्णिमा की रात्रि मानते हैं। तथा में ये सिनीवाली की अमावस्या की पूर्वरात्रि तथा कुछ को बाद की रात्रि बताते है। याज्ञिको को वैदिक मंत्रों में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त कोई भी अन्य अर्थ स्वीकार नहीं है। संभवतः उत्तर काल में मीमांसक याज्ञिकों की परम्परा के ही पोषक रहे हैं।

३. नैंदान

---

[1] यथासावादित्यहृति पूर्वे याज्ञिकाः एषां लोकानाम् राषेण सवनाम् रौह आम्नात। रोहात्प्रत्यवरौहश्चिकीर्षित तामनुकृतिम् हातापि मरुते शस्त्रे वैश्वानरीयेण युक्तेन प्रतिपद्यते।। नि०७/२३

नैदानों का उल्लेख निरुक्त ६/६ तथा ७/१२ में मिलता है। नि० ६/६ में ये 'स्याल' निर्वचन संबंध में समीप होने में निष्पन्न मानते हुए कहे गये हैं, किन्तु नैरुक्त लोग इसको व्युत्पत्ति स्यात्लाजान् आवपति— शूर्प से लावे विखेरता है नि० ७/१२ में नैदान साम को ऋचा सम मेनै, किन्तु नैरूक्त सम्मितं ऋचा कहते है। नैदान सम्प्रदाय वस्तुतः नैरुक्तो से दो अर्थो मे —१ अर्थ को प्रधान मान कर संज्ञाओं को धातुओं से निष्पन्न मानते एवं २. शब्द के विकास के सम्बन्ध में सहायक के रूप में दृष्टिगत होता है।

४. वैय्याकरण

निरुक्त १/१२, ६/५ तथा १२/६ में वैय्याकरणों के मतों का निर्देश है। नि० १/१२ में नैरुक्त संज्ञाओ को धातुज मानते है। किन्तु कुछ वैय्याकरण उनसें असहमत वर्णित है। नि० ६/५ में मण्डूक को व्युत्पति है। वैय्याकरण माण्डूक को 'मण्ड' से किन्तु नैरुक्त 'यस्य' या मंद से निष्पन्न मानते है। नि० १३/६ में इन्हें चत्वारि वाक् का अर्थ नामाख्यातोपसर्गनिपात' करते हुए कहा गया है। वैय्याकरण सम्प्रदाय निश्चय ही नैरुक्तों से भिन्न था। यास्क ने निरुक्त १/५ में इसे व्याकरण का पूरक कहा है। परन्तु वैयूयाकरणों और नैरूक्तों को एक नहीं माना जाता सकता है। दोनों में मौलिक अंतर था। नैरूक्त शब्द के अर्थ पर अधिक जोर देते हुए भी उसके रूप पर भी ध्यान देता है, जब कि वैय्याकरण केवल रूप का भी ही विवेचन करता है।

५. परिब्राजक

नि०२/८ में वहुप्रजा निऋतिमा विवेश ऋ०स० १/१६४/३ की व्याख्या के प्रसंग में 'परिब्राजक निऋतिमाविवेश का अर्थ कृच्छमापद्यते' करते है। संभवतः परिब्राजक लोग भ्रमण करने वाले संन्यासी थे। अतः

वैदिक अर्थों के संबंध में उनका दृष्टिकोण किञ्चित् दार्शनिक एवं आधिभौतिक रहा होगा।

६. अध्यात्म–

अध्यात्मवादियो का उल्लेख निरूक्त १०/२६, १२/३७, तथा १२/३८ में हुआ। निरूक्त १०/२६ तथा १२/३७ में शरीर सप्तरदान्ति सदभप्रमादम् एवम् नि० १२/३८ में अध्यात्मवादियों और उनके अर्थो का निर्देश है।

७– अधिदैवत

अधिदैवत अर्थ बताने वालों का उल्लेख लिरूक्त १०/२६ एवं १२/३८ में किया गया है । निरूक्त १०/२६ में विश्वकर्मा विमना .... आदि की व्याख्या है तथा नि० १२/३८ में तिर्यग्विलश्चसुख ऊर्ध्वध्नः आदि की व्यख्या है। इन दोनें अस्थानो पर स्थानों पर अधिदैवत अर्थ करने वालों का निर्देश है।

८.६ आर्ष और आत्म प्रवाद

नि०१३/६ में आर्ष और आत्मप्रवाद संप्रदायों के दृष्टिकोण उद्धृत हैं पहले संप्रदाय आर्ष की व्याख्या आधिभौतिक और दूसरे सम्प्रदाय आत्मप्रवाद की व्याख्या प्राकृतिक विज्ञानों से प्रभावित प्रतीत होती है।

१० आख्यान समय

इस सम्प्रदाय का उल्लेख नि० ७/७ में मिलता है।इनका विश्वास है कि वैदिक मंत्रों में प्राप्त देवगण का वर्णन केवल आलंकारिक हैं । वे ऐतिहासिक व्यक्ति नही है। इन प्राकृतिक घटनाओं में और प्रकृतिक शक्तियों में मानवीय घटनाओं एवं गुणों का आरोप कर दिया गया है। सम्भवतः इसी सम्प्रदाय में वैदिक वर्णनों की

व्याख्या कथाओं के रूप में की होगी । इस प्रकार आख्यान सम्प्रदाय और नैरुक्त सम्प्रदाय में व्यापक समानता दीख पडती है।

११.ऐतिहासिक

ऐतिहासिकों का उल्लेख नि०२/१६, १२/२१ तथा १२/१० में मिलता है। नि० २/१६ ऐतिहासिक वृत्र को त्वाष्ट असुर मानते हैं। नि० १२/१ में अश्विनों को पुण्यभृतौ राजानौ कहा है। नि० १२/१० में तथा ऋग्वेद १०/१७/२ में मिथुना शब्द को यम–यमी का वाचक और इसी सम्बन्ध में इनके माता–पिता विवस्वान और सरण्यू को ऐतिहासिक व्यक्ति कहा गया है। आख्यान समय और ऐतिहासिक सम्प्रदाय में वस्तुतः भेद रहा होगा क्योंकि आख्यान समय कथाओं के नायकों को प्रकृति शक्ति का मनवीकृत रूप मानता है जबकि ऐतिहासिक उन्हें वास्तविक पुरूष बताता है।

१२.नैरुक्त

नैरुक्त सम्प्रदाय का उल्लेख नि० १/२, १/२/२/८, २/१४, २/१६, ३/८, ३/१४, ४/११, ४/२४, ५/१, ५/११, ६/३, ६/११, ७/४/५, ८/१३, ६/४, ११/२६, २६/३१ तथा १२/४१। में कुल २० बार हुआ है। इस सप्रदाय में अनेक आचार्य हुए जिनकी कृतियाँ अनुपलब्ध हैं और यास्क इस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि हैं । ये कुछ निश्चित सिद्धान्त के अनुसार संज्ञाओं की व्युत्पत्ति धातुओं से करते हैं। ये लोग शब्दों के विकास के कई क्रमों का निर्देश करते हैं । इस लिए निर्वचन के लिए वाह्य कलेवर पर कम और उनके अर्थ पर अधिक जोर देते हैं। वेदार्थ निर्धारण सम्बन्धी इन विविध सम्प्रदायों में से केवल पूर्वयाज्ञिक, याज्ञिक,

अधिदैवत, आख्यान समय, ऐतिहासिक और नैरुक्त ऐसे सम्प्रदाय हैं जिन्होनें वैदिक कथाओं की व्याख्या में यत्र–तत्र अपनीं दृष्टि के अनुसार योग दिया है।

आचार्य सायण नें 'वेदार्थ–प्रकाश के रूप में वैदिक अध्ययन की परम्परा का ऐस सम्प्रदाय प्रचलित किया जिसे सभी सम्प्रदायो का समन्वित रूप कहा जाय तो अनुचित न होगा। यद्यपि 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' में ये याज्ञिक सम्प्रदाय से सहमत एवं संबद्ध प्रतीत होते थे, किन्तु इनके वेदार्थ प्रकाश में स्थान स्थान पर व्याकरण का स्पष्टीकरण है। व्युत्पत्ति बतानें के लिए यास्क के निरुक्त का भी उद्धरण दिया गया है। प्रत्येक मंत्र का याज्ञिक विनियोग बताया गया है। कहीं कहीं आवश्यकता पडनें पर कथाओं का भी निर्देश है तथा उनमें से कुछ कथायें तो सम्प्रति प्राप्त वैदिक वड्मय में अन्यत्र नहीं भी मिलती है। इस प्रकार वेदार्थ प्रकाश के रूप में सायण नें भी सम्प्रदायों को एक सुसंगठित रूप दिया। 'वेदार्थ–प्रकाश आज वैदिक–अध्ययन में एकमात्र सहारा है। आधुनिक विद्वान विल्सन तथा कोलब्रुक भी इसी का अनुगमन करते हैं।

आधुनिक युग में पश्चात्यों के वेदाध्ययन के फलस्वरूप भाषाविद्–सम्प्रदाय के उन्नायक जर्मन विद्वान रॉथ है। उन्होंने १८४६ ई० में 'वेद का साहित्य तथा इतिहास' एवं 'सेन्टपीटसबर्ग' संस्कृत जर्मन महाकोश का निर्माण किया जिसमें प्रत्येक शब्द का अर्थ और उसका विकास में दिया गया है। वैदिक शब्दो का अर्थ संकलन स्वयं रॉथ ने तथा लौकिक शब्दों का बोथलिंग ने किया। इस अध्ययन धारा से संबद्ध अन्य विद्वानों में ग्रासमान केई तथा ए० बर्गे के नाम उल्लेखनीय हैं। ग्रासमैन ने १८७६–७७ ई० में ऋग्वेद का पद्यानुवाद तथा १८७३–७५ ई० में ऋग्वेद कोष की रचना की। इस संप्रदाय की यह धारणा है कि वेदार्थ निर्धारण के लिए भारतीय परंपरा की अपेक्षा तुलनात्मक भाषा विज्ञान, देव शास्त्र तथा आर्य जातीय

रीतिरिवाज अत्यधिक आवश्यकता है। मत्रो की व्याख्या मे प्रयुक्त प्राचीन व्याख्याताओं द्वारा प्रयुक्त कथाओं में इनकी आस्था नही प्रतीत होती।

भाषाविद् संप्रदाय के साथ ही साथ पाश्चात्य विद्वानों का एक वर्ग ऐसा था, जो वेदार्थ निर्धारण के लिए सायण के द्वारा प्रदर्शित मार्ग को ही श्रेयस्कर मानता था। यह वर्ग तुलनात्मक भाषाविज्ञान को वैदिक साहित्य के प्रसंगों तक ही सीमित रखता है। पिशेल एवं गोल्डनर का 'वैदिक स्टूडियन' इस दिशा मे एक स्तुत्य प्रयास है। गोल्डनर का ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद, तथा कोश वैदिक शोध के दृढ स्तम्भ है। एच० एच० विल्सन ने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद किया। राजवाडे ने अपने 'वर्ड्स इन ऋग्वेद' (भाग–१ पूना) तथा वेकट मुब्बैयां ने 'वैदिक स्टडीज '.(भाग–१ मैसूर) नामक संग्रह में कतिपय शब्दो के अर्थ की छानबीन समस्त वैदिक प्रसंगो की तुलना के आधार पर की है। १८५० ई० में एच० एच० विल्सन ने, १८८६.६२ में टिप्पणियों के साथ रा० टी० एच० ग्रिफिथ ने तथा १६०६ से १६१२ ई० में पूर्ववर्ती पंडितों की व्याख्याओं के निर्देशन में ओल्डेन वर्ग ने ऋग्वेद का अनुवाद प्रस्तुत किया। इन सब ने सायण के भाष्य का पूर्ण उपयोग किया है। तथा सायण द्वारा उद्धृत कथाओं को भी मान्यता दी है। १८७६.८८ में लुडविग ने भी ऋग्वेद का अनुवाद किया जो पर्याप्त स्वतंत्र होने के बावजूद भी सायण के प्रभाव से वंचित नहीं है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के भाष्यों में नूतन अर्थ परंपरा की उद्भावना की, जिसे हम विज्ञानाध्यात्म संप्रदाय कह सकते हैं। इनके अनुसार वैदिक शब्दों का अर्थ नितांत निगूढ़ है जिसके ज्ञान के लिए आर्ष दृष्टि अपेक्षित है। संहिताओं की अपौरूषेयता तथा उसके शब्दों की यौगिकता या योगरूपिता स्वामी जी के भाष्य की आधार शिला है। इनके अनुवर्तकों की लम्बी परंपरा में सातवलेकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दुर्गाप्रसाद ने सहिताओं का

अनुवाद (लाहौर १६१२–२०ई०)किया जो आर्य समाज से प्रभावित है। वैदिक कथाओं की व्याख्या में भी इनका अध्यात्मपरक ही आग्रह है।

श्री अरविन्द ने ग्रेटनेस ऑफ इण्डियन लिटरेचर (सी० आर० ५८) में एक भिन्न पद्धति पर बल दिया है। जिसे हम मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक संप्रदाय कह सकते हैं। इनके हिन्स टू दि मिस्टिक फायर में पर ऋग्वेद के प्रारम्भिक अग्नि सूक्तों की व्याख्या इसी पद्धति पर आधारित है। इनकी दृष्टि में वद मंत्र विभिन्न आर्ष प्रज्ञा की तपः पूत रश्मियों से आलोकित हैं। उपनिषदों में बहुशः व्याख्यात अद्वैत तत्त्व संहिताओं में ओतः प्रोत हैं। इसी पद्धति का अनुसरण कर कपाली शास्त्री ने ऋग्वेद के प्रारम्भिक सूक्तों पर दो व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं।

मधुसूदन ओझा ने वैदिक विषयों पर लगभग दो सौ निबन्ध लिखकर वेदों में आध्यात्मिक अर्थ पर जोर दिया है जिसका अनुसरण उनके शिष्य महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने किया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी दि वेदाज एण्ड दि 'अध्यात्म ट्रेडिशन' में अध्यात्म अर्थ पर बल दिया तथा अनेक निबन्धों में अध्यात्म अर्थ का पल्लवन भी किया। लोकमान्य तिलक, डा० रामशास्त्री तथा राजाराव के विविध निबन्धों में ज्योतिष संप्रदाय की प्रतिष्ठा हुई तथा साथ ही लोकमान्य तिलक ने 'आर्कटिक होम आफ द वेदाज' में वैदिक कथाओं की व्याख्या प्रकृति के प्रकाशान्धकार पक्ष के अनुरूप की है।

डा० ए० के० कुमारस्वामी[1] ने वेदार्थ ज्ञान के लिए भक्तों तथा अध्यात्म प्रवण मनीषियों के जीवन दर्शनो का सहारा लेना आवश्यक बताया है। प्रो० नीलकंठ शास्त्र संहिता के चतुर्थ विभाग को भारतीय विचारधारा के चार क्रमिक स्तरों का प्रतीक मानते हुए वेद के अपौरुषेयत्व का खण्डन[2] करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेको विद्वानों ने संहिताओं और ब्राह्मणों का अनुवाद किया। के० सी० राव ने ऋग्वेद का तेलगू में तथा डी० आर० एस० वेंकट कृष्णैया ने कन्नड़ी[3] में अनुवाद किया। डी० लहरी ने चारों

---

[1] न्यू अप्रोच टू दि वेदाज, लन्दन १६३३ ई० तथा ऋग्वेद एज लैंडनंबक, लन्दन १६३५

[2] इण्डियन हिस्ट्री कान्फ्रेंस १६४०

[3] बैंगलोर १६१३–१५ ई०

संहिताओं का बंगला[1] में अनुवाद किया। के० त्रिवेदी[2] ने अथर्ववेद का हिन्दी अनुवाद, पी० के० नंबूदरी ने मलयालम,[3] चिन्नशास्त्री[4] तथा पटवर्धन[5] ने ऋक्संहिता का मराठी अनुवाद प्रस्तुत किया। रामगोविन्द त्रिवेदी ने ऋग्संहिता का हिन्दी अनुवाद किया। डब्ल्यू० एच० हिवटनी तथा लैनमैन[6] नें अथर्ववेद, जी० जे० एगलिंग नें[7] शतपथ हाग ने ऐतरेय ब्राह्मण, कीथ[8] ने ऐतरेय तथा कौषीतकि, तथा डा० कैलेन्ड[9] ने गोपथ ब्राह्मण का अनुवाद प्रस्तुत किया। यदि भारतीय विद्वानों नें वेदों को अपौरूषेय ईश्वर निःश्वसित कहकर उसकी व्याख्या की है तो पाश्चात्यों तथा तद्नुयायी भारतीयों ने उसे केवल इतिहास के पुनर्निर्माण की सामग्री समझा है।

ऋकसंहिता में कथाएं

ऋकसंहिता का अधिकांश भाग स्तुति एवं प्रार्थना रूप है किन्तु फिरभी उसमें विविध आख्यान कथा तथा उनके बीज विद्यमान है। इन आख्यानों का इनकी प्रकृति एवं वर्णन शैली के आधार पर चार वर्गो में बॉट सकते हैं–संवादात्मक, वर्णनात्मक, दानस्तुतिपरक तथा देवों के विविध कार्यों से संबद्ध।

विंटरनित्स के अनुसार ऋग्वेद में संवादों की संख्या कुल बीस हैं। ओल्डेन वर्ग ने इन्हें आख्यान की संज्ञा दी है, और उन्हें प्राचीन आख्यानों का अवशिष्ट अंश कहा है। ये प्रारम्भ में गद्य पद्यात्मक थे। पद्यांश अपेक्षाकृत अधिक मंजुल होने से अवशिष्ट रह गये, जबकि गद्यांशों का धीरे–धीरे लोप हो गया। डा० सिल्वॉ लेवी,

---

[1] हावडा १६१६
[2] प्रयाग १६१२–२१
[3] _ १६२५
[4] पूना १६२८
[5] पूना १६४२
[6] ह० ओ० सि० जित्स ७–८ १६०५
[7] प० प्रा० ग्र० १२, २६,४१,४३,४४
[8] ह० ओ० सी० १६२०
[9] विब्लि कलकत्ता १६३२

डा० श्रोदर तथा डा० हर्टल ने इन संवादों को नाटक का अवशिष्ट अंश कहा है जिनका संगीत वाद्य एवं पात्र के उचित सन्निवेश कर देने पर यज्ञ के अवसरों पर अभिनय होता था। प्रो० विन्टरनित्ज की दृष्टि में ये संवाद सूक्त वस्तुतः प्राचीन भारतीय वीरगाथा काव्य हैं। इन वीरगाथाओं में नाटकीय तथा आख्यानतत्त्व का होना यह सिद्ध करता है कि ये गाथाएं महाकाव्य तथा नाटकों की मूलस्रोत हैं। आख्यान से महाकाव्य विकसित हुए और अभिनयादि से नाटक। प्राचीन आख्यानों की रचना सर्वथा गद्यात्मक नही हुआ करती थीं। कथा की भूमिका उपसंहार तथा कथाओं का परस्पर संबन्ध गद्यमय होता था। अथवा यह भी संभव है कि प्रारंभ में कुछ छोटी–छोटी लोक कथाएं भी प्रचलित रहीं हों और उनके अभाव में इन संवाद सूक्तों के स्पष्टीकरण में बाधा पड़ रही हों।

किं बहुना एक ओर तो ये संवाद सूक्त पूर्णतः आख्यात्मक हैं तो दूसरी ओर अंशतः। पं० बलदेव उपाध्याय भी इसी मत से सहमत प्रतीत होते हैं।[1] ऋकसहिता के प्रसिद्ध संवाद अधोलिखित हैं–

१. अगस्त्य, लोपामुद्रा १/१७६

२. इन्द्र अदिति और बामदेव ४/१८

३. अगस्त्य, इन्द्र तथा मरूदगण १/१६५, १७०, १७७

४. विश्वामित्र–नदी ३/३३

५. वशिष्ठ–इन्द्र ७/३३

६. यम–यमी १०/१०

७. मीन धीवर तथा आदित्य ८/६५,६६

८. सरमाणि १०/१०८

---

[1] पं० बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृत

६. इन्द्र, इन्द्राणी तथा वृषाकपि १०/८

१०. पुरूरवा–उर्वशी ६०/६५

११. अग्नि तथा देवगण १०/५१,५३

इस प्रकार कुल बाइस कथाएं वर्णनात्मक और आत्मकथात्मक हैं। उनमें से तीन कथाएं पुरूषोत्पत्ति १०/६० हिरण्यगर्भोत्पत्ति १०/१२१ तथा सृष्टि्युत्पत्ति १०/१२६, दार्शनिक तथ्यों का उद्‌घाटन करती हैं। वस्तुतः कथात्मक शैली मे वर्णित होने तथा ब्राह्मणगत अनेक कथाओं का मूल आधार होने के कारण हम उन्हें भी कथा रूप में ग्रहण कर सकते हैं। जुआरी की कथा, आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण है। गृत्समद और नचिकेता की कथाओ की स्थिति वर्णनात्क तथा संवादात्मक के मध्य की हैं। इन कथाओं की सूची इस प्रकार है–

१. कक्षीवत् और स्वनय १/१२५

२. दीर्घतमस्

३. गृत्समद २/ १२

४. वशिष्ठ–विश्वामित्र ५३,७/३३

५. सोमावतरण ३/४३

६. त्रयरुण और वृषजान ५/२

७. अग्निजन्य ५/११

८. श्यावाश्य आत्रेय ५/२२

६. अश्विन और यतियाज ६/५२

१०. सरस्वती और वध्य्रश्व

११. बृहस्पति जन्म ६/७१

१२ सुदास ७/१८

१३. नहुष ७/६५

१४ जुआरी १०/३४

१५. असमाति और पुरोहित

१६. प्रजापति उषस् १०/६१/५

१७. सूर्यविवाह १०/८५

१८. पुरूषोत्पत्ति १०/६०

१६. देवापि और शन्तनु १०/६८

२०. हिरण्यगर्भोत्पत्ति १०/१२१

२१. नचिकेतस् १०/१३५

विस्तृत कथानकों के अतिरिक्त ऋग्वेद में राजाओं के द्वारा दिए गए दानों से संबद्ध घटनाओं का भी उल्लेख है। इन घटनाओं को लक्ष्य कर अनेक छोटी–छोटी कथाएँ प्रवृत होती है। प्रो० विन्टर नित्ज की दृष्टि में दानस्तुतियां धार्मिक तथा लौकिक काव्य को जोडने वाली कडी हैं। इस प्रकार के लगभग ५० सूक्तों में पुरोहित यजमान के दानादि कार्यो के गीत गाता है।

डा० मणिलाल पटेल इनकी संस्था ६८ बताते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक में "ऋग्वेद की कतिपय दान स्तुतियॉं" में अनेकों की ऐतिहासिकता को खण्डित करने का प्रयत्न किया है। सर्वानुकमणी के अनुसार ऐसी दान स्तुतियों की संख्या १७ है।

१. स्वनय १/१२५

२. भवियव्य १/१२६

३. सुदास पैजवत ७/१८

४. असंग ८/१

५. कारायण पाकास्थाना ८/३

६. कुरूंग ८/४

७. कशु ८/५

८. तिरिंदर पार्शब्द ८/६

९. त्रसदस्यु ८/१६

१०. चित्र ८/२१

११. सौषाम्ण वरू ८/२४

१२. कानीत्पृथुश्रवस ८/४६

१३. प्रस्कण्व ८/५५

१४. कच्छ और अश्वमेघ ८/६८

१५. आर्क्षश्रतर्वण ८/७४

१६. कुरूश्रर्वण त्रासदस्यत् १०/३३

१७. सावर्णि १०/६/२

ऋग्वेद की चतुर्थ कोटि की कथाएं वे हैं जो देवों के व्यक्तिगत कार्यों से संबद्ध है और जिनका सूक्ष्मोल्लेख मात्र मिलता है। विष्णु ने त्रेघा विकमण किया। वृत्र–वध के समय इन्द्र की सहायता की। देवों ने राह भटके गर्ग को राह दिखाया। इन्द्र ने कुशिक की कामना पर गांधि के रूप में जन्म लिया (ऋ० १/१०/११)। असुरपुर का भेदन किया (१/११/४) शुष्ण का वध किया (१/११/७) बल का वध कर गायों को उन्मुक्त किया (१/११/५) पुत्र को मार डाला (१/३२)। कुत्स की रक्षा तथा दसस्यु की सहायता की (१/३३/१४–१५)। अंगिरस्, अत्रि और विमल के

सहायक बने (१/५१/३)। पिप्रु के नगरों का विध्वंस किया, ऋजिश्वन् को बचाया। कुत्स की शुष्ण से रक्षा की। अतिथिग्व के रक्षार्थ शक्वर का विनाश किया तथा अर्वुद का वध किया (१/५१/६) शर्यात के यज्ञ में अपनी पुत्री वृचया को कक्षीवान को दे दिया (१/५१/१२–१३) २० राजाओ तथा उनके ६००७६ अनुयायियों का दमन किया (१/५३/६)। तर्वयाण आदि की सहायता की (१/५३/१०)। इसके अतिरिक्त भी इन्द्र ने सुर्वश, तुवीर्त्रि, एतश, पुरूकुत्स, अजाश्व, अम्बरीष सहदेव और सुराधस् आदि पाँच पुत्र तथा त्रसदस्यु, दिवोमदास और दमीति आदि की भी सहायता की। पर्वतों का पक्षच्छेद किया। विकुण्ठा के पुत्रत्व को स्वीकार किया। कृष्ण और दस सहस्त्र सहयोगियों को समाप्त किया। विश्वरूप के ६६ शस्त्रो को विफल कर उसका वध किया। अश्न, रुध्रिका, धुनि, चुमुरि, क्रिवि एवं पीयु को मार डाला।

अश्विन प्रतिदिन लोगों की भूलों का सुधार करते हैं। उन्होंने सुदास को धन प्रदान किया। प्यासे गौतम के लिए कुएं को तिरछा कर दिया। शंयु की गाय को दोग्ध्री बनाया। रैम और वंदन को असुरों से बचाया। भुज्यु को समुद्र में डूबने से बचाया। अत्रि को अग्नि में जलने से बचाया। करकन्धु वैय्य और सुचन्ति को सहायता प्रदान किया। परावृक् को कन्याओं का पति बना दिया। विपश्पला को आयसी जंघा प्रदान किया। वशिष्ठ पृश्निगु और कुत्स पर दया दृष्टि डाली। वध्रिमती को सुवर्ण हस्त पुत्र दिया। घोषा का उपचार किया। दीर्घतमा की रक्षा की। जहू और जाहुण को सहायता प्रदान की।

इस प्रकार ऋग्वेद में प्रार्थनाओं और स्तुतियों के बीच उनके आख्यान भरे पड़े हैं। कोई–कोई तो अतिरोचक एवं साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त है। इन्हीं कथाओं को आधार मानकर ब्राह्मण साहित्य की विविध कथाओं का पल्लवन एवं विस्तार हुआ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कथाएं

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान विषय विधि है। शेष ब्राह्मण अंश इसी विधि भाग के पोषक और निर्वाहक मात्र है। यज्ञ का विधान कब किया जाय, उसे कैसे सम्पन्न किया जाय? उसमें किन साधनो की आवश्यकता होती है, कौन व्यक्ति अधिकारी होता है तथा उस यज्ञ को सम्पन्न करने की प्रक्रिया क्या है? इत्यादि समस्याओं का समाधान एवं ऋत्विकों एवं कर्तव्य निर्देश करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों का उदय हुआ। इनमें स्थान–स्थान पर अनुष्ठेय पदार्थों की पुष्टि के लिए प्राचीन ऐतिहासिक कथाओं का समावेश तो हुआ ही साथ ही अन्य अनेक कथाओं की कल्पना की गयी। यह कथा भाग ही ब्राह्मण का सर्वाधिक आकर्षक अंश है। ब्राह्मणों में इन कथाओं का एक ही प्रयोजन है– और वह है कार्य में पुरूष प्रवर्तन के प्रति प्ररोचना। यह कथन कि विधि भाग, ब्राह्मण युग की मरुभूमि में फूटा हुआ एक पुष्प है जिसे दार्शनिक चिन्तन की प्रथम उषा के पूर्व हम कुछ साहित्यिक मान सकते हैं। अतिरंजन मात्र है। सत्य तो यह है कि ये कथाएं कर्मकांडीय जटिल प्रक्रिया रूप मरुस्थल में शाद्वल समुदाय पुष्पोद्यान है जिसकी सुगन्ध से सम्पूर्ण वातावरण सुरभित हो उठता है। अपौरुषेयवादी मीमांसकों अनुसार आख्यानों की कल्पना मंत्रार्थ ज्ञान के लिए बाद में की गयी, न कि आख्यान ज्ञान के लिए मंत्रों की रचना की गयी। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से ये असत्य हैं। आख्यानों में दो बातें हैं वृतांत ज्ञान एवं प्ररोचना। वृतान्त ज्ञान न तो विधि में प्रवर्तक हैं और न ही निवर्तक। अतएव प्रयोजन के अभाव में ये अनपेक्षित हैं। प्ररोचना से कार्य में प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। आख्यानों में इतनी ही बात की आवश्यकता है। यद्यपि यह बात अवश्य सत्य है कि कथाओं का उददेश्य प्ररोचना मात्र है, किन्तु मीमांसको यह मत कि सभी आख्यान कल्पित ही हैं, आज के ऐतिहासिक अध्ययन के युग में हास्यास्पद प्रतीत होता हैं। ऐसे आख्यानों की संख्या जो कि कल्पित हैं अवश्य अधिक है। किन्तु इन कल्पनाओं का कोई न कोई आधार अवश्य हैं जो संहिताओं में दिखायी पड़ता है। ऋग्वेद वैदिक आख्यानों का मूल स्रोत है जिसके इन्द्र, वृत्र तूर्य, देवासुर

स्पर्द्धा आदि विषयों का ब्राह्मणकारों ने कल्पना का सहारा लेकर। कर्मकाण्ड की संगति के लिए विविध रूपों में विस्तार प्रदान किया। इसी भॉति पुरुषोत्पत्ति, हिरण्यगर्भोत्पत्ति तथा सृष्ट्युत्पत्ति आदि दार्शनिक सूक्तों के विषय को लेकर शतपथ में अनेक आख्यानों की सृष्टि हुई। ऋग्वेद की च्यवन सुकन्या दध्यड्, पुरुरवा, उर्वशी और शुनःशेप आदि कथाएँ कल्पित न होकर ऐतिहासिक हैं। ब्राह्मणकारों ने कर्मकाण्ड के प्रसंग में विनियुक्त कर उन्हें भी अनेकशः विस्तार प्रदान किया। ब्राह्मणों में अश्वमेधादि के प्रसंग में आयी फल श्रुतियां इतिहास की अच्छी सामग्री हैं। इन्ही ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर अनेक परवर्ती कथाओं का सृजन हुआ।

शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओं से संबद्ध आधुनिक साहित्य

(यास्क–निरूक्त ५०० ई० पू०)

वैदिक कथाओं की अध्ययन परंपरा में यास्क का निरुक्त प्रथम सोपान हैं। निरूक्त वैदिक कोष निघंटु का भाष्य है जो बाद के साहित्य में स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। निरूक्त में कोषगत शब्दों के अर्थ निर्धारण के सम्बंध मे उद्‌धृत मंत्रों की व्याख्या और निरूक्त के साथ ही कथाओ का विन्यास एवं उनके स्पष्टीकरण का प्रयास है। इन कथाओं के विन्यास की आवश्यकता मंत्रों की रचना की पृष्ठभूमि का संकेत करने के लिए पड़ी। निरूक्तगत ऐसी कथाओं की संख्या डा० लक्ष्मण स्वरूप ने २६ बताया है। किन्तु मेंरी गणना में यह संख्या पचास है। यास्क ने कुछ कथाओं को अपने शब्दों में वर्णित किया है तथा कुछ को मूल रूप में ही उद्‌धृत कर दिया है। यद्यपि नैरुक्त संप्रदाय वैदिक कथाओं के अर्थ निर्धारण के संबन्ध में आख्यान समय के अति निकट है। और उनकी व्यवस्था प्राकृतिक ... के रूप में करता है, किन्तु यास्क के द्वारा वर्णित कथाओं के सूक्ष्मावलोकन से ज्ञात होता है कि ये कुछ कथाओं को सच्ची ऐतिहासिक घटना तथा, कुछ को प्राकृतिक संगठना मानते हैं एवं शेष को अविश्लेषित छोड़ देते हैं। अगस्त्य, इन्द्र और मरूत्

(१/५–६) शाकपूणि का पर्व (२/८–६), देवापि तथा शातनु (२/१०–१२), विश्वामित्र–नदी–संवाद (२/२४/२७), शुनःशेप (३/४), वशिष्ठ का आक्रोश (३/६+१०), त्रृत कूपपातित च्यवन (४/१६), अगस्त्यनीयमुद्रान्तैवासी संवाद (५/३), कक्षीयत् (६/१०), वशिष्ठ अस्थविर के पुत्र परासर (६/३०) हारा जुआरी (७/३, ६/७–८), नृतानद् तथा कपिंजलु (६/४–५), वशिष्ठ एवं परावृक (६/७), कक्षीवत तथा का भावयव्य (६/६), गृत्सनद इन्द्र एवं असुर (१०/१०) ऋजुओं को अमृतत्व प्राप्ति (११/१६) की कथाओं को, यद्यपि इनमें कहीं अति मानवीय तत्व भी है, को यास्क ऐतिहासिक मानते हुए प्रतीत होते हैं। इन्द्र, वृत्र युद्ध (२/१६), शुष्ण वध (३/११), इन्द्र और अहिल्या (३/१६), उणस् और प्रजापति (३/१६), वाराह वध (५/४), उणसि आदित्य एवं अश्विन (५/२१), ऋजाश्व (५/२१), संवर वध (७/२३) तथा विष्णु विश्रण (१२/१८/१६)... की व्याख्या प्राकृतिक संघटना के रूप में करते हैं। शेष के विषय में यास्क ने कोई भी समाधान नहीं प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त बहुत सी कथाओं का उद्धरण मात्र है।

शौनक[1] वृहददेवता (४०० ई० पू०)

वृहददेवता वस्तुतः वैदिक कथाओं के संकलन का नियमित प्रयास है। काव्य शैली में कही गयी ये कथाएं महाभारत में वर्णित अनेक कथाओं के समान ही है। डा० कीथ ने इन कथाओं को महाभारत से गृहीत माना है। मैकडानेल इस धारणा को समीचीन नहीं मानते।[2] वस्तुतः एक वैदिक रचना जो सर्वानुक्रमणी से पहले की हो और यास्क से थोड़ा ही बाद में लिखी गई हो, महाभारत से कभी भी प्रभावित नहीं हो सकती। शौनक का उद्‌देश्य यद्यपि मूलतः ऋग्वेद के देवता, छंद, ऋषि और विनियोंग की सूची प्रस्तुत करना था, किन्तु मंत्र विविष्ट किन परिस्थियों में

---

[1] में कुल ६५ बार शौनक का उल्लेख है। अतएव डा० मैकडालन ने वृहददेवता पृ० २२–२३ में इसका कर्तृत्व शौनक परवर्ती उन्हीं के सम्प्रदाय से संबद्ध आचार्य को दिया है, किन्तु षडगुरू शिष्य ने वेदार्थ दीपिका ११, १.६६, २१, ३५३, ५६१, १० तथा १०.१८१ आदि में तो निश्चित रूप से शौनक को ही वृहददेवता का प्रणेता बताया है।

[2] वृहददेवता प्र० अ० पृ० ३

लिखा गया। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन–उन मत्रों एवं सूक्तों से संबधित घटनाओ और कथाओं को कहना पडा। वृहद् देवता के १२२४ श्लोकों में से तीन सौ श्लोक कथा वर्णन में ही प्रयुक्त है और निश्चय ही यही इस ग्रन्थ का सर्वाधिक रूचिकर एवं महत्त्वपूर्ण अंश थे। शौनक ने वृहददेवता के प्रथम अध्याय मे इन कथाओं की संख्या ४० कही है।

कात्यायनः सर्वानुक्रमणी (३५० ई०)

कात्यायन की सर्वानुक्रमणी का भी वैदिक कथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि यह ऋग्वेद के सूत्रों के देवता और छंदो की सूची है, तथापि प्रसंगतः सूक्तों के स्पष्टीकरण के लिए उनकें देवता रचना परिवेश एवं तत्संबद्ध घटनाओं एवं कथाओं की संक्षिप्त सूचना है। ऐसे कथा संकेतों की संख्या मैकडानेल (सर्वानुक्रमणी पृ० ६ पाद्टिप्पणी) ने २० दी हैं। किन्तु इसमें यह कुल मिलाकर ३० कथाएँ होनी चाहिए।

षड्गुरू शिष्य वेदार्थदीपिका (११८७ ई०)

१२ वीं शताब्दी कें उत्तरार्द्ध में किसी ने षड्गुरू शिष्य उपनाम से कात्यायन की सर्वानुक्रमणी पर वेदार्थ दीपिका नाम की टीका लिखी। लेखक न केवल प्रतिभसंपन्न वैदिक विद्वान ही था, अपितु वह निष्णात् वैयाकरण एवं अन्य सात विषयों में दक्ष था। संभवतः इसीलिए वेदार्थदीपिका में मौलिकता के साथ ही साथ उच्च्च कोटि की विद्ववत्ता की झलक दीख पड़ती है। इसमें जहॉ एक ओर क्लिष्ट अंशों की व्याख्या है वही दूसरी ओर वैदिक कथाओं का अति सुन्दर समावेश भी जो प्रायः वृहद्देवता से ली गयी है। कतिपय कथाएं तो अति विस्तार के साथ पद्यबद्ध हैं और अधिकतर सूक्ष्म रूप में संकेतित मैकडानेल ने ऐसी कथाओं की संख्या २३ मानी हैं। किन्तु ये कुल मिलाकर ३५ हैं।

सायणः वेदार्थ प्रकाश (१३५० ई०)

सायण का वेदार्थ प्रकाश वैदिक कथाओं का सागर है। इस वैदिक विद्वान की अध्यक्षता में एक विशिष्ट द्विजमण्डल ने विविध वैदिक ग्रंथों, संहिता, ब्राह्मण श्रौतसूत्रों पर भाष्यों की रचना की तथा इन भाष्यों को वेदार्थ प्रकाश की संज्ञा से अभिहित किया गया। ब्राह्मणों मे कहानियों के स्पष्ट रूप में वर्णित होने से सायण के ब्राह्मण भाष्यों में कथाओं की दृष्टि से कोई नवीनता नही है। किन्तु संहिता मे कथाओं का प्रायः अति सूक्ष्म संकेत होने से सायण को उन्हें कहने का अच्छा अवसर प्राप्त है। सायण ने कथाओं का प्रायः स्वयं सूक्ष्म रूप में वर्णन कर उनकी पुष्टि के लिए अधिकतर ताण्डय, शाख्यांयन, ऐतरेय तथा कौशितकि ब्राह्मण सर्वानुक्रमणी और कभी–कभी वृहददेवता निरूक्त एवं मनु स्मृति से उद्धरण दिये हैं। कुछ उद्धरणो के स्रोत अज्ञात भी हैं। वेदार्थ प्रकाशगत कथाओं की कुल सख्या १०६ है।

द्याद्विवेदीः नीतिमंजरी(१४४४ ई०)

द्याद्विवेदी की नीतिमंजरी भी वैदिक कथाओं के अध्ययन की दृष्टि से कुछ कम महत्वपूर्ण नही है। नीतिमंजरी की रचना क्षेमेन्द्र की चारुचर्या के आदर्श पर हुई है जिससे मंजरी कार ने चार बार उद्धरण दिये हैं। इसमें १६६ नीतियों का समावेश है, जो परस्पर असंबद्ध सी प्रतीत होती है। ये नीतियां छंद में लिखी गयी है। पूर्वार्द्ध मे प्रतिनयों का कथन एवं उत्तरार्द्ध में वैदिक कथाओं और घटनाओं का सन्निवेश किया गया है। ग्रन्थकार ने कथाओं को स्वयं न कहकर प्रायः ऋग्वेद के मंत्रों निरूक्त, वृहददेवता, सर्वानुक्रमणी वेदार्थदीपिका, वेदार्थप्रकाश तथा तथा कभी–कभी शतपथ, ऐतरेय, कौषितकि, आरण्यकों, ऐतरेय तथा कौषितकि उपनिषदों, आश्वलायन शांख्यायन, श्रौतसूत्र एवं कौषितकि गृहसूत्रों से उद्धरण लिये गये हैं। कहीं–कहीं कुछ परिवर्तन के साथ और कभी कभी तो प्रसंग निर्देश के बिना भी उद्धरणों का समावेश है। ग्रन्थ विभाग ऋग्वेद जैसा ही है। और उसी क्रम से कथा सन्निवेश भी। कुछ नीतियों में किसी भी घटना का अभाव दृष्टिगत होता है।

आधुनिक

वैदिक तथा साहित्य अति विशाल हैं। किन्तु आधुनिक युग में इसके कलेवर की दृष्टि से कम ही विद्वानों ने कार्य किया है। इस दिशा में प्रथम उल्लेखनीय प्रयास जे० म्योर का हैं, जिन्होंने 'ओरिजनल संस्कृति टेक्स्ट' की रचना की। इसमें विविध विषयो से संबद्ध वैदिक कथाओं का संग्रह और उनका ऐतिहासिक मूल्यांकन है। भारत में डा० सीग नें श्यावाश्व आत्रेय, वृषजान और बामदेव, तथा गौतम आदि कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। साथ ही उनके अध्ययन प्रकार एवं अन्वेषण के समान्य सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला। मैक्डानेल एवं कीथ के 'वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स' में सम्पूर्ण ऐतिहासिक और देवशास्त्रीय तथ्यों का उद्घाटन और विविध प्रसंगों का समाकलन है। केवल सरमा की कथा का उल्लेख इसमें नहीं है। एफ० इ० पार्जिटर ने 'ऐन्सियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन' में पौराणिक साहित्य में अविछिन्न रूप से वैदिक कथाओं का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया। वेवर[1] ने शतपथ की जलप्लावन, विदेहमाथव, च्यवन सुकन्या और कद्रुविनता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उक्त ग्रन्थ का महाभारत की मूल कथा तथा बौद्ध कथाओं के संबन्ध के औचित्य पर विचार किया। विन्टर निट्ज[2] नें पुरूरवा–उर्वशी, जल प्लावन शुनःशेप मन–वाणी स्पर्द्धा, इन्द्र द्वारा पर्वतों का पक्षच्छेद, और सृष्टि रचना संबंधी कतिपय कथाओं[3] पर विचार व्यक्त किये। मैक्समूलर ने याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद, कक्षीवत कवष, ऐलूष, शुनःशेप, जनक, नाभानेदिष्ठ और जलप्लावन की कथाओं का विशद वर्णन किया हैं[4]। पं० बलदेव उपाध्याय ने पुराण–विमर्श में प्रजापति उषस् तारा और चन्द्रमा, इन्द्र–वृत्र तथा अहल्या–मैत्रेयी— इन चार कथाओं की व्याख्या की है। वैदिक साहित्य और संस्कृति में ऋग्वेद के ३० आख्यानों का निर्देश कर शुनःशेप, पुरूरवा, उर्वशी, च्यवन, सुकन्या वशिष्ठ विश्वामित्र एवं श्यावाश्व तथा रथवीति की कथाओं का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया तथा उनकी शिक्षाओं का सजीव समाकलन किया। इसके अतिरिक्त वैदिक कथाओं का मनोहारी संग्रह प्रस्तुत किया। एच० एल० हरिअप्पा नें ऋग्वैदिक

---

[1] संस्कृत लिट्रेचर पृ०१३४–३८ एवं १८६

[2] इंडियन लिट्रैचर पृ० २०६–२५

[3] शत्० ब्रा०२/३/४, ११/१/६/१–११, ६/१/१, ११/२/३/१

[4] एशिंययट संस्कृत लिट्रेचर ।

लीजेन्ड्स थ्रू दि एजेज में सरमा, शुनःशेप तथा वशिष्ठ, विश्वामित्र—इन तीनों कथाओं के विविध विकास क्रमों पर प्रकाश डाला है। मेक्डानेल की 'वैदिक माइथोलॉजी' और कीथ की 'इण्डोइरानियन माइथोलॉजी' भी इस दृष्टि से कुछ कम महत्त्व की नहीं है।

इसके अतिरिक्त समय—समय पर विभिन्न विद्वानों ने कथा विशेष को भी अध्ययन का विषय बनाया। 'कांट्रीब्यूशन टू दि इंटरप्रेटेशन ऑफ दि वेद' में ब्लूमफील्ड नें कथाओं की व्याख्या के प्रमुख सिद्धान्तों पर विचार किया। पौरत्स्य तथा पाश्चात्य देशो की विभिन्न जल प्लावन की कथाओं के अध्ययन के आधार पर वैद्यनाथ अय्यर[1] ने शतपथ की जलप्लावन की कथा को सबका मूल माना है। डा० सूर्यकान्त ने 'फ्लड लीजेण्ड्स इन संस्कृत लिटरेचर' नामक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा,[2] जिसमें समस्त भारतीय कथाओं के अतिरिक्त पाश्चात्य जल प्लावन कथाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया और यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय कथा अन्य किसी भी विदेशी प्रभाव से परे है। साथ ही ऋग्वेद (७/८८/३—५) में कथा के बीज की संभावना प्रस्तुत की। ज्वाला प्रसाद सिंघल ने शतपथ ब्राह्मण की कथा के आधार पर पंजाब को आर्यों का आदि देश कहा है।[3] ए० पी० कर्मस्कर ने भी उक्त कथा के तीन संस्करणों का निर्देश किया।[4] इसके अतिरिक्त धुरनीफ,[5] प्रो० बेबर,[6] एस् विलियम्स,[7] जॉन म्योर,[8] बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार,[9] आदि विद्वानों ने भी उक्त कथा को अध्ययन का विषय बनाया। शुनः शेपाख्यान ने भी अनेकों विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सर्वप्रथम रॉथ ने कथा के दो संस्करणों का उल्लेख किया। बाद में एच० डी० नरहरि[10] ने अपने शोध निबन्ध 'शुनस्यलीजेण्ड इन वैदिक एण्ड पोस्ट वैदिक लिटरेचर' में राय के मत से असहमति व्यक्त की और तीन संस्करणों का निर्देश किया।

---

[1] जे० पी० ए० एस० १६२६
[2] एस० मन्द एण्ड कम्पनी, १६५० दिल्ली।
[3] क्वा० पृ० ४५७—६६ तृतीय भाग।
[4] फस्तशिफ्तकाणे, पृ० (२५३—५७)
[5] भागवत त्रृभाग भूमिका पृ०
[6] छ० स्टू० (१६०)
[7] इण्डियन एपिक पोएट्री, पृ० (३४)
[8] बी० एस० टैक्स्ट पृ० (१८१—६६) तथा (३२४)
[9] मत्स्य पुराणः ए स्टडी मद्रास १६३५
[10] पूना, बोरि० काणे कर्ण० वाल्यूण १६४१

एच० एल० हरियप्पा ने भी प्रस्तुत कथा को शोधप्रबन्ध की परिधि में ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त जॉन म्योर[1] ,कीथ[2] , डा० सामशास्त्री,[3] विल्सन,[4] रीजन,[5] ओल्डेन बर्ग[6] ने भी अपने–अपने मत व्यक्त किये। एम० राजा राव ने 'दि एक्लिप्स कोड ऑफ ऋग्वैदिक आर्यन्स ऐज रिवील्ड इन शुनःशेप हिम्स एण्ड ब्राह्मणाज'[7] लेख में इसकी ज्योतिषशास्त्र परक व्याख्या की। आर० एन० सूर्यनारायण[8] ने ऐतरय की एवं सुब्रह्मण्यम्,[9] ने तै० आरण्यक की कथा को अध्ययन का विषय बनाया। एफ० बैनेर ने 'दि लीजेण्ड आन शुन·शेप इन तैत्तिरीय ब्राह्मण एण्ड आश्वलायन स्रौतसूत्र[10] तथा पी० एस० पंडित ने 'लीजेण्ड ऑफ शुनःशेप' नामक शोध निबन्ध लिखे।[11]

जॉन म्योर ने आरिजिनल सस्कृत टेक्स्ट' में पवर्ग्य कर्म से संबद्ध विविध कथाओं का संग्रह किया। डा० सामशास्त्री ने उक्त कथा की ज्योतिष–शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की। राजाराम ने 'ए स्टोरी ऑफ प्रोसेसन ऑफ इक्वीनाक्स' शोध निबन्ध में प्रस्तुत कथा को प्राचीन भारतीय पंचांग के पुनर्निमाण की घटना का प्रतीक कहा है।[12] इसी तरह हाग[13] तथा एगलिंग[14] ने भी अपने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

---

[1] बी० एस० टैक्स्ट टी० पृ० ३५५–६०
[2] जर्नल रा० ए० सी० एस० १६११ पृ० ६८८
[3] ट्प्स
[4] ऋग्वेदानुवाद
[5] ऋग्वेदानुवाद पृ० ६०
[6] दि स्टोरी ऑफ इण्डियन गाडविडेन (ए————————————एण्ड क० लन्दन १६११)
[7] पृ० और भाग ६, १६४२, पृ० १–२६
[8] पृ० औ० १६३८
[9] अ० औ० रि० प०
[10] एकेडमी जापान वर्लिन १६२६
[11] श्री अरविन्द एण्ड जयन्ती ८/१६४६
[12] पृ० औ० त० भाग ३, १६४३
[13] ऐ० ब्रा० ४/१८
[14] श० ब्रा० १४, भूमिका

के० रेनो ने 'त्रित आप्त्य'[1] तथा 'विश्वरूप'[2] शोध निबंधों में विश्वरूप को 'सर्पदेव' सिद्ध किया है। डब्ल्यू एन० ब्राउन ने ऋग्वेद १०/१२४ को आधार मानकर देवों तथा असुरों के संबन्ध पर प्रकाश डाला है। तै० सं० तथा ब्राह्मण के अंशों के साक्ष्य पर पैन्सुनु[3] ने देवों तथा असुरों को एक ही नाम से संबद्ध तथा बाद मे नैतिक स्तर और जीवन मूल्यों मे अन्तर आ जाने से पृथक बताया है। पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय[4] ने इन्द्र पुत्र युद्ध का मूल स्थान सप्तसिंधु प्रदेश माना है। वेन्के तथा रेनों ने वृत्र एण्ड वृत्रघ्न में अवेस्ता साहित्य में किसी देव के द्वारा राक्षस के मारे जाने की घटना का अभाव माना है।[5] उनके अनुसार भारतीय साहित्य में इन्द्र वृत्र युद्ध की घटना बाद में विकसित हुई जिनमें विजयी देव, सर्वकारक इन्द्र और जलोन्मेंचन इन तीन घटनाओं का मिश्रण है। हॉकिन्स ने १६६५ मे उसिक पाइथालोजी में रामायण एवं महाभारत के इन्द्र–वृत्र युद्ध की समानताओं का निर्देश किया। शांतिपर्व १२/३४२/७८ तै० भाष्य २/५/१ के समान हैं। उद्योगपर्व का अंश (५/६) भी शांतिपर्व के समान है। केवल दो श्लोक ही ७/८/५ में समानता रखते है। डब्ल्यू सिफेल ने १६४८ में त्रिसिरस पर विचार करते हुए बताया कि वृत्र की जिस कार्य का श्रेय इरानी साहित्य मे प्राप्त हुआ। वह श्रेय भारतीय साहित्य में इन्द्र को मिल गया। ए० सी० चित्र 'स्टडीज इन वर्ड मिथ्स'[7] ने भी त्रिसिरस की कथा का शोध का विषय बताया।

डा० फतेह सिंह[8] नें इसे ध्रुव प्रदेश में प्रकाश की प्रथम किरणों के आगमन का रूपक बताया है केशवमणि शास्त्री नें सुपर्ण से **शिक्षा** लेख में उसकी महत्ता और शिक्षाओं पर विचार किया । सोम इन द लीजेन्डस[9] में बी०एच० कपाड़िया नें

---

[1] उफल, १६८७
[2] बु०स्कू०बी० स्ट० १६३०–३२
[3] क्वा०ज०पी०सो०, १६३७
[4] छठा आ०इ०जो०का०, १६३०
[5] पेरिस, १६३४
[7] पृऔ, भाग, ४,५
[8] पृऔ, भाग, ४,५
[9] चुन्नीलाल गांधी विद्या भवन· ५अगस्त,१६५८

सोम परक अनेक कथाओ का संकलन प्रस्तुत किया। डा० फतेह सिंह नें 'यम–यमी' कथा[1] को भी प्रकाश और अन्धकार के वतावरण में उद्भुत कहा । पी०एस० शास्त्री नें भी 'यम–यमी' संवाद का विवेचन किया। उक्त लेखक नें भी इन्द्र के साथ मॉ के जन्म कथा को सूर्य और उशस् के सहोदय का प्रतीक बताया है। कीथ नें कुमार स्वामी स्मृति ग्रन्थ १६३८ 'गन्धर्वाज' शोध निबन्ध में गन्धर्वो से सम्बन्धित सभी कथाओं का विवेचन किया। पी० इ० डूनांट ने ब्लूम फील्ड के मत से असहमति व्यक्त करते हुए वज्रएकपाद को सूर्य के रथ को स्तम्भ बताया है जो आकाशीय यात्रा में सूर्य को सहारा देता है।[2] वी० वी० दीक्षित ने 'ब्रह्मा एण्ड सरस्वती' लेख में पिता–पुत्री के संबन्ध से संबद्ध कथा के स्तरों पर प्रकाश डाला।[3] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने मिथ ऑफ अहल्या मैत्रेयी में अहल्या की कथा के विकास सूत्रों की विवेचना प्रस्तुत की। आर० एन० दाण्डेकर नें 'वृत्रहा' इन्द्र लेख प्रस्तुत किया[4]।

यू० बी० शाह ने 'वृषाकपि इन ऋग्वेद'[5] में भारतीय इन्द्र तथा इरानियन वृषाकपि सम्प्रदाय में संघर्ष की कल्पना की है। पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनुसार वृषाकपि सूक्त की कथा द्रविड़ों में नहीं उत्पन्न हुई।[6] कथोद्भवन के समय सूर्योपासना के स्थान पर इन्द्रोपासना प्रधान होती आ रही थी। आर्यों के किसी न किसी रूप में ईरानियों से संबद्ध होने की भी संभावना लेखक ने व्यक्त की। प्रो० वेलंकर ने सप्तवध्रि और वध्रिमती की कथा की पूर्ण व्याख्या ऋग्वेद ५/७८ के आधार पर किया। उनके अनुसार सप्तवध्रि एवं वध्रिमती पति–पत्नी है। सम्पूर्ण सूक्त सोमयाग में अश्विनों को संबोधित है जिन्होने प्रसवादि अनेक अवसरें पर वध्रिमती एवं ऋषि की सहायता की है। यह सप्तवध्रि स्वयं अत्रि ऋषि हैं। सामशास्त्री ने रोहित को सूर्य मानकर उसकी ग्रहण परक ज्योतिष शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है।

---

[1] बना० हिं० यूनि०, चौथा भाग।
[2] तेलगू, भारती, मद्रास जून,६२४, ४८३–८६
[3] ज० अमे० जोरि० सी० १६३३
[4] प्री० औ० भाग–८ पृ० ६६–६७
[5] ज० औ० इ० क० ८ (१), ४१–५०
[6] इ० युनि० १६२५, पृ० ६७–१५६ ।

के० आर० श्रीनिवास आयंगर ने 'उर्वशी' लेख में कथा के याज्ञिक महत्त्व तथा प्रतीकों पर विचार किया।[1] ऋग्वेद १०–६५ 'पुरुरवस उर्वशी'[2] में एच० डी० जे० डेजार्ट ने सूक्त की व्याख्या तथा उर्वशी एण्ड पुरूरवश में सम्सनवाला ने अनुवाद प्रस्तुत किया है।[3] पी० एस० शास्त्री ने संवाद सूक्ताज ऑफ दि ऋग्वेद,[4] उर्वशी–पुरूर्वश संवाद[5] तथा 'पुरुवस् ए वैदिक ड्रामा[6]' लेख प्रस्तुत किया। इन्दिरा नलिन ने दि लीजेन्द ऑफ पुरूरवा एण्ड उर्वशी[7] तथा डी० डी० कौशाम्बी ने उर्वशी एण्ड पुरूरवस्[8] नामक लेख लिखा। मधुसूदन ओझा ने वैज्ञानिकोपाख्यानम्–वैदिकोपाख्यानम्[9] तथा रसिक बिहारी जोशी ने संस्कृत वांङ्मये कथा साहित्यस्य विकासः में अनेक वैदिक कहानियो का वर्णन एव विश्लेषण किया। पी० एस० शास्त्री ने अगस्त्य, लोपामुद्रा–संवाद[10] डेमेट्रिक फ्रे[11] ऋग्वैदिक वैलेट्स[12] तथा ऋग्वैदिक लीजेण्डस ऑफ माइथोलॉजी नामक शोध निबन्ध लिखें। लीजेण्ड फ्राम दि शतपथ ब्राह्मण[13] पूषन लीजेण्ड इन शतपथ ब्राह्मण [14] विष्णु लीजेण्ड ऑफ दि शतपथ ब्राह्मण[15] तथा प्रजापति लीजेण्ड फ्राम दि शतपथ ब्राह्मण[16] कथा पर भी शोध निबन्ध लिखे गये। हाउर तथा बी० एन० मुकर्जी ने अथर्ववेद की दान स्तुतियों का अध्ययन किया। हॉपकिन्स ने भी सूर्या से संबद्ध कथाओं की व्याख्या की।[17] डा० भावे ने प्राब्लम्स ऑफ दि डायलॉग हिम्स ऑफ दि ऋग्वेद में नाटकीय तत्त्वों की

---

[1] श्री अरविन्द मंदिर एनुअल जयन्ती सं० ८, १६४८
[2] ओ० नी० ल० १६४८, पृ० ३६३–७१
[3] गोडे स्मृति ग्रन्थ १६६०, पृ० ३७–३६
[4] प्रो० वा० इ० औ० क०, तेरहवां सत्र भाग दो नागपुर, १६५१, पृ० १५२८ ।
[5] भारतीय मद्रास जुन १६४४, पृ० ४८३–८६
[6] ब० युनि०, ६६, १६५६, पृ० ४१–४३
[7] ज० अ० व० युनि० १६(२) सि० १६५०, पृ० १६६३
[8] बी० बी० आर० एस० २७ पृ० १–३० ।
[9] जयपुर १६५०।
[10] तेलगू नवोदय मद्रास १६४३ पृ० १४–१६
[11] १६ (२) पृ० ४३४
[12] पृ० औ० १० पृ० ६२–१००
[13] लेख संक्षेप १६ वॉ रा० इ० ओ० का लखनऊ १६५१ पृ० २१–२३
[14] लेख सक्षेप, १६ वॉ, आइ० ओ० का अहमदाबाद १६५३ पृ० ६
[15] लेख संक्षेप रा० इ० ओ० का अन्नामलाई नगर १६५५ पृ० १–१०
[16] लेख संक्षेप स्पी० २० वॉ आइ० ओ० सेक० का० भुवनेश्वर १६५६ पृ० १२
[17] ज० इने० ओ० सो० १६३८

विवेचना की तथा कीथ ने इन्हीं संवादो से नाटकों की उत्पत्ति बताया है।[1] स्टेन कोनों ने भी संवाद सूक्तों से ही नाटको की उत्पत्ति माना है।[2]

---

[1] दि आरिजिन ऑफ संस्कृत ड्रामा १६२४

[2] इण्डिशे ड्रामा १६२०

द्वितीय अध्याय

ऋग्वैदिक कथाएँ

१.दध्यञ्च

इन्द्र के श्वेत अश्वों द्वारा चालित रथ ने महर्षि दध्यञ्च के आश्रम में प्रवेश किया। रथ रुका उस पर से उतरे पीतवसन, मदारमाला, स्वर्णाभरण विभूषित मुकुटधारी, शची पति इन्द्र। ऋषि ने सुरेन्द्र को देखा। एषणाओं को तिलांजलि देने वाली अग्नि से तप्त स्वर्ण तुल्य ऋषि काया कटि प्रदेश पर नत हुई।

"पुरन्दर!" ऋषि ने इन्द्र को प्रणाम किया। सादर बोले, "आश्रम आपका स्वागत करता है। कृपया पाद्य, अर्ध–आसन, तथा मधु–पर्क ग्रहण कीजिए।"

इन्द्र ने पुष्पित आश्रम को एक बार आँखें घुमाकर देखा। यज्ञ बेदी से उठती हुई हवि की सुरभित धूम्र राजि वायु मण्डल को शुद्ध कर रही थी। ऋषि को हृदयस्थ पवित्रता विकसित होकर आश्रम के कण–कण में मुखरित थी।

" महात्मन!" इन्द्र ने कहा, " आपको किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है। मैं जानता हूँ तथापि चाहता हूँ कि आप मुझसे अभीष्ट फल प्राप्त करें। मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा। कहिए क्या वर मांगते हैं।"

"मधवा ! मुझे मधु विद्या दीजिए।" "मधु!"

इन्द्र आश्चर्यचकित हुए।

"हाँ ! सुरेश्वर!"

दध्यञ्च नें निश्चयात्मक स्वर मे उत्तर दिया।

"तपस्वी, यह दुर्लभ है।" इन्द्र की मुद्रा गम्भीर हो गयी। "आपकी कृपा से सब कुछ सुलभ है।"

इन्द्र असमंजस में पड़ गये। मधु देना नहीं चाहते थे। किंचित् ठहरकर बोले,"मैं उसका रहस्य बता सकता हूँ। किन्तु एक शर्त होगी।" "मुझे स्वीकार है।"

इन्द्र गगन मण्डल की ओर देखने लगे। क्या मैं शर्त जानने का अधिकारी हो सकता हूँ। ऋषि नें इन्द्र के मुख–मण्डल पर दृष्टि स्थिर करते हुए पूँछा।''यदि आप इस रहस्य को उद्घाटित करेगे तो आपका मस्तक काट दिया जायेगा।'' इन्द्र ने हाथ में बज्र घुमाते हुए कहा–''भगवन्!'' ऋषि ने दृढतापूर्वक कहा,''मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। मैं उसका उल्लघन नहीं करूँगा।''

इन्द्र नें दध्यञ्च ऋषि को मधु विद्या का उपदेश दिया। ऋषि उसे सहर्ष ग्रहण कर कृतार्थ हुए।

अश्विनि कुमारों को बात मालूम हो गयी। दध्यञ्च ऋषि को इन्द्र नें मधु का रहस्य बता दिया। इन्द्र तथा अश्विनी कुमारो में वैमनस्य था।

महर्षि तपस्या रत् थे। अश्विनी कुमारो नें शनैः–शनैः प्रवेश किया। दोनों कुमारो को ऋषि ने देखा अविलम्ब पहचान गये। उनका पाद्य, अर्ध्य और मधुपर्क से सुस्वागत किया। कुशासन बैठने के लिए दिया । आश्वस्त होने पर ऋषि ने सादर प्रश्न किया : ''अश्विनी द्वौ! आपके शुभागमन का प्रयोजन क्या जानने का अधिकारी हो सकता हूँ ?''

''महात्मन्! एक विशेष प्रयोजन से आपके आश्रम में आये हैं। हमारे प्रयोजन की सिद्वि आपके द्वारा होगी। यही हमारी एकान्त कामना है।''

आपके पास एक गुण है, उसके हम आकाक्षी हैं।''

महात्मन्! हम आपसे गुण दान चाहते हैं।''

''कौन दाता सामर्थ्य रहते दान नहीं करना चाहेगा?'' ऋषि ने किंचित् मुस्कराकर कहा।

''आपके पास है।''

''तो—दूँगा।''

"महात्मन्! मधु–रहस्य उद्घाटन।"

ऋषि सहसा हतप्रभ हो गये। कल्पना नहीं की थी कि अश्विनी कुमार इस रहस्य को जानते थे।

"महात्मन्! हम जानते हैं। इन्द्र ने आपसे वचन लिया है। उसका उल्लंघन करने पर आपका मस्तक छिन्न हो जायगा।"

'हां, किन्तु–?"

"महात्मन्! आपकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। हम कुशल वैद्य हैं। कुशल शल्य चिकित्सक हैं।"

"ऋषिवर! इन्द्र आपका कुछ नहीं बिगाड सकेंगे। आपकी कुछ हानि नहीं होगी।"

"ऋषिवर! हमनें उपाय निकाल लिया है।"

ऋषि की चुभती निगाहें अश्विनी कमारों की ओर उठी।

"साधारण बात है। आपका मस्तक काट कर हम अलग रख देंगे। उसके स्थान पर अश्व के मस्तक लगा देगे। अश्व के मस्तक द्वारा मधु रहस्य का उदघाटन् आप कीजियेगा। इन्द्र वज्र से आपका मस्तक काट देगे। वह आपका अश्व मस्तक होगा। हम उसके स्थान पर आपका पुराना मानव मस्तक पूर्ववत् पुनः लगा देंगे।"

"महात्मन्! इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है आपके वचन का उल्लंघन नहीं होगा। आपने जिस मस्तक से वचन दिया है। वह मस्तक वचन उल्लंघन का दोषी नहीं होगा। दोषी होगा अश्व मस्तक जिसे हम आपकी ग्रीवा पर मानव मस्तक के

स्थान पर जोड़ देगे। अपराध अश्व का मस्तक करेगा। दण्ड उसे भोगना होगा। आपका मानव मस्तक अछूता रहेगा।"

दध्यञ्च नें मधु रहस्य अश्विनी कुमारों को उद्घाटित किया।

मधु का रहस्य उद्घाटित होते ही, इन्द्र का क्रोध उग्र हो उठा। उन्हें ऋषि के वचन उल्लंघन पर क्रोध आया। वे वज्र लेकर दौडे। क्रूर वज्र को आते देखकर महर्षि ने चित्कार किया। वज्र प्रहार से ऋषि का अश्व मुख छिन्न हो गया। बहुत दूर पर्वत स्थित शर्पणावृत सरोवर में जाकर गिर गया। वह शर्पणावृत तीर्थ बन गया और प्राणहीन धड भूमि पर गिर पड़ा।

अश्विनी कुमारों ने अविलम्ब ऋषि के मानव धड पर, ऋषि का मानव मस्तक जोड दिया।

शल्य चिकित्सक अश्विनी कुमारों के अद्भुत शल्य–कौशल को देखकर जगत आश्चर्यचकित हो गया।

अश्विनी कुमार मधु की शक्ति के कारण यज्ञ में बैठे। उन्हें यज्ञ भाग मिलने लगा।

उनकी प्रतिष्ठा देव समाज में बढ गयी। इन्द्र नें प्रतिहिंसा का आश्रय नहीं लिया।

और दूसरी ओर दध्यञ्च ऋषि कुशासन पर आश्रम में बैठे थे उनकी दिब्यदृष्टि ज्योतिर्मय थी। उन्हें दिब्य मन्त्रो का दर्शन होने लगा। उनकी वाक्शक्ति जाग्रत हो गयी। शुद्ध कण्ठ से सस्वर वेद ऋचाएँ निकलने लगी। वायु मण्डल, पवित्र वांणी से वेदमय हो गया। और जगत नें दर्शन किया एक सूक्तद्रष्टा, याज्ञिक, अग्नि

प्रज्ज्वलन कर्त्ता और उनका जहां मस्तक गिरा था, वह हो गया शर्णावत् तीर्थ, अपनी इस चिरकथा की स्मृति सर्वदा जगत् को दिलाता हुआ।*

२– च्यवान–सुकन्या

विचरणशील शर्यात मानव का अस्थायी शिविर धूमधाम से लगा। चहल–पहल थी। शर्यात अपने कुटुम्ब के साथ थे। उनकी पुत्री सुकन्या साथ थी। कुमारगण साथ थे।

शिविर स्थापित हो चुका था। कुमार खेलने लगे। खेलते–खेलते वे एक स्थान पर पहुॅचे। कुमारों नें देखा। मृत्तिका से भरा मानव जीर्ण शरीर। बाल जिज्ञासा जागृत हुई। वाल्मीक पर कीडावश लोष्ट प्रहार करने लगे।

विचित्र घटना घटी। राजा के गॉव में फूट पड गयी। अनायास लोग एक–दूसरे से झगड़ने लगे। पिता–पुत्र लडने लगे। भाई–भाई भिड गये माता कन्या मे झडप होने लगी भाई–बहन परस्पर प्रहार करने लगे।

शर्यात विकल हो गये, देखकर यह अनहोनी। उन्होंने विचार किया। स्यात उनसे कुछ पाप हो गया था। उन्होंने कोई द्वेषपूर्ण कार्य कर दिया था।

किन्तु शर्यात की समझ में कुछ नहीं आया। उन्हें अपना कोई अनुचित कर्म, अव्यवहारिक आचरण दिखाई नहीं दिया। किन्तु अपराधों के कारण उन्हें महान् कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। उनकी समझ में नहीं आया।

---

* आधुनिक सर्जरी अर्थात शल्य–चिकित्सा बहुत विकसित मानी जाती है। वैदिक काल की सर्जरी कम विकसित नहीं थी

[2] अश्विनी कुमार शल्य तथा भेषज चिकित्सा के आचार्य माने जाते हैं। आधुनिक सर्जरी ग्रफ्टिंग के ढग पर प्राचीन काल में भी सर्जरी होती थी। दध्यञ्च के मस्तक को काटकर उसके स्थान पर अश्विन कुमारों नें अश्व का मस्तक अश्विनी कुमारो ने लगाया थ। लगा मस्तक पूर्व कालिक मान मस्तक तुल्य कार्य करने लगा। यही बात कहानी रूप में वेद में लिखी गयी है।

'ऋग्वेदः १.८० १६, शतपथ ब्राह्मणः १४ १.१ ताण्डय ब्राह्मण १२ ८ ६ तथा गोपथ ब्राह्मण' १.५ २१ में वर्णित है।

उनके साथ चिन्तनीय मुद्रा हो गयी गोपालकादि को। उनमें एक अकस्मात बोला·

"हॉ, स्मरण आया।" सबकी दृष्टि उसकी ओर उठ गयी। उसने स्मरण करते हुए कहा

"यहॉ एक जीर्ण–शीर्ण पुरूषाकार वल्मीकि है। उसे कौतूहलवश कुमारो ने लोष्टो से आहत किया है। सम्भव है उस तपस्वी के कोध का यह सब परिणाम हो रहा हो।"

"निश्चय–।" शर्यात को जैसे एक सूत्र मिल गया। उन्होंने आदेश दिया, "रथ लाओ।" रथ आया। राजा नें अपनी कन्या सुकन्या को साथ लिया। रथारूढ हुए। ऋषि के पास पहुॅचे।

"नमस्तो! महात्मन्!" राजा ने करबद्ध वेदवेदागो से निष्णात तपस्यारत ऋषि च्यवान को नमन् करते हुए कहा।

"भगवन! इस अकिंचन का नाम शर्यात है। मेरा समीप ही शिविर लगा है।" ऋषि की ऑखें खुली। उनका शरीर कुमारों के लोष्ट प्रहार से आहत हो गया था। ऋषि नें शर्यात का विनय देखा। उनका कोध शान्त होने लगा। शर्यात ने अपनी कन्या सुकन्या को उनके सम्मुख करते हुए कहाः "ऋषिवर यह मेरी सुकन्या नाम्नी कन्या है।"

ऋषि की दृष्टि सुकन्या पर पडी।

मुनिवर! आपको कुमारों ने कष्ट पहुँचाया है। हम उसके लिए क्षमा प्रार्थी हैं।" राजा ने करबद्ध निवेदन किया।

"महात्मन्! इस कन्या को आप स्वीकार कीजिये। इसी में मैं अपने पाप का प्रायश्चित देखता हूँ। यह आपकी सेवा करेगी।"

शील भार से सुकन्या का मस्तक नत हो गया। ऋषि की बुझी ऑखों ने ज्योतिर्मय युवती के निर्मल नयनो को देखा। ऋषि विचार करनें लगे। शर्यात ने कहा, "भगवन्! गोत्रो के परस्पर द्वन्द्व तथा व्याप्त अराजकता को कृपया बन्द कीजिए।"

ऋषि का अभय मुद्रा मे हाथ उठ गया। शर्यात प्रसन्न हो गये। सुकन्या से बोले:

"पुत्री! च्यवान तुम्हारे पतिदेव हैं। उनकी सेवा में तुम्हारे जन्म की सार्थकता है। शिविर में शान्ति हो जायेगी। रक्तपात से लोग बच जायेंगे।" सुकन्या ने पतिदेव के चरणों का पत्नीवत् स्पर्श किया।

"ओ सुन्दरी!" अश्विनी कुमारों ने सुकन्या को आश्रम में एकाकी विचरण करते हुए देखा। सुकन्या ने अपने सम्मुख दो अत्यन्त सर्वांगीण सुन्दर युवक कुमारों को देखा। सुकन्या ने उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। उसके नेत्रों में उपेक्षा झलक रही थी। "तन्वी! " अश्विनी ने कहा, "तुम्हारा यह अनुपम रूप, यह युवावस्था, यह रति को भी मात देने वाली काया। नेत्रों में छलकती काम मादकता—।

दैव कितना निर्दयी है। उसने तुम्हारा विवाह एक महा वृद्ध, जीर्ण–शीर्ण, मृतवत काया से कर दिया है।"

"वे मेरे देवता हैं–।" "कुमारों! जब तक वे जीवित हैं, मेरे पति हैं। मैं उनका त्याग कैसे कर सकती हूं। आप लोग जाइये।"

सुकन्ये! कुमारों ने तुमसे क्या बातें कही हैं।" सुकन्या को समीप आते देखकर ऋषि च्यवान ने पूछा।

"दूषित विचार हैं। उन्हें सुनकर क्या कीजिएगा?" सुकन्या नें विषाद–पूर्वक कहा।

"वे पुनः आयेंगे?" ऋषि ने कहा।

"यदि वे पुनः आयें तो उनसे कहो—। "वे समृद्व नहीं हैं। पूर्ण नहीं हैं।

"और यदि वे पूछें, वे किस प्रकार असमृद्व हैं, तो क्या उत्तर दोगी?"

"उनसे कहना—प्रथम आप लोग मेरे पति को युवा बना दीजिए। तत्पश्चात् आपको कारण बताऊँगीं।"

सुकन्या ने शंकित दृष्टि से ऋषि की ओर देखा ऋषि ने मुस्कराते हुए कहाः सुकन्ये! मैं जैसा कहता हूँ करो। इसमें दोष नहीं है। वे तुम्हारा कुछ अनुपकार नहीं कर सकेगें।" "सुन्दरी! " अश्विनी कुमारों ने आश्रम में पुष्प चयन करती सुकन्या को देखकर सम्बोधित किया।

सुकन्या ने उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखा। पुष्प चयन करती रही। सुकन्या ने कहा–"आपसे क्या बातें करूँ ? आप समृद्व नहीं हैं। आप अपूर्ण हैं।" किस प्रकार–?

"यह बात कहने की नहीं है।"

"हम अश्विनी कुमार हैं। देवता हैं।"

"तथापि आप असमृद्ध हैं। अपूर्ण हैं। आपके साथ कौन रहेगा?"

"सुहासिनी! हम पर यह लांछन लगाने का आधार क्या है?"

"बताउँगी—।"

"कब—?"

प्रथम मेरे पति को युवा बनाइये।"

"यह कौन असाधरण बात है?"

"तो कीजिए—।

"सुनो! तुम अपने वृद्ध पति को समीपस्थ ह्रद में ले जाओ। उसमे डुबकी लगवाओ। जितने वर्ष के युवा वे होना चाहेंगे, उनका उतना ही रूप तथा वय हो जायगा।"

सुकन्या प्रसन्न हो गई।

"जराक्रांत ऋषि आंगिरस च्यवान प्रसन्न हो गये। पत्नी का सहारा लेकर वे ह्रद में स्नान करने चले।

"सुकन्ये! तुम्हारे पति युवा हो गये। उनका कायाकल्प हो गया। उन्हें सौन्दर्य मिल गया। यौवन मिल गया युवती! हमारी कामना पूर्ण करो।"

"अश्विनी कुमारो! आपकी कृपा से पति युवा हो गये। हम आपकी पूजा करतें हैं। किन्तु आपका प्रस्ताव मैं कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?" "आप लोग अपूर्ण हैं। आपसे कौन सम्बन्ध स्थापित करेगा?" सुकन्या ने प्रगल्भ स्वर में कहा।

"तुमने कहा था। कारण बताओगी।"

"क्यों नहीं बताउँगी?"

सुकन्या ने उनकी ओर मुस्कराते हुए देखकर उत्तर दिया।

"कुरूक्षेत्र में यज्ञ हो रहा है। देवता कर रहे हैं। उन्होने यज्ञ से आपको बहिष्कृत कर दिया है। अतएव आप पूर्ण देवता नहीं हैं। आप स्वयं असमृद्व हैं। अपूर्ण हैं।

अश्विनी कुमार वहॉ पहुॅचे। उन्होने देखा। उनके लिए वहॉ स्थान निश्चित नहीं था। वे बहिष्कृत थे।

अश्विनी कुमारो ने पूछा "यज्ञ मे हमारा स्थान क्यो नहीं है।"

"आप मनुष्यों मे विचरण करते हैं। उनसे मिलते है।"

"हम आमन्त्रित क्यों नहीं किये गये?"

"आप लोग मानवों में मिलकर घूमते हैं। उनके साथ रहते हैं। उनमे प्रायश्चित करते हैं।"

"किन्तु आपका यज्ञ पूर्ण नहीं होगा।"

"क्यो?"

"विशीर्ण बलि से आप यज्ञ करते हैं। यह कैसे पूर्ण हो सकता है ?"

"तो- -?"

"हम विशीर्ण को ठीक कर देगे।"

"यह किस प्रकार होगा?"

"हमे आमन्त्रित कीजिये।"

देवताओ ने विचार–विमर्श किया। वे बोले, "विशीर्णता दूर हो जायेगी?"

"अवश्य—?'

अश्विनी कुमार अध्वर्यु बन गये। बलि की विशीर्णता दूर हुई। वेदोच्चार होने लगा। यज्ञ पूर्ण हुआ और उनको भी पूर्णता प्राप्त हुई। उन्हें यज्ञ में भाग मिला। और आश्रम में तरूण मन्त्र–द्रष्टा च्यवान, युवती सुकन्या की प्रसन्नता में प्रसन्न हो गये।*

---

* बृहद्देवता इस कथानक में अन्तर्जातीय विवाह का सूत्र मिलता है। विवाह एक वर्ग तथा एक जाति तक सीमित नहीं था। वह आर्य मात्र में हो सकता था। राजा अपनी कन्या सहर्ष ऋषि को दान कर देता है। वह प्रजा की आपत्ति निवरणार्थ कन्या का मोह तथा उसके ऐश्वर्य के भविष्य की भी चिन्ता नहीं करता। राजा के लिए प्रजाहित सर्वोपरि था।

नोटः इस कहानी में कायाकल्प का निदर्शन किया गया है। कालान्तर में 'च्यवन प्राश' आदि औषधिया इस उपचार के रूप में निकल आयी। (इस गाथा में व्यंग्य तथा परिहास भी है। यह वैदिक युग के सामाजिक रूप का एक चित्र उपस्थित करता है। वैदिक प्राणी हम लोग जैसे मानव थे। अर्थ तथा काम उनके जीवन का अंग था। वे अप्राकृतिक नहीं अपितु प्राकृतिक प्राणी थे।)

३—ऋभुगण:

सुधन्वन अंगिरस् के पुत्र थे। सुधन्वन के तीन पुत्र ऋभुगण, विम्बन और वाज हुए। तीनों पुत्र त्वष्टा के शिष्य थे। वे कुशल शिल्पी थे।

त्वष्टा ने उन समस्त बातों की शिक्षा तीनों शिष्यो को दी, जिसमे वे स्वयं पारंगत थे।

उनकी कला निर्माण तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने धेनु भी बनायी। वह अमृत तुल्य मधुर दूध देती थी। सत्याशय, सरल और स्नेही ऋभुओं ने जराजीर्ण अशक्त माता–पिता को अपनी कला से युवा बना दिया था।

त्वष्टा ने चमस पात्र बनाया था। अपने गुरू त्वष्टा से भी वे शिष्य कला में प्रवीण हो गये। उन्होने एक स्थान पर चार चमस पात्र बना दिये। वे अपनी कला, हस्त–कौशल तथा कर्म से स्तुति प्राप्त करने लगे। वे देवताओं के मध्य भी विचरने लगे। वे मानव थे, तथापि उन्हें यज्ञ–भाग भी मिलने लगा।

ऋभुओं की कार्य–कुशलता से सूर्य प्रसन्न हो गये। मरणधर्मा होने पर भी उन्हे अमरत्व प्रदाने किया।ऋभुओं नें निरन्तर परिश्रम तथा शुभ कर्मों द्वारा अमरत्व प्राप्त किया। अग्नि देवताओं के दूत बनकर आये।

अग्नि बोले,"ऋभुगण! मैं देवताओं के कार्य से आपके पास आया हूँ।"

"ऋषिवर! आज्ञा?" ऋभुओं ने नम्रतापूर्वक कहा।

"त्वष्टा ने एक चमस बनाया है।"

"ज्ञात है महात्मन्! "

"एक चमस को चार भागों में विभक्त कर दीजिये।"

"इससे लाभ? "ऋभुओं ने साश्चर्य कहा।

"देवताओं के तुल्य आप यज्ञ का भाग प्राप्त करेंगे।"

"ऋभुगण विचार करने लगे।"

"महात्मन् हम चार बना देंगे।" तीसरे ऋभु नें कहा।

अग्नि प्रसन्न हो गये। बोले, "तुम्हारे गुरू त्वष्टा ने चमस को चार बनाने की योजना को स्वीकार लिया है।"

ऋभुगण हर्षित हो गये। उन्होने चार चमस बनाकर दिये।

"ऋभुओं " अग्नि ने कहा, "आप हस्तब्यापार कुशल हैं। अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर गमन कीजिए।"

ऋभुओं को यज्ञ में भाग मिलने लगाा। त्वष्टा चमसों को देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उनको ग्रहण किया।

ऋभुओं ने अश्विनीकुमारो के लिए तीन आसनों का दिव्य रथ निर्माण किया। इन्द्र के लिए दो अश्वों से चलने वाले शीघ्रगामी रथ को बनाया। गाय तथा अश्व बनाए। देवताओं के निमित्त अभेद्य कवच बनाया। आकाश एवं पृथ्वी को पृथक् किया। वे प्रथम सोमपान करने वाले हुए। वे तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए।

कनिष्ठ ऋभु वाज देवताओं से, मध्यम ऋभु वरूण से तथा ज्येष्ठ ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए। इन्द्र के सखा हुए। इन्द्र के साथ सोमपान करने लगे। वे अरूण तथा मरूद्‌गण के साथ सोमपान करने लगे।

ऋभुओं ने अश्विनीकुमारों के लिए तीन पहियों का एक देदीप्यमान रथ बनाया। वह बिना अश्व के अन्तरिक्ष में विचरण करता था।

अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण वे देवता हुए। उन्होंने मानव के लिए देवत्व प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। मानव देव हो सकता है, यह आशा मानवों में उत्पन्न

की। मानव देवताओ की पूजा करते हैं, परन्तु अपने कर्म से स्वय पूजित हो सकते हैं।*

४—त्रित

त्रित गायों के गोष्ठ की ओर जा रहा था। साला वृकी के निर्दय पुत्रों ने त्रित पर आक्रमण किया। त्रित अपनी रक्षा का प्रयास करने लगा। उसने गुहार किया। स्थान निर्जन था। उसकी वाणी गूँजकर रह गयी। उसकी रक्षा—निमित्त किसी दिशा से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई।

साला वृक के पुत्रों ने गायों को निर्दयतापूर्वक पीटना आरम्भ किया। कोलाहल में शान्त सरल स्वभाव त्रित की समझ मे कुछ नहीं आया। क्या करे? गायो पर पडते प्रहारों को देखकर व्याकुल हो गया। उन पर पडता एक—एक प्रहार जसे उसके शरीर पर पड रहा था। वह शाला वृकों से करबद्ध विनती करने लगा। किन्तु क्रूर आततायी ने त्रित की करूण पुकार पर ध्यान नहीं दिया। त्रित गायो के पास दौड़कर आता। उनके शरीर पर प्रहारो द्वारा पडे नील साटनों पर हाथ से रोता सहलाता। गायें त्रित की ओर करूण नेत्रों से देखतीं पुनः उन पर प्रहार होता। वे भागतीं। लौटकर त्रित को घेरकर खडी हो जाती।

"गायें इसे नही छोडेगी।" आतताइयों ने क्रुद्व स्वर में कहा।

"इसे गायों से अलग करो।" कर्कश वाणी गूँजा।

"अलग कर दो।" उततेजित स्वर गूँजा।

---

* नोटः इस कथानक द्वारा मनुष्य द्वारा अपने कर्म से देवत्व तथा यज्ञ में देवता तुल्य भाग प्राप्त करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जाति बडी नहीं, किन्तु कर्म बडा माना गया है। कर्म से सब कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। कर्म से ऋभुगणों को इन्द्र तथा सूर्य के साथ सोमपान करने का अधिकार देवताओं के शिल्पी होने पर भी प्राप्त हो गया। उन्हें आहत किया जाने लगा। कोई शिल्पी (बढई) होने से ऊँच या नीच नहीं होता। कर्म मनुष्य को ऊँच—नीच बनाता है। इस कथा में जन्मना वर्ण के स्थान पर कर्मणा वर्ण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

क्रूर, लोभी, आततायी, साला वृकी के दुष्ट पुत्रो ने त्रित को बलपूर्वक पकड लिया।

आततायी इधर–उधर देखने लगे। त्रित को छिपाने का स्थान खोजने लगे। कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला। मानव का आवास कहीं समीप नहीं था। उन्हें तृणाच्छादित एक पुराना कूप दिखायी दिया। पाप के उत्साह और क्रूरता की प्रेरणा से वे प्रसन्न हो गये। त्रित को उठाकर उन्होंने कूप में डाल दिया। गायो को पूर्णतया अपहृत कर लिया गया। आततायी चले गये। कूप जलहीन था। सूखा था। घास–फूस से ढँका था। ईंटो से बॅधा था। उसके जल का प्रयोग नहीं होता था। बहुत दिनों से बन्द हो गया था। उसकी मरम्मत किसी ने करवाने का प्रयास नहीं किया।

घास–फूस के कारण उसकी हड्डियां टूटी नहीं। किन्तु गिरते समय उसे कुएँ की क्रूर ईंटों का धक्का लगा। उसका शरीर विदीर्ण हो गया रक्त स्राव हुआ। वेदना से अर्ध–चैतन्य को गया।

त्रित का आकाश कूप का ऊपरी स्तर ही था। विशाल और छोरहीन आकाश के स्थान पर, अत्यन्त संकुचित, सीमित आकाश कूप तल से दृष्टि–गोचर होता था। कूप के अन्दर सब कुछ परिमित था, संकुचित था। पैर फेलाने भर की जगह थी। चारों ओर गोलाकार ईंटों की दिवारें थीं। त्रित कूप की परिमित भूमि, बॅधी वायु, अन्धकार तथा सडी दुर्गन्ध से व्याकुल होने लगा। उसे प्रतीत हो रहा था, जैसे शरीर उसका साथ छोडना चाहता था। त्रित के सम्मुख मृत्यु की मनहूस मूर्ति धीरे–धीरे आयी।

खडी हो गयी। अनेक प्रकार के विचार उसे घेरने लगे।

"जिस त्रित का सामर्थ्य मरूतो ने युद्ध में नष्ट नहीं होने दिया था। वे मरूत उसे आज हवा पहुँचाने में असमर्थ थे। बाहर उसकी हड्डियॉ फेंक दी जायेगी। झझावात आयेगा। पवन उसके साथ खेलेगी। जिस त्रित ने त्रिशिरा का वध किया था, आज वही त्रित उपेक्षित था। निर्बल था, जीर्ण–शीर्ण कूप मे बिना प्रयास मर रहा था। जिस त्रित ने सोम देकर सूर्य को तेजस्वी बनाया था, उस त्रित पर आज सूर्य अपनी रश्मियॉ पहुँचाने में असमर्थ था और यदि बाहर उसकी हड्डियॉ फेक दी गयीं तो अपनी प्रचण्ड प्रखर किरणों से उन्हे तपाने से बाज नहीं आयेगा। "वरूण हमारे मित्र थे। आज वरूण एक बूँद जल से मेरे शुष्क कण्ठ को सिंचित करने की कृपा नहीं कर रहे हैं।

"मैंने सोम की शक्ति से वृत्र का मान–मर्दन किया था। आज अपने सर पर झूलती, लम्बी सूखी घास उखाडकर, सूर्य प्रकाश अपने तक लाने में असमर्थ हूँ। असुर नेता बल के दुर्ग को मैनें विदीर्ण किया था और आज पुरानी, लोना लगी, निष्प्रभ ईंटों को तोडकर, इस कूप के अस्तित्व का लोप कर, अपने जीवन के लिए, बाहर निकलने की शक्ति नहीं रखता हूँ"

"इन्द्र नें मेरे लिए गाये उपलब्ध की। उन गायों के कारण मैं कूप में पडा हूँ। इन्द्र आज मुझे एक बूँद दूध देनें के लिए तैयार नहीं हैं। मैं इन्द्र के समान कर्मी हूँ तथापि कर्मगति पर ऑसू बहाता शरीर के कर्म की अन्तिम घडी की बाट जोह रहा हूँ।"

त्रित व्याकुल हो गया। ऊपर देखा। घास–फूँस, पादपों से छन कर आते क्षीण प्रकाश में उसने लक्ष्य किया। त्रित को मूर्छा आने लगी। उसके जीवन का अध्याय बन्द होने जा रहा था। त्रित विचलित हो गया। व्यग्र हो उठा। सर पर सूखे घास–फूस सरसरा उठे। उसके उठने की आहट से कूप के वृक्षों पर बैठी छोटी–छोटी चिड़ियाँ फुर्र–फुर्र करती बाहर उड़ गयी। अपने में लीन हुआ। उसे

जीवन वृत्त स्मरण होने लगा। माता के गर्भ में था। किन्तु माता के गर्भ मे किसने उसका पोषण किया? किसने इसी प्रकार एक अत्यन्त सकुचित कुक्षि मे उनकी रक्षा की? विचार आते ही, उसकी चेतना जैसे पुन. लौटी। उसने स्तवन किया, "देवगण! आपके नियमों का आधार क्या है? वरूण की व्यवस्था कहाँ है? दुष्टों के पार अर्यमा हमें किस प्रकार कर सकोगे? रोदसी! हमारे दु:ख को समझो। "मै जल पुत्र त्रित को जानता हूँ। सप्त रश्मिधारी सूर्य से मेरा पैतृक सम्बन्ध है। मैं उन रश्मियों की स्तुति करता हूँ। रोदसी! मेरे दु:खो को समझो।

"इन्द्र सब वीर पुरूषों से युक्त, इस स्तोत्र द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करे। मित्र,वरूण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्यौ मेरे इस स्तोत्र का समर्थन करें।" समस्त देवताओं का त्रित ने आह्वान किया। उसके आह्वान पर, उसकी करूण अवस्था पर,बृहस्पति की करूण जागृत हुई। बृहस्पति त्रित के समीप आये।

"त्रित!" बृहस्पति की दयनीय अवस्था देखकर दु:खी हो गये। उन्होंने मृदु स्वन में कहा, "तुम्हारी शोचनीय स्थिति पर किस पाषाण हृदय मे करूणा उत्पन्न नहीं होगी?"

"बृहस्पति!" त्रित ने बृहस्पति को 'शिरसा नमामि' कहते हुए आभार प्रकट किया, "इन कूप की निर्जीव ईंटो ने मुझे आहत किया है। मेरी यह दुर्दशा ——?"

"मन्त्रविद्!" बृहस्पति ने सप्रेम कहा, "तुम्हारा कल्याण होगा। निराश मत हो।" बृहस्पति ने त्रित का उद्धार किया। त्रित ने जगत देखा। उसके अभाव में जगत में किंचिन्मात्र परिवर्तन नहीं हुआ था। बृहस्पति ने त्रित की अपहृत गायें साला वृकी के पुत्रों से वापस लीं, सादर उसे दे दीं। *

---

* त्रित की कहानी एक अच्छी कहानी कही जायेगी, परन्तु इसका आध्यात्मिक प्रयोजन क्या था,गवेषणा का विषय है। मेरा अनुमान है कि त्रित से ही कालान्तर में 'त्रिदेव' का सिद्धान्त विकसित हुआ है, क्योंकि त्रित तीन भाई थे।

५–शुनः शेप

यज्ञशाला में काष्ठ के तीन यूप गडे थे। शुनः शेप बलि निमित्त उनसे पाशबद्ध था। बन्धन में था। मुक्त नहीं था। जीवन आशा त्याग चुका था। यजमान उसे यज्ञाहुति चुन चुका था। वह हवि था। पवित्र हवन सामग्री था। परन्तु पवित्रता उसे मुक्त नहीं कर सकी थी। उसकी मुक्ति की किसी को कामना नहीं थी। उसकी बलि में लोगों को सुख था। उसके बन्धन पाश में लोगों की कामनायें गुम्फित थीं। उसके दुःख में लोगो का सुख था। उसके अवसान में लोगो के उदय की झलक थी।

मृत्यु उसे निरख रही थी। यज्ञ शिखा तृषित थी। यज्ञ मण्डप का पवित्र वातावरण उसके शरीर मोह को तिरोहित नहीं कर सका। वह अपने अमगल की प्रतीक्षा में व्याकुल था। वह अपनी काया का रक्षाकांक्षी था। यज्ञमान उसकी काया विनष्टि मे अपने सुन्दर भविष्य का दर्शन कर रहा था। शुन शेप निस्सहाय था। हताश था।

लोंगो का स्वार्थ उसके विनाश में था। और उसका स्वार्थ अपनी रक्षा में था। परस्पर विरोधी स्वार्थों के संघर्ष में, जीवन–मृत्यु के द्वन्द्व में, उत्सर्ग और अस्तित्व के अधर में उसे स्मरण आये, निस्सहायावस्था के एकमात्र सम्बल, एकमात्र आशा, एकमात्र सन्तोष, वरूणदेव। उसकी यह क्षीण आशा करूण वाणी में मुखरित हुई

"वरूण! निशदिन बन्धनयुक्त मैं आपका स्तवन करता हूँ। विज्ञ एवं दुर्धर राजा वरूण! मुझे पाश मुक्त कीजिये। पाश बन्धन खोलिये। अग्नि का ग्रास मुझे मत बनाइये।"

शुनः शेप की दशा शोचनीय थी। आसन्न मृत्यु भय नेत्रों में झलक रहा था। जगत उसकी दृष्टि में किसी समय लोप हो सकता था।

भयकर भावनायें उदय होते ही वह मृत्यु दुःख से कातर हो गया। उसे विषाद हुआ। विवशता पर झुँझलाया। लोगों की क्रूरता पर क्रोधित हुआ। किन्तु वह पाशबद्व था। उसकी भावनाएँ मूर्त न हो सकीं। उसकी दयनीय वाणी यज्ञ मण्डप में गूँजी। किन्तु उसकी करूणा बन गयी, लोंगो के कौतुहल की सामग्री। उसने वरूण का करूण स्वर से स्तवन किया

"हे वरूण! दण्डवत्, यज्ञ और आहुतियॉ आपके क्रोध का निवारण करें। विज्ञ, बली, यशस्वी, सौभाग्यदायक वरूण! हमारे मध्य पधारिये। मुझे कृत पापो से मुक्त कीजिये।"

"पाश पीडा से पीडित शुन:शेप के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। उसकी दयनीय अपस्था लोगों की ऑखों में आश्चर्य बन गयी।" मनुष्य होकर वह बलि से भयभीत है? वह मृत्यु से डरता है? देवकार्य मे प्रसन्नता के स्थान पर रोता है? स्वर्ग पथ से विचलित होता है? किन्तु शुनः शेप ने अपने निर्मल अश्रु जल से वरूण को अर्ध्य देते हुए स्तवन किया, "वरूण! मेरे ऊपर के पाश को नष्ट कीजिए। मध्य के पाश को नष्ट कीजिए। और नीचे के पाश को नष्ट कीजिए।

अजीगर्ति शुनः शेप ने वरूण को स्मरण करते हुए पुनः स्तुति की। शुन: शेप ने हव्य वाहन अग्नि की स्तुति की:

"अग्नि! आप सतत युवा हैं। तेजस्वी हैं। अग्ने! आप सचमुच पुत्र के स्नेही पिता हैं। सम्बन्धी के सम्बन्धी हैं। मित्र के मित्र हैं। देवताओं की पूजा करते हुए भी हम आपको ही हवि देते हैं।

"अमर्त्य अग्नि! आपकी तथा मानवो की प्रशंसादायक वाणियॉ स्नेहमय हैं। बल पुत्र अग्ने! आप अपनी समस्त अग्नियुक्त हमारी प्रार्थना सुनिये।

शुन:शेप ने इन्द्र–सोम की स्तुति की ।

शुनःशेप नें इन्द्र की स्तुति की, उन्हे अञ्जलि बद्ध प्रणाम किया। अग्नि ने उसे सहस्र यूप बन्धन से मुक्त कर दिया । उसका पाश बन्धन खुल गया।

इन्द्र उसके सम्मुख प्रकट होकर बोले, "शुनशेप ! तुमसे प्रसन्न हूँ ।. यह हिरण्यमय रथ तुम्हारे लिए है, सूक्तद्रष्टा।"

६. कक्षीवान–स्वनय

राजकीय शोभायात्रा अकस्मात रुक गई। राजा स्वनय के विमल नेत्रों नें देखा मार्ग के पार्श्व मे शयनशील ऋषिकुमार। ऋषि तरुण था। गाढी निद्रा में था। मार्ग की श्रान्ति मिटाता अनायास सो गया था। पद धूल से भरे थे। प्रतीत होता था, कहीं दूर से एकाकी वन में आ गया था। राजा ने उसकी आकर्षक यौवनसुलभ शोभा देखा। प्रसन्न हो गया। उसे एकटक देखने लगा। पार्षद पीछे रूके। निद्रित ऋषि को कोलाहल का आभास हुआ। ऋषिकुमार ने राजा को देखा। वन में भीड़ देखी। कौतूहल बढा। राजा नें स्नेह से पूछाः

"ऋषिकुमार! आपका आगमन कहॉ से हो रहा है?" राजा नें कहा

ऋषिकुमार ने कहा, "राजन! मैंने विद्याध्ययन समाप्त किया है। गुरू आश्रम से घर लौट रहा हूँ।"

"मुझे लोग स्वनय भावयव्य कहते हैं। मैं सिन्धुतटीय भूखण्ड का राजा हूँ।" राजा ने मृदुस्वर में कहा। "मेरा नाम" ऋषिकुमार ने किंचित् रूकते हुए कहा, "मुझे उशिज पुत्र कक्षीवान् कहते हैं। मेरे पिता का नाम दीर्घमस् है। मैं प्रज वंशीय हूँ। कुछ महानुभाव मुझे काक्षीवत औशिज भी कहते हैं। "

ऋषि! आप मन्त्र–द्रष्टा हैं। आप सुयोग्य हैं। आप अपने गृह की ओर लौट रहे हैं। क्या गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का विचार हैं?" ऋषिकुमार की दृष्टि राजा

की सुन्दर कन्याओं पर पडी। वे ऋषिकुमार के युवक पुष्ट शरीर को देखकर प्रसन्न हो रही थीं। राजा की भार्या कुमार को जामाता को दृष्टि से देखने की कल्पना कर रही थी। राजा ने अपनी भार्या की तरफ देखा। भार्या मुस्कराई। दोनो ने नेत्रो द्वारा परामर्श कर लिया।

राजा ने पूछा:

"ऋषिवर! आपके वंश का विशेष परिचय जान सकते हैं?"

"नृपवर! मैं अंगिरस के वंश का हूँ। मैं उच्थ्य पुत्र ऋषि दीर्घतस् का पुत्र हूँ।"

राजा ने कहा "ऋषिकुमार! हमारे और आपके गोत्र तथा वर्ण में विरोध नहीं है। हम एक–दूसरे से सम्बन्ध कर सकते हैं।" राजा स्वनय ने अपनी दस कन्याओ का एक साथ पाणी–ग्रहण संस्कार कक्षीवान् के साथ कर दिया। कक्षीवान् गृहस्थ बन गया। उसके जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ। राजा ने आभूषणो से भूषित कन्याओं को कक्षीवान् को दिया। कन्याओ के वाहनार्थ दस रथ दिये। प्रत्येक रथ में स्वस्थ सुदृढ़ शरीर विभिन्न वर्णों के अश्व, धन, बर्तन, बकरियां तथा भेड़ें भेंट कीं। साथ ही साथ राजा ने कक्षीवान् को एक शत निष्क तथा एक शत वृषभ दिये। राजा ने कक्षीवान् को एक हजार साठ गायें और दीं। कक्षीवान् धन और अपनी पत्नियों के साथ दस रथों पर आरूढ हुआ। अपने पिता के आवास की ओ चलने के लिए उद्यत हुआ। राजा की बन्दना कीं। अपनी बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेंट किया। पशुधन तथा पत्नियो के साथ प्रस्थान किया। कक्षीवान् ने अपने पूजनीय पिता को गाय दी। तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक सूक्त स्तवन किया: "दानी व्यक्ति सूर्य की उदय होती किरणों के साथ दान देता है। विद्वान लोग उस दान को ग्रहण करते हैं। उस धन से सन्तान, आयु, बल सहित रक्षा होती है। उसे असंख्य अश्व, गाय, स्वर्ण राशि मिलती हैं इन्द्र की दानियों पर कृपा होती है। वे उन्हें सामर्थ्य देते हैं। प्रातःकाल उन्हें धन

से पूर्ण कर देते हैं।" शोभन कर्म युक्त यज्ञ के अवलोकनार्थ निमित्त में रथारूढ आ गया हूं। दानी का स्वर्ग में सत्कार होता है। देवताओं के वर्ग में पहुचते है। जलस्रूप घृत, नदियां उनके निमित्त प्रवाहित होती है। उनकी दक्षिणा सर्वदा वार्धक्य प्राप्त करती है । दानियों के पास ऐश्वर्य है। दानी के निमित्त आकाश मे सूर्य स्थित हैं। दानी दान स्वरूप अमृत प्राप्त करता है। उन्हें दीर्घायु प्राप्त होती है। दानी के समीप दुःख नहीं आता। उसे पाप आवृत नहीं करते। जगत के शोक केवल अदानी व्यक्ति को व्याप्त करते हैं।

समय बीतता गया। कक्षीवान् ने राजा स्वनय की इच्छानुसार एक शत यज्ञानुष्ठान किये। उशिज पुत्र कक्षीवान् ने अपनी विद्या तथा कार्यों से ख्याति प्राप्त कर ली। उसकी प्रसिद्धि दूसरो के लिए अनुकरणीय हो गयी। अश्विनद्वय उसकी सर्वदा रक्षा करने के लिए उद्यत रहते थे। उन्होंने उसके लिए वर्षा की।

कक्षीवान् की बुद्धि उत्तरोत्तर प्रशस्त होती गयी। कक्षीवान् ने विद्वान ऋषि तथा द्रष्टाओं में यश प्राप्त किया। उसने देवताओं को सोम दिया। उसके बदले में देवताओं ने उसे पशुधन प्रदान किया। हर्षदायक सोमपान से उसकी बुद्धि दिन–प्रतिदिन कुशाग्र होती गयी। दीर्घ–कालीन शत वर्षीय जीवन प्राप्त किया। उसके वयस्क हो जाने पर भी इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे 'वृचवा नामक पत्नी दी।'

७–नमुचिः

यज्ञस्थल में भगदड़ मच गयी। ऋषिगण भयग्रस्त हो गये। देखते–देखते असुर नमुचि ने यज्ञ भंग कर दिया। त्रस्त ऋषियों ने इन्द्र का आह्वान किया। मायावी असुर नमुचि के संहार की प्रार्थना की ।

---

*

युद्धस्थल पर उपस्थित योद्धा के साथ युद्ध करना सरल था। किन्तु मायावी असुरों के साथ युद्ध करना कठिन था। पराक्रमी इन्द्र ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। दास नमुचि को माया शक्ति से हीन कर दिया। असुर की एक शक्ति का लोप हो गया।

नमुचि प्रबल था। उसकी माया का नाश हुआ। किन्तु उसकी शक्ति का नाश नहीं हुआ। वह इन्द्र के भय से दूर देश मे पलायन कर गया। नमुचि प्रबल था। उसे हराना सरल नहीं था। युद्ध–स्थल में नमुचि और इन्द्र निर्णायक युद्ध निमित्त उठ आये।

वज्रिन इन्द्र परम वेग से नमुचि सेना की ओर बढे। उनके सहायक अश्विनी–कुमारगण थे। अश्विनीकुमारों ने उन्हें पुष्टिकर सोम पान कराया। सोम पीते ही इन्द्र ने अतुलित बल का अनुभव किया। उनका रूप अत्यन्त उग्र हो गया। रूद्र रूप इन्द्र नमुचि की सेना पर टुट पडे। अश्विनीकुमार उनकी रक्षा में तत्पर थे।

असुर वाहिनी पराजित हो चुकी थी। शत्रु सेना का संहार हो चुका था। नमुचि बच गया था। नमुचि ने युद्ध स्थल से पलायन किया। इन्द्र ने असुरों के ९९ नगरों को नष्ट किया। एक नगर अपने निवास निमित्त नष्ट होने से बचा लिया।

नमुचि भागकर प्राण नहीं बचा सका। इन्द्र प्रबल वेग से उसके समीप पहुॅंच गये। अपने शत्रु को इन्द्र ने प्रत्यक्ष देखा। पराक्रमी इन्द्र का स्वरूप जाज्ज्वल्यमान अग्नि की तरह प्रज्ज्वलित हो उठा।

नमुचि हनन से मनु का मार्ग सरल हो गया। वे देवताओ के पास सीधे पहुॅंच सकते थे। असुर का व्यवधान मार्ग से दूर हो चुका था और दूर हो गया ऋषियों

का असुर आतंक। देवता यज्ञों से अपना भाग प्राप्त करने लगे। और नमुचि अर्थात जो जाने न दे, वह स्वयं जल फेन द्वारा इस जगत् से चला गया। *

८.दीर्घतमा—

"ममते !" बृहस्पति ने अपने ज्येष्ठ भ्राता उचथ्य की भृगुवशीय पत्नी को कामलोलुप दृष्टि से देखा। ममता सुन्दर थी। युवती थी। सरस थी। मधुरभाषिणी थी। आकर्षक थी। स्वर्णमयी प्रतिभा थी। काम सहचरी रति तुल्य रूपवती थी। सहसा उसमें उत्पन्न हुए संकोच ने उसका अप्रतिम रूप और बढा दिया। उस रूप को देखकर बृहस्पति का मन चंचल हो गया।

"बृहस्पति!" ममता वस्त्रों में अपने अंग उपांग को समेटती बोली, "आपका यह अशोभनीय व्यवहार? मैं आपके ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी हूँ। इस शरीर पर आपका अधिकार नहीं है ।

"यौवन और रूप सबकी ऑखें देखती हैं। उन्हें छिपाकर रखना होता, तो देव इतनी सुन्दर रचना क्यों करते!" रति सुख के अभिलाषी बृहस्पति ने लज्जा को तिलांजलि दे दी थी।

"ओह!" ममता सहमी।

स्थान एकान्त था। पादपों की मंजरियॉ सुरभि दान कर रही थी। मरूत के शीतल स्वास्थ्यकर प्रवाह ने कामोत्तेजित शरीर में बल बढा दिया था। बृहस्पति की सतर्क दृष्टि ने चारो ओर देखा।

---

* यह कथा शतपथ ब्राह्मण में एक दूसरे रूप में दी गयी है। कालान्तर में यह कथा नरसिहावतार की कल्पना का मूल स्रोत हुई। पुराणों में अस्त्र–शस्त्रों द्वारा तथा भूमि अथवा आकाश में न मरने का वर प्राप्त हिरण्यकश्यप को भगवान विष्णु नें नरसिंह का अवतार लेकर पलथी पर रख कर मारा। इस प्रकार न तो वह भूमि पर मरा और न आकाश में। हिरण्यकश्यप का ह्रदय अपने नखों से विदीर्ण किया। किसी प्रकार के आयुध का प्रयोग नहीं किया। यहाँ भी जल के फेन से इन्द्र ने नमुचि का सिर मरोडकर उसे चूर्ण किया। किसी आयुध अर्थात अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग नहीं किया।

प्रकृति मुसकरा रही थी। सरोवर में हस–हंसिनी किलोलरत थे। प्रफुल्लित थे। कुमुदिनी अमुकुलित थी, पद्म सूर्य को देखकर प्रसन्न था। कुमुदिनी शशि के वियोग मे उदास थी। पुष्पित पुष्प पर भ्रमर बैठी थी। उसके चारो ओर भ्रमर फिरता था। गुनगुनाता था। आकुल होता था। भ्रमरी का पीछा करता उडता था।

प्रकृति के सरस वातावरण में वृहस्पति आन्तरिक कामजन्य सरसता का अपूर्व अनुभव करने लगे। मन को ढील देने मे उन्हे विचित्र अनुभूति होने लगी। ममता के स्पर्श से सुख में खो जाने के लिए तैयार हो गये। वे ममता की ओर बढे।

अबला ममता पुरूष बल का सामना न कर सकी। वृहस्पति के बाहुपाश में लता तुल्य सिकुड गयी। विकलित ममता ने वृहस्पति से आर्त निवेदन किया, "वृहस्पति! मेरे गर्भ में तुम्हारे बड़े भाई की संतान हें।"

"ममता! मैं तुम्हारे रति दान का अभिलाषी हूँ । तुम्हारा गर्भ मेरे कर्म में बॉधा नही डाल सकता।"

वासना के तीव्र प्रवाह मे वृहस्पति प्रवाहित हो चुका था। वर्षाकालीन क्षुद्र नदी की प्रचंड बेगवती धारा की तरह वासना–वेग किसी व्यवधान से रूकने वाला नही था। सबका अतिक्रमण करता जलप्लावन के समान बह चला।

"वृहस्पति!" गर्भस्थित गर्भ ने वृहस्पति के शुक्रोत्सर्ग के समय कहा, " मैं यहॉ पूर्व से ही सम्भूत हूँ।"

गर्भ का प्रतिरोध बढ़ता गया। कामोत्तेजना मे ठेस लगती रही। रति सुख में बाधा पड़ती रही अतृप्त वासना की प्रतिक्रिया प्रतिहिसा में हुई। काममूर्ति क्रोधमूर्ति में हो गई। उन्होने आवेश में शाप दियाः

दीर्घतमा के मार्मिक, दार्शनिक स्तवन से देवताओं को उस पर दया आ गयी। उसे चक्षु प्राप्त हो गये। दीर्घतमा लोक में द्रष्टा तथा देवता बन गया।

खिन्न परिचारक षडयंत्र मे लग गये। अपने स्वामी वृद्ध तपस्वी दीर्घतमा से छुटकारा पाने के लिए।

दीर्घतमा के परिचारक उसे स्नानार्थ नदी तट पर ले आये। दीर्घतमा की इन्द्रियॉ शिथिल थी। यष्टि का सहारा लेकर खडा था। कमर झुकी थी तथापि तपस्वी था। द्रष्टा था। उसकी हत्या सरल नही थी।

स्नान निमित्त परिचारको के सहारे नदी में उतरा। क्रूर परिचारकों ने उसे गहरे जल मे धकेल दिया। दीर्घतमा हाथ –पैर पटकते सहायतार्थ आर्तनाद करने लगा। परिचारक उसे डूबता न देखकर घबराये।

त्रेतन ने अपनी कृपाण निकाली। दीर्घतमा जल में मृत्यु से जूझ रहे थे। त्रेतन ने कृपाण द्वारा उन पर आक्रमण किया। क्रूर त्रेतन को वृद्ध पर दया नहीं आयी।

आश्चर्य! परिचारक भागे। त्रेतन का शस्त्र दीर्घतमा पर आक्रमण नहीं कर सका, बल्कि उसी के शरीर के सिर स्कंध एवं वक्षस्थल के टुकडे उसी की कृपाण से हो गये। उसका मृत शरीर जल मे बह चला।

दीर्घतमा संज्ञाशून्य हो गये। जल प्रवाह में बहते रहे। कही सरिता तट पर जाकर लगे। वहॉ वे पुनः जीवन प्राप्त कर सके। शतवर्षीय आयु प्राप्त की। और एक दिन अनेंक सूक्तों का द्रष्टा ब्रह्मलीन हो गया।*

---

* पुराण तथा महाभारत में दीर्घतमा की कथा दी गयी है। ऋषि बहते–बहते अग देश में पहुँचे। वहाँ जल धारा से निकाले गये।

अगराज की दासी उशिज संतानहीन थी। पुत्रकामना से राजा ने उसे ऋषि के पास भेजा। ऋषि द्वारा काक्षीवत आदि सताने पैदा हुई। सत्कृत होकर ऋषि ने वहाँ सुखपूर्वक जीवन यापन किया।

ऋग्वेद में यह घटना नही वर्णित है, बृहददेवता में है। परन्तु ऋग्वेद कालीन आर्यों को अंग देश का ज्ञान नहीं था। यह घटना कथा को पूरा करने के लिए कालांतर में मिला दी गयी। अतएव इसे यहाँ नहीं दिया गया है।

६. इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य

इन्द्र ने मरूतो को सबोधित किया, " मरुद्गण। किस सौभाग्य के कारण आप सम वयस्क हैं, समस्थानी हैं, समशोभायुक्त हैं? आप किस देश से आये है ? आपका मंतव्य क्या है? वृष्टिकारक। आप क्या धन की कामना से शक्ति की पूजा करते हैं?"

"ऐश्वर्यशालिन ! मरूतो ने कहा, "आपने बहुत कर्म किये हैं। परन्तु वह सब हमारी सयुक्त शक्ति के कारण सपादित हुए हैं। महाबलिन्। हम लोगो ने भी बहुत कर्म किये हैं। और अपने कर्म द्वारा अपनी इच्छानुसार हम मरुत् हैं।"

"मरूद्गण!" इन्द्र ने मरूतों की गर्वोक्ति का उत्तर दिया, " मैने अपने पराक्रम से, अपने उग्र क्रोध से वृत्र का वध किया है। मै वज्र धर हूँ। मैने प्राणियों के निमित्त निर्मल, मृदु गतिशील सलिल का सृजन किया हैं।"

अगस्त्य ऋषि तप कर रहे थे। अपने तप द्वारा इन्द्र तथा मरूतों के संवाद को जान लिया।

तिरोभाव अगस्त्य ने दोनों की मैत्री की कामना करते हुए कहा, " मरूद्गण। आपकी मनुष्य स्तुति करते हैं। अपने मित्रों के समीप शीघ्रता पूर्वक गमनशील होइये। उत्तम धनों की प्राप्ति के साधन होते हुए लोगों में कर्म की प्रेरणा कीजिए।"

अगस्त्य ने इन्द्र निमित्त एक हविष्य का निर्माण किया। तत्पश्चात् वेगपूर्वक इन्द्र के समीप गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मरूतों तथा इन्द्र की स्तुति की। उन्होंने इन्द्र तथा मरूतों के मध्य सन्धि स्थापित करने के विचार से मरूतों को वह हवि देने का निर्णय किया जिसे वे इन्द्र को देना चाहते थे।

अगस्त्य की दाहक भावना इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने अगस्त्य को संबोधित किया.

"अगस्त्य! आज तथा कल कुछ नही है, जिसका कभी अस्तित्व ही नही रहा उसको कौन जानता है? जिनका मन चंचल है वे चिन्तन किये हुए विषय को भी भूल जाते हैं।"

"इन्द्र! " अगस्त्य ने कहा, " मरुतों के साथ अच्छी तरह आप यज्ञ का भाग स्वीकार कीजिए। मरूद्‌गण आपके भ्राता हैं।"

"आप मित्रों के आश्रय हैं। आप मरुतों के समान हैं। हमारी हवि स्वीकार कीजिए।"

अगस्त्य की बातों से इन्द्र प्रसन्न हुए। अगस्त्य ने मरुतों को हवि समर्पित की।

सोम बनाया गया। इन्द्र ने मरुतों के साथ सोमपान किया।

अगस्त्य ने मरुतों की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति की। जहॉ–जहॉ इन्द्र मरुतों के साथ गये वहॉ वे मरुत्वत् हुए।

१०. लोपामुद्रा अगस्त्य

अगस्त्य का साथ यौवन त्याग चुका था। अगस्त्य का साथ बुद्धि ने प्रार्थक उचित नहीं समझा। पर्वत है अग पर्वत का स्तम्भन करने वाले का नाम है अगस्त्य, किन्तु कामवेग में पर्वत उड़ जाता है।

तपोवृद्ध, वयोवृद्ध अगस्त्य को देखा लोपामुद्रा की चंचल की ऑखों ने। काम की ऑखो ने। उसने देखा अगस्त्य में काम रति लोलुप लोपामुद्रा चली काम से मिलने। बसंत ने दुंदुभी बजायी। अगस्त्य ने देखा एक नारी।

रूप आकर्षण है। रूप का यही प्रयोजन है। प्रकृति सहायक हुई। अनुरूप वातारण पैदा किया। प्रकृति ने नर नारी बनाये। काम रति बनाये। आकर्षण बनाया। मिलन बनाया। मिलन सुख बनाया और उस सुख का परिणाम बना प्राणी।

"सुश्रोणि!" अगस्त्य के स्वर में काम ने प्रवेश किया, "काम प्रकृति का गुण है।"

"तन्वी!" अगस्त्य ने कामदृष्टि से लोपामुद्रा के उत्फुल्ल मुख कमल की ओर देखते हुए कहा, " हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं हुआ है, देवता हमारे रक्षक हैं। हम स्पर्धाशीलों को वश में करते हैं। शत शत साधनों का उपयोग करते हैं।"

लोपामुद्रा प्रसन्न हो गयी। अगस्त्य ने उसके प्रसन्न मुख को देखते हुए सस्मित कहा

" प्रिये! हम नर नारी रूप से, स्त्री पुरूष रूप से, पति–पत्नी रूप से गृहस्थ धर्म का पालन करेंगे।"

"गुरूवर!" शिष्य ने नतमस्तक हो अगस्त्य और लोपामुद्रा के सम्मुख आकर प्रणाम किया।

"शिष्य!" कहो क्या बात है? अगस्त्य ने मुस्कराते हुए पूछा। उनके तप से ओजस्वी मुखमण्डल की अबूझन मानवीय सरल प्रतिमा मे परिणत हो चुकी थी।

शिष्य का मुख लज्जा से नत् था। वह चाहकर न बोल सका। ऋषि ने उत्साहित करते हुए कहा, " कहो वत्स!"

"पीताब्धि!" शिष्य ने पति पत्नी को 'शिरसा नमामि' करते हुए कहा, " मैने पाप किया है।"

" पाप?" आश्चर्य से ऋषि ने कहा।

" हॉ"

"कैसा?"

"मैनें आपका संभोग सलाप सुन लिया है। मैने पाप किया है। मैं ब्रह्मचारी हूँ। मुझे नहीं सुनना चाहिए था। "

ऋषि मे क्रोध का संचार नहीं हुआ। वे स्थिर दृष्टि से शिष्य को देखने लगे। लोपामुद्रा ने वात्सल्य प्रकट करते हुए कहा:

" वत्स! तुमने कोई पाप नहीं किया है। तुम्हारा विचार दूषित नही था।"

"ठीक है प्रिये! यह निष्पाप है।"

शिष्य की ऑखों में अविरल अश्रुधारा बह चली। उन अश्रुविन्दुओं मे ऋषि ने देखी प्रायश्चित की पवित्र रेखा।

"पुत्र!" अगस्त्य ने कहा, "तुम निष्पाप हो।"

सूक्त द्रष्टा लोपामुद्रा ने प्रेम से शिष्य को उठाकर हृदय से लगा लिया। उसकी मूर्धा का चुंबन करते हुए बोली, " प्रिय तुम प्रशंसनीय हो।"

सूक्त द्रष्टा अगस्त्य उठकर खडे हो गये। उन्होनें शिष्य को अंक मे लेकर उसके मूर्धा का चुंबन लेते हुए कहा:

"शिष्य! तुम पवित्र हो" *

---

* काम प्राणीमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। काम के कारण ही प्राणी का गर्भाधान होता है। काम के अभाव में प्रजनन नहीं हो सकता। प्रजनन यदि रुक जाय तो जगत का काम नहीं चल सकता। हमारे अस्तित्व का लोप हो जायेगा।

११.त्रिशिरस्

त्रिशिरस् त्वष्टा का पुत्र था। असुरो की बहन से इसने जन्म ग्रहण किया था। देवताओं का पुरोहित था। परन्तु असुरों के साथ सबध था, अतएव इसका झुकाव सुरों की अपेक्षा असुरों की ओर अधिक था। इसके तीन सिर थे। अतएव इसका नाम त्रिशिरा पडा था। एक मुख अन्नाद था, उससे यह अन्न खाता था। दूसरा मुख सोमपीथ था, उससे सोमपान करता था। तीसरा मुख सुरापीथ था, उससे वह सुरा पान करता था। त्रिशिरस असुरों की शुभकामना किया करता था। यज्ञ का हवि भाग असुरों को दे देता था।

त्रिशिरस् युवा था। स्वय सूक्त द्रष्टा था, ऋषि था। त्रिशिरा के पवित्र मस्तको को इन्द्र ने बज्र द्वारा काट कर गिरा दिया। देव पुरोहित की हत्या हुई। त्रिशिरस् ब्राह्मण था। ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र मुक्त नही हो सकते थे।

ब्रह्म हत्या होते ही वाक् ने इन्द्र को सम्बोधित किया: "इन्द्र! तुमने हत्या की है। ब्रह्महत्या की है। तुमने विश्व रूप का वध किया है। वह परांगमुख होकर भी शरणागत था।"

ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र म्लान हो गये।

जिस मुख से त्रिशिरा ने सोमपान किया था, वह मुख भूमि पर गिरते ही कपिंजल पक्षी बन गया। जिस मुख से सुरापान किया था, वह कलंविक बन गया और जिससे उसने अन्न ग्रहण किया था, वह तित्तिर पक्षी बन गया।

इस कथा में मानसिक तथा शारीरिक अपराध तथा उसकी दण्ड प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। शिष्य ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। उसने मानसिक अपराध अपनी दृष्टि से किया था। उसका वह दण्ड पाना चाहता था। परन्तु अगस्त्य तथा लोपामुद्रा ने उसे अपराध नहीं माना यह उस समय के सामाजिक व्यवहार तथा आचरण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। शारीरिक के साथ मानसिक अपराध की गणना उन दिनों अपराधों में की जाती थी। मानसिक अपराधी भी दण्ड का भागी हो सकता था।

आधुनिक न्यायशास्त्र जब तक अपराध प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण नहीं हो जाता उसकी गणना अपराध में नहीं करता और न यह अपराध दण्ड की श्रेणी में आता है। मानसिक अपराध तथा अपराध की तैयारी करना उस समय तक दण्डनीय नहीं होता जब तक वह घटना घट नहीं जाती। वैदिक विधिशस्त्र और आज के विधिशस्त्र में यही अन्तर है।

इन्द्र ने अपने पातक को तीन भागों में विभाजित किया। उन्हे आवास की समस्या उपस्थित हुई। वे जहॉ स्थापित किये गये उनमें दोष उत्पन्न हो गये। इन्द्र ने अपने पातक को पृथ्वी वृक्ष तथा स्त्रियों स्थापित किया। अतएव पृथ्वी मे सड़ने का दोष उत्पन्न हो गया। वृक्षों में अनायास टूटने का दोष पैदा हो गया और स्त्रियो में रजस्वला होने का दोष प्रविष्ट हो गया। रजस्वला स्त्री संगम द्वारा उत्पन्न सन्तानें दोष युक्त होने लगीं। रजस्वला स संगम करना त्याज्य माना गया।

इन्द्र को अपना पातक दूर करना था। यह स्थिति बहुत दिनों तक चल नही सकती थी। अतएव ऋषि सिन्धुदीप ने इन्द्र के पाप निवारण का विचार किया, उन्हे जल से अभिसिंचित किया।

अभिषिक्त जल इन्द्र के मूर्धा पर पडा। ब्रह्महत्या इन्द्र का शरीर त्याग कर भाग चली। पातक शरीर के मैल की तरह इन्द्र की काया से धुल कर गिर गया।*

१२– यम–यमी

"बहन!" यम अपनी सगी बहन की चंचलता देखकर चकित हुआ। उसके वक्षस्थल पर लगे आर्द्र अंगराज सहसा सूखने लगे, "हमारा तुम्हारा सखा–सख्य का संबन्ध नहीं है। हम यमज हैं। माता के गर्भ में एक साथ रहे हैं। यद्यपि हमारी तुम्हारी योनि भिन्न है फिर भी तुम मेरे लिए अगम्या हो। हमें यह अभीष्ट नहीं है।"

बहन की प्रगल्भता पर यम स्वयं लज्जित हो गया। उसकी दृष्टि बहम के कामोद्वेलित नेत्रों की तरफ नहीं उठ सकी। भूमि की ओर उसकी दृष्टि लगने लगी।

---

* त्रिशिरस अन्न, सोम तथा सुरापान तीनों का सेवन त्रिशिरस करता था। अलकारिक भाषा में उन्हें तीन सिरों का प्रत्येक से खाना तथा पीना कहा गया है। परन्तु यह कहानी सुर तथा असुरों के बीच विवाह प्रचलन तथा उसकी मान्यता को स्वीकार करती है। सुरों का पेय पदार्थ सोम था, असुरों का पेय सुरा थी और मनुष्यों का भोजन अन्न था। त्रिशिरस् की माता असुर कन्या थी। पिता सुर ऋषि था। अतएव उसमें सुर–असुर दोनों के गुण और अवगुण विद्यमान थे। सुर तथा असुर से उत्पन्न सन्तान हीन नही मानी जाती थी। समाज में उसका आदर होता था त्रिशिरस् इस प्रकार की सन्तान होते हुए भी देवताओं का पुरोहित था। वह सूक्त द्रष्टा था। स्वयं ऋषि था। उसे ब्राह्मण माना गया था। उसको मारने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी। यह कहानी अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देकर, उनसे उत्पन्न सन्तान को हीन मानकर समाज में अन्य लोगों के समान उच्च स्थान देती है।

यम अपनी बहन के अशोभनीय प्रस्ताव से कॉप उठा। धीरे से कहा "बहन! देवताओं के गुप्त दूत सर्वदा उपस्थित रहते हैं। वे रात्रि–दिन पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। उनके सर्वदर्शी नेत्र कभी बंद नहीं होते। रात्रि अथावा दिन उनके कार्य में बाधा नहीं डाल सकते। ओ! नश्वर प्राणी! तुम शीघ्रतापूर्वक किसी दूसरें से प्रणय कर, रथ के दो पहियों की तरह उसके साथ काम में सलग्न हो।" "बहन वह युग आ गया है, जब बहन भाई का वरण नहीं करेगी। बहन उसका वरण करेगी, जो उसका भाई नहीं होगा। अतएव मेरे स्थान पर तुम किसी दूसरे को अपना पति वरण कर लो और अपने हाथ का सुखद तकिया अपने पति को लगा दो।" यमी खिन्न हो गयी और उसने अपने यमी भाई को उपालम्भ देती हुई बोली:

"यम वह क्या कोई भाई है, जिसके रहते बहन का पति न मिले, वह बहन कैसी, जिसके पास दुर्भाग्य दौडता आता है, मैं काम–वासना से अत्यन्त पीडित हूँ, मैं तुमसे सानुनय विनती करती हूँ। तुम अपना शरीर मेरे शरीर से मिला दो।"

"बहन!" यम घृणापूर्वक कहा, " मैं तुम्हारे स्पर्श से दूर रहना चाहता हूँ। उन्हे पापी कहा जाएगा, जो अपनी बहन से संबन्ध करेंगे। तुम किसी दूसरे के साथ अपनी काम वासना की तृप्ति करो। मुझे इस काम सुख की इच्छा नहीं है।"

कन्दर्प ज्वर पीडित यमी की भावना में ठेस लगी। काम–क्रोधित वह बोल पडी– " आह!यम!! तुम दुर्बल हो। मै तुम्हारी बुद्धि और हृदय को नही समझ पा रही हूँ। कोई अन्य तन्वी अश्व के तंग अथवा वृक्ष की लता की तरह अपने आलिंगन में तुम्हे बॉधना चाहती है।" " बहन!" यम ने गम्भीर स्वर में कहा, " अन्य व्यक्ति तुम्हारे आलिंगन का पात्र है। वह अन्य व्यक्ति वृक्ष लता की तरह तुम्हारा आलिंगन करेगा। उसका प्रणय प्राप्त करोगी। वह तुम्हारा प्रणय प्राप्त करेगा और तुम्हारा वर मिलन आनन्दमय हो।"

यम ने बहन को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद की पवित्र औषधि में, जैसे यमी का काम ज्वर शान्त होने लगा। यम अग्नि है, पृथ्वी यमी है। यम अग्नि–यमी पृथ्वी के सुगन्धि नष्ट करने का साधन नही बन सका। *

१३– सरण्यू

त्वष्टा चतुर शिल्पी थे। वास्तु निर्माणकार थे। वास्तुकला के आचार्य थे। इन्द्र के लिए उन्होंने वज्र बनाया था। विश्व प्रसिद्ध तीन शिल्पी ऋभु, बिम्वान तथा वाज उनके शिष्य थे। त्वष्टा मंजु है। सुपाणि हैं। तक्षण कलाकार हैं। लौह परशु धारण करते हैं। उनके रथ में दो अश्व योजित होते हैं। अत्यन्त भास्वर हैं। जटिल रचना के विशेषज्ञ हैं। ब्रह्मणास्पति के लौह–कुठार को तीक्ष्ण करते हैं। आयस पाश बनाते हैं। श्रेष्ठ पात्र बनाते हैं। देवताओ के निमित्त शोभन पात्रों का निर्माण किया था। चमस, सम्पत्तिपूर्ण कलशा, सोम पात्र, उनके विलक्षण शिल्पकला के नमूने थे। उन्होंने नवीन चमस पात्र बनाया। परन्तु उनके शिष्य ऋभु ने चार चमस पात्रों की रचना कर दी। उनका चमस ही वर्ष है। रात्रि का आकाश उनके चमस पात्र तुल्य हैं।

त्वष्टा निर्माता है। सार्वभौम के पिता कहे जाते हैं। उनहोंने विविध प्राणियों को उत्पन्न किया है। सोम के अभिभावक हैं। त्वष्टा के ब्रह्मणस्पति पुत्र हैं। वायु उनका जामातृ है। देव भी उनकी सन्तान हैं।

---

* नोट– 'सुदूर पूर्व काल में आर्य लोग यमुना के तट से मिस्र को नील नदी और कैस्पियन अर्थात कश्यप सागर तक फैले थे। वहाँ के निवासी आज भी आर्यों की सन्तान हैं, परन्तु देश तथा परिस्थितियों के अनुसार रीति–रिवाज तथा विचारों में अन्तर पड़ता गया। एक ही स्रोत से अनेक शाखाएं, प्रशाखाए निकलीं। मिस्र के लोग आर्यो के समान सूर्योपासक थे। वहाँ सगे भाई–बहन का विवाह उत्तम समझा जाता था। मिश्र के राजा फराहे का विवाह अपनी बहन के साथ के साथ सनातन काल से होता रहा है। यमज भाई बहन का विवाह औ उत्तम माना जाता था। यहाँ सगे भाई बहन के विवाह की प्रथा को वर्जित किया गया है। मुसलमानों मे दूध बचाकर विवाह करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। ऋग्वेद में इस प्रकार के विवाह को अमान्य माना है इस कहानी की यही कथावस्तु है।

यम–यम का अर्थ युगल किवा जुडवा शिशुओं का होता है। भिन्न लिंग के जुडवा शिशु को 'यमौ मिथुनौ' कहा गया है। मृत्यु के देवता है। पिता सूर्य तथा माता सरण्यू थी। प्रथम मर्त्य प्राणी यम है। यमी यम की जुडवा बहन है।

उनकी दो सन्ताने थीं। सरण्यू उनकी कन्या थी। त्रिशिरा पुत्र थे। सरण्यू युवती हुई। त्वष्टा ने कन्या के लिए वर खोजना आरम्भ किया। पिता की चिन्ता सुपात्र अन्वेषण निमित्त सावन की बेल की तरह बढती गयी। विश्व पर्यनत ढूढा। उन्हें विवस्वत जैसा उपयुक्त वर दूसरा दिखाई नहीं दिया।

त्वष्टा ने विवस्वत के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। विवस्वत स्वय आदित्य हैं। सूर्य हैं। वह रात–दिन प्रकट करते हैं। प्रकाश पुंज उनसे प्रकट होता है। विवस्वत तथा सरण्यू में अलौकिक प्रेम था। सुखमय समय बीतता गया। दाम्पत्य जीवन आदर्श था। विवस्वत को सरण्यू के गर्भ से दो जुडवां सन्तानों ने जन्म ग्रहण किया। उनका नाम यम और यमी था। यम ने अपनी बहन से पूर्व पृथ्वी का स्पर्श किया था। अतएव यमज होने पर भी ज्येष्ठ यम हुए। विश्व की वे प्रथम सन्तान थे। परलोक पहुँचने पर यम वहॉ के राजा हुए। वैवस्वत यम मृतकों को शरण देते हैं। पितृ लोक के पालक हैं।

तीन लोकों मे यम त्रितीय अर्थात सर्वश्रेष्ठ यम–लोक तथा सवितृ शेष दो लोकों के स्वामी हैं। यम अपने लोक मे वीणा की संगीत स्वर लहरियों से घिरे रहते हैं। उन्हें वीणा वादन प्रिय है। यम को घृत प्रिय है। अतएव उन्हे घृत अर्पण किया जाता हे। यम ने मृत्यु को अगीकार किया था। स्वतः अपने शरीर का त्याग किया था। यम का प्रशस्त पथ मृत्यु है। यम के दूत उलूक तथा कपोत पक्षी हैं।

दिवंगत होने पर परलोक में मृत व्यक्ति का आगमन होता है। वहॉ वह यम तथा वरूण का दर्शन करता है। यम के अश्वों के स्वर्ण नेत्र और लौह खुर हैं। वह पितरों के आवास का प्रबन्ध करते हैं। उन्हें विश्राम देते हैं। और उनकी बहन यमी जलीय दिवांगना है।

सरण्यू को सूर्य का प्रखर तेल उत्तरोत्तर असह्य होने लगा। सूर्य का वेग सहन करने मे वह असमर्थ होने लगी। भगवान भुवन भास्कर विवस्वत एक दिन अनुपस्थित थे। उनकी अनुपस्थिति का सरण्यू ने लाभ उठाया।

सरण्यू नें अपनें सदृश एक रूपवती छाया स्त्री की सृष्टि विवस्वत के परोक्ष में की । उसे आदेश दिया दिया। सूर्य के साथ पत्नीवत् तथा उसकी सन्तानो के साथ मतृवत् व्यवहार करे।

प्रतिमा सरण्यू की छाया मात्र थी। उसमें सरण्यू के रूप, रंग, आकार, वाणी आदि सब कुछ समावेश था। उस छाया नारी को देखकर सन्देह नही हो सकता था, वह मूल सरण्यू नही है। सरण्यू ने उसे सवर्णा किंवा स्थानापन्न स्त्री बनाया।

सरण्यू की बाते सूर्य को मालूम नहीं हुई। उसकी सन्तानों को भी पता नहीं चला। अनन्तर सरण्यू ने अश्वी का रूप धारण किया। वह भूमण्डल में विचरण करने लगी।

सूर्य ने छाया को सरण्यू समझा। किंचित मात्र सन्देह नहीं हुआ। सरण्यू उनका परित्याग कर चली गई है।

सूर्य ने छाया के साथ अनभिज्ञतावश, पत्नीवत व्यवहार किया। सूर्य को छाया से मनु पुत्र हुए। उनकी संज्ञा वैवस्वत मनु नाम से हुई। वही मानवों के आदि पुरूष हैं। अतएव मनुष्यों को विवस्वान आदित्य की सन्तान कहा जाने लगा।

मनु ने अग्नि प्रज्वलित की। सप्त होताओं के साथ देवताओं के हवन योग्य सामग्री एकत्रित की। मानव का कल्याण, उपकार आदि हेतु मनु ने विहित यज्ञ की सरल परम्परा स्थापित की। यज्ञ–प्रथा का आरम्भ मनु नें किया था। यदि यम अमर हैं, परलोकवासी हैं, तो उनके विमातृ भ्राता मनु मरणधर्मा प्राणी है। मरणधर्मियों के

राजा हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले प्रथम राजा मनु हैं। मनु जगत के प्रथम राजर्षि हैं।

"यम!" पिता विवस्वत ने यम से सस्नेह पूछा "तुम उदास क्यो रहते हो?" यम पिता के चरण की तरफ देखने लगे। विवस्वत ने पुन पूछा, " तुम्हारी माता के प्रेम मे कुछ अन्तर आ गया है क्या?" यम की ऑखे भर आईं। पिता ने पुत्र के हृदय का भाव समझा।

उन्होने पूछा "माता के व्यवहार मे अन्तर आ गया है यम?"

"पिताजी! माता का प्रेम मनु पर अधिक है।" पिता गम्भीर हो गये। यम चुपचाप उद्यान मे चला गया।

विवस्वत अपनी पत्नी की दिनचर्या पर सतर्क दृष्टि रखने लगे। उसके व्यवहार का अध्ययन आरम्भ किया। उन्हें प्रतिभासित होने लगा। वह पूर्व की सरण्यू नही रह गयी थी। उसके विचारों मे, उसके व्यवहारों में अन्तर आ गया है। यम ने यमी के प्रति उस छाया सरण्यू में वह वात्सल्य नहीं था, जो मनु के साथ प्रकट करती थी।

एक दिन छाया सरण्यू यम तथा यमी पर अकारण रूष्ट हो रही थी। मनु के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार देखकर विवस्वत से नही रहा गया। उन्होने पूछा· सरण्यू! तुम अनायास यम और यमी पर रूष्ट क्यो हो रही हो? तुमहारा व्यवहार विमाता सदृश्य लगता हैं"

" क्या तीनों तेरी सन्तान नहीं हैं?"

छाया सरण्यू नीरव थी।

"स्त्री!" विवस्वत छाया के अत्यन्त समीप पहुँचकर तीक्ष्ण स्वर में बोले· उत्तर क्यो नही देती?"

छाया के प्रति प्रत्युत्तर का साहस नही रह गया था।

"सुनती हो! मै कुछ प्रश्न पूछ रहा हूँ?" छाया का शरीर कटि प्रदेश पर झुक गया। "तुम! सरण्यू!"

छाया रो उठी। " बोलो! आवेश में विवस्वत ने उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा, "तुम कौन हो? तुम सरण्यू नही हो सकती!"

छाया रोने लगी। मनु रोने लगा। यम और यमी पिता से लिपट गये। उनके कोधित मुख की ओर भय विहवल दृष्टि से देखने लगे। विवस्वत ने छाया का हाथ छोड दिया। हाथ भूमि पर गिर पडा। वह दोनो हाथों से मुख छिपा कर रोने लगी।

छाया ने भय से विवस्वत का पद पकड लिया। उसका कपोल अश्रुधारा से तरल हो गया था। भूमि पर पडे हाथ से उसने मुख छिपा लिया। उसके इस दयनीय रूप को विवस्वत ने देखा। उनको दया आई उन्होनें मन्द स्वर में पूछा· "निर्भय होकर बोलो सरण्यू कहॉ है ? तुम कौन हो ?"

छाया भूमि की ओर देखती अपने अंचल से ऑसू पोंछती बोली:

" मैं उनकी छाया हूँ।"

"और वह?"

"आपकी अनुपस्थिति में वह मुझे यहॉ छोड़कर चली गईं।"

मनु मॉ के गले से लिपट गया। पिता को कोधित रूप देखकर घबरागया था।

"अश्विनी बन कर मृत्युलोक में हैं।"

"ओह ! और यह मनु!"

विवस्वत की छाया पर से दृष्टि हटी। अपने अविज्ञान के फल मनु की ओर देखने लगे।

अकस्मात उसे एक अश्वी विचरण करती दिखाई दी। अश्वी ने सलक्षण अश्व देखा। एक–दूसरे को दोनो ने पहचान लिया। दो बिछुडे मिले। पति–पत्नी मिले। पत्नी ने पति से मैथुन की आकांक्षा की। काम वेग उत्पन्न हुआ। विवस्वत ने सरण्यू अश्वी पर सवेग आरोहण किया। अश्व का शुक्र उद्दीपन के कारण स्खलित होकर भूमि पर गिर गया। सन्तानेच्छु अश्वी ने उस तेज को सूघा। उसके सूघते ही, उसकी नासिका से स्वर्ण–काति–पुज, मधु–वर्ण, दो दिव्य पुरूषों ने जन्म ग्रहण किया। उनकी सज्ञा नासत्य और दस्र हो गयी। उन्हे देखते ही अश्व विवस्वत ने प्रसन्न होकर कहाः

"प्रिये!" पुत्रो की ओर वात्सल्य भाव से देखते हुए विवस्वत ने कहा, "देवताओ के चिकित्सक होगे। ये आदि वैद्य हैं।"

सरण्यू प्रेमपूर्वक अश्विनीकुमारों को अंक में लेने लगी। विवस्वत ने सरण्यू का पत्नी भाव से देखते हुए स्नेह से कहा· " सरण्यू तुमने प्रथम मृत्यु प्राप्त प्राणी यम को जन्म दिया। तत्पश्चात मृत्यु और व्याधियो से रक्षा करने वाले प्रथम वैद्यों को जन्म दिया है। तुम दोनो की जननी हुई।'.'

"और मेरी छाया!" सरण्यू मुस्कराई।

" उसने मरणधर्मा मनु को जन्म दिया।"

" चलो लोक परलोक दोनों अपने हैं।"

अश्व विवस्वत्, अश्वी सरण्यू और अश्वनीकुमार सब प्रसन्न हो गये।

नोट– विवस्वत द्वारा यम–यमी की तथा अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति सरण्यू के गर्भ से हुई थी। सरण्यू की छाया से मन अर्थात मानव के आदि पुरूष हुए थे। मनु से मरणशील प्राणी हुए। सरण्यू से देवता यम तथा अश्विनीकुमार हुए। सूर्य ही मर्त्यों और अमर्त्यो दोनों के पिता हैं। सरण्यू तथा उसकी छाया उनकी माता है। इस प्रथा द्वारा देव तथा मनुष्यों के एक ही स्रोत को स्वीकार करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य देवता की छाया है। सूर्य ने यदि सरण्यू से यम को उत्पन्न किया तो उसी से ही यम द्वारा आक्रान्त प्राणियों की रक्षा करने वाले अश्विनों को भी उत्पन्न किया। अर्थात प्राणियों का मूल स्रोत सूर्य से आरम्भ होता है।

१४.घोषा

"घोषे !" कक्षीवत ने सस्नेह कन्या को पुकारा ।

"पितः!" कुसुम सी फुदकती बालिका ऋषि की गोंद में आ गई।

बालिका उषा तुल्य सुन्दर थी। पिता की प्रतिमूर्ति थी। स्थान की शोभा थी उससे सब खेलते थे, सब स्नेह करते थे, आश्रम के पशु–पक्षी वृक्ष,जड–चेतन पुष्प सबकी प्रिय थी। खिलौना थी।

समय दौडता गया।

घोषा युवती हुई। युवती से प्रौढा हुई। प्रौढ़ा से वृद्धा हुई उसे पति नहीं मिला। उसका वरण किसी नें न करना चाहा।

कक्षीवत नें बहुत प्रयास किया। वर उसे देखने आते, किन्तु उसका शरीर विकृत था। शरीर में आकर्षण नहीं था।

कक्षीवत ने कन्या के विवाह की आशा त्याग दी। कोई त्यागी पुरुष नहीं मिला। उसकी जीवन नैया पार लगानें के लिए कोई नहीं हुआ।

एक समय आया। विवाह की आशा सर्वथा त्याग देनी पडी। कक्षीवत उदास हो गये। घोष साठ वर्ष की हो गयी। उसने अपना मन आश्रम मे लगाया। स्वाध्याय में चित्तवृत्तियों को केन्द्रस्थ किया। अग्नि–उपासना में आत्मसमर्पण कर दिया।

उसका जीवन नियमत था। आहार नियमित था। विहार नियमित था। विराम नियमित था। क्रिया–प्रतिक्रिया विहीन जीवन पत्थर तुल्य हो गया था। घोषा के लिए प्रकृति सौन्दर्य में रस नही रह गया था। हर एक दिन उसके लिए भार लेकर आता और निशा भार हल्का करउसे सुला देती।

एक दिन की बात थी। वह प्लक्ष तरू छाया में बैठी थी। शीतल मलय चचल था। आकाश गामी पक्षी गीत गाते चले जा रहे थे। पुष्पित क्यारियॉ सुरभि दान रत थीं। गाय बछडे को दूध पिला रही थी। भ्रमर, भ्रमरी के पीछे भाग रहा था। मृग अपनी हरिणी के साथ था। मृग–शावक के साथ था। अपनी छोटी गृहस्थी के साथ था। न्यग्रोध की छाया में वे साथ बैठे थें। नील गगन में पश्चिम से बरसे उज्ज्वल मेघ आते, उडते चले जाते। भूमि पर उनकी छाया पड़ती। उनके साथ भागती। घोषा की कल्पना जैसे जागी।

पिता कक्षीवत का अनायास ध्यान आया। ध्यान के साथ स्मृतियॉ हरी हुई। पूज्य पिता ने अश्विनी कुमारों की कृपा से दीर्घ आयु, शक्ति, स्वास्थ्य लाभ किया था। उन्हें यौवन, आरोग्य एवं ऐश्वर्य मला था। उन्हीं नासत्यों की कृपा से सर्वभूत विष को उन्होंने प्राप्त किया था।

साठ वर्षीया वृद्धा घोषा के श्वेत केश किंचित मरूत प्रवाह में लहराये। उसने जैसे भूले यौवन का अनुभव किया। तपस्विनी घोषा मन्त्रदृष्टा हुई। उसे सूक्तों का

दर्शन हुआ। उसने अश्विनीकुमारो का शुद्ध कण्ठ से स्तवन किया: ''अश्विनीकुमार! आपका रासभ युक्त रथ सर्वत्र गमनशील है। आपके निमित्त सुदृढ रथ का रात–दिन यजमान आहवान करते हैं। उसी रथ का स्मरण करते हैं। जिस प्रकार पिता का स्मरण कर मन प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आपके रथ का स्मरण कर हम सुखी होते हैं।''

''दस्र! अपने रथ पर आसीन कर राजा पुरूमित्र की कन्या शुन्धव को आप ले गये। विमद के साथ उसका शुभ विवाह सम्पन्न कराया। आपको गर्भिणी वध्रिमति ने आहूत किया था। उसके दुःख को कृपापूर्वक आपने सुना। उसे सुखपूर्वक वेदनारहित प्रसव कराया।''

''स्वर्वेद्य! आपने विश्पला को लोहे का पॉव लगाया। उसे गमन योग्य बनाया। रेभ को शत्रुओ ने मरणासन्न समझ कर गुफा में फेंक दिया था। उस समय आपने अग्नि–कुण्ड को शीतल कर दिया था।''

''आरोग्यवर्धन! टापने वृद्धा शयु नामक गौ को पुनः पयस्विनी बनाया। वृक मुख स्थित वार्तिका पक्षी का उद्धार किया। उसे आरोग्य प्रदान किया। अश्विनौ! टपने निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्वेत वर्ण अश्व राजा पेदु को दिया था। उस अश्व के अवलोकन मात्र से शत्रु सेना पलायन कर जाती थी।''

भृज्यु का समुद्र से आपने उद्धार किया। आपने राजा वृश, महर्षि अत्रि तथा उशना कवि की रक्षा की। दानी आपके मित्र होते हैं।

वृद्धा घोषा ने अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुए उन्हें अपने मानस मन्दिर में देखा। श्रद्धा–भक्तिपूर्वक शिरसा। उसकी शुष्क जर्जर काया से अश्विनी कुमारों के पवित्र ध्यान द्वारा उद्‌भूत प्रभा उत्पन्न होने लगी। उसकी पलकें मिल गईं।

"घोषा! अश्विनीद्वय ने स्नेहपूर्वक कहा, "तुम्हारा स्तवन मार्मिक है। हम तुमसे प्रसन्न हैं।"

"महात्मन!" घोषा ने अपने दोनों हाथों से अश्विनी कुमारों के चरण कमलों को दृढतापूर्वक पकडते हुए कहा, "पगु और पतित के आप शरण हैं। नेत्रहीन, बलहीनो, के आप चिकित्सक हैं।"

"करूणापते!" घोषा ने नत नेत्र सलज्ज निवेदन किया, "मै पति–सुख से वंचित हूँ। पति द्वारा प्राप्त होने वाले सुख से मै अनभिज्ञ हूँ।"

"तुम्हें पति प्राप्त होगा।" अश्विनी कुमारों ने प्रसन्न होकर कहा। "भगवन!" घोषा की शुष्क त्वचा में जैसे रस सचारित हो गया। सलज्ज बोली, "मै बलवान स्नेहशील पति को आपकी दया से प्राप्त करूँ, यही मेरी कामना है।"

"घोषा!" अश्विनीकुमारों ने कहा, "तुम युवती होओगी। तुम्हारी यह जरा तुम्हारे इस जीर्ण शरीर से पतझड़ के वृक्ष के पत्तों की तरह स्वतः गिर जायेगी। तुम्हे पति प्राप्त होगा। तुम सुन्दरी होओ।"

देखते–देखते वृद्धा घोषा युवती हो गई। उसके श्वेत केश काले हो गये। शरीर दोष दूर हो गया। घोषा अपना स्वरूप बदलता देखकर अश्विनीद्वय के चरणों पर गिर पड़ी।

कभी घोषा ६० वर्ष की वृद्धा थी। अब वह हो गई सर्वाङ.गसुन्दरी युवती। उसकी रूप माधुरी पर रीझ कर सुन्दर पति ने उसका वरण किया। घोषा के जीवन का बसन्त पुनः पूर्ण गरिमा में लौट आया। कालान्तर में मन्त्रद्रष्टा घोषा

पतिव्रत से वृद्धि करती गयी। उसने स्वस्थ, नीरोग शरीर से गार्हस्थ जीवन का सुखमय बनाया।*

१५.इन्द्र विकुण्ठा

प्रजापति की एक पत्नी थी। उसका नाम विकुण्ठा था। असुर कन्या थी। विवाह होने के प्श्चात् स्वाभाविक था, वह देवोपम पुत्र की कामना करती। उस असुर पत्नी ने इन्द्र तुल्य एक पुत्र की कामना की।

केवल कामना से फलवती होने वाली नहीं थी। कामनापूर्ति निमित्त उसने महान तपस्या आरम्भ की। प्रजापति तपस्या से प्रसन्न हुए। उसे निरन्तर विविध वरदान देते रहे। उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति हो गई। अन्त में उसने दैत्यों तथा दानवो के संहारार्थ, इन्द्र जैसे अतुलित बलशाली पुत्र प्राप्त करने का वर प्राप्त किया। इस पर स्वयं इन्द्र ने उसके गर्भ से जन्म लिया।

इन्द्र सुशिप्र थे। उनके केश हरे थे। उनकी दाढ़ी हरी थी। वे वेग से चलते थे। दाढी हवा में उडती थी। शरीर का रंग हरा था। स्वर्ण हस्त था। भुजा विशाल थी। फेली थी। शक्तिशाली थी। सुदृढ़ थी।

सोमपान के पश्चात उनका उदर सरोवर की तरह हो जाता था। सोमपान के पश्चात् वे दॉत पीसते थे। उनका प्रिय पोषक पेय सोम था। उसे चुराकर भी पी लेते थे। सोम उन्हें युद्ध अभियान निमित्त उत्साहित करता था। अपने जन्मदिन से ही सोमपान आरम्भ किया था। माता ने सुशिप्र को भूमि स्पर्श करते ही सोम पिलाया था। सोम के अतिरिक्त वे मधु मिश्रित दुग्धपान करते थे।

---

* <u>नोट</u>– घोषा एक युवती की वेदनामय कहानी है। इसमें युवती के मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। घोषा का वृद्धा हो जाने पर अश्विनीकुमारों के द्वारा पुन उसे सुन्दर युवती बना देने का वर्णन मिलता है। शरीर के कायाकल्प करने की कोई प्रक्रिया वैदिक काल में रही होंगी। आयुर्वेद के अनुसार कुछ लोग कायाकल्प कराते हैं, परन्तु वह फल नही प्राप्त होता, जिसका वर्णन वेद में मिलता है। इस विद्या का पता लगाना चिकित्सकों का पावन कर्तव्य माना जायगा।

इन्द्र का अस्त्र दधीचि की अस्थि द्वारा निर्मित वज्र था। उससे इन्द्र ने नव नब्बे अर्थात आठ सौ दस और सात–सात के सात दानवों का युद्ध में घोर संहार किया था।

पृथ्वी तल पर कालकेय असुर तथा पुलोम जाति इन्द्र के सम्मुख मस्तक झुकाने के लिए तैयार नहीं थी। असुरों के व्यवहार से प्राणी त्रस्त थे। इन्द्र ने उनका संहार किया। इन्द्र को दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त हुआ। वे सुखपूर्वक असुर–साम्राज्य पर शासन करने लगे।

दैत्यों के सिंहासन पर इन्द्र बैठे। वे अपनी वीरता के दर्प से फूल गये। दैत्य–साम्राज्य की आसुरी–वृत्तियॉ मुहुर्मुहुः असुरों की माया से मोहित हो गये। मूल प्रयोजन भूल गये। आसुरी माया–जाल मे फॅस गये।

देवेन्द्र ने आसुरी प्रभाव का प्रयोग आरम्भ किया। देवताओं को ताडित करने लगे। उनके अत्याचार से देवता त्रस्त हो गये। असुर संसर्ग के कारण आसुरी दोषों से पूर्णतया दूषित हो चुके थे। देवता अपनी रक्षा निमित्त व्याकुल हो गये। उपाय सोचने लगे। कुछ निरूपाय हो गये। चारो ओर भागने लगे।

"सखे! मैं अंगिरा गोत्री सप्रगु हूॅ। मैं सत्यकर्मा हूॅ। मै बुद्धियुक्त हूॅ। मन्त्रों का स्वामी हूॅ। स्तुतियों का मेरे पास आगमन होता है। देवता मुझे नमस्कार करते हैं।"

"मैं उन लोगों को, जो यज्ञ नहीं करते, पराजित करता हूॅ। मुझे जलीय, पृथ्वी तथा स्वर्गस्थ प्राणी इन्द्र कहते हैं। मैं अपने रथ में बलशाली हर्यश्वों को जोतता हूॅ। विकराल वज्र को शक्ति निमित्त ग्रहण करता हूॅ। ऋषि उशना के लिए मैने अत्क पर प्रहार किया था।

असुर इन्द्र का पूर्व असुर विरोधी, दानव विरोधी, दैत्य विरोधी रूप देखकर, भयभीत हो गये और उनकी भयग्रस्त मुद्रा मे डूबने लगा देवताओं का त्रास। *

६.सुवन्धु

इक्ष्वाकु वंशीय रथ प्रोष्ट असमाति एक राजा थे। उनके पुरोहित अत्रियों के मण्डल में द्विपदों के ऋषि थे। राजा तथा पुरोहितो मे कलह उत्पन्न हो गया। राजा ने कलह को समाप्त करना चाहा। कलह – शान्ति निर्मित पुरोहितो को दूर करना अच्छा समझा। उन्हें पौरोहित्य पद से हटा दिया।

बिना पुरोहित के धार्मिक कार्य सम्पादन कठिन था। अतएवं राजा ने किरात तथा आकुली दो असुरो को पुरोहित नियुक्त किया। असुर पुरोहित मायावी थें। राजा ने उन्हें पुरोहित कार्य के लिए वरिष्ठ समझा।

सुवन्धु गोपायन वंशीय थें। वे शष्ठ कुल के गोत्रकार थें। वे ऐक्ष्वाक असमाति के पुरोहित थें। परन्तु पौरोहित्य कार्य से राजा के हटा देने पर क्रुद्ध हो गये थें। इन्होंने राजा के विरूद्ध मंत्र–तंत्र का प्रयोग किया।

नवीन नियुक्त असुर पुरोहितों को सुवन्धु की यह बात बुरी लगी। उन्होंने निश्चय किया कि सुवन्धु का वध कर दिया जाय।

गोपायनों के विरोधी किरात तथा आकुली नवीन पुरोहित थें। उन्होने पूर्व पुरोहितों का अभिप्राय जान लिया। अपनी माया तथा योग–बल से कपोत बन गये।

सुवन्धु पर आक्रमण किया। सुवन्धु आहत हो गये। आघात हो गये। आघात दुःख को सहन नहीं कर सके। । मूच्छित होकर गिर पड़े।

---

* इस वैदिक कहानी में मित्र–धर्म का वर्णन मिलता है। साथ ही साथ एक महान व्यक्ति संगति के कारण कारण किस प्रकार पतित हो जाता है, इसका भी प्रसग आता है। मित्र अपनें पतित मित्र का उद्धार कर उसे पन: उसके स्थान पर स्थान पर पहुँचता है। यह कहानी उपदेशात्मक है।

कपोत स्वरूप उन असुर पुरोहितों ने सुवन्धु के प्राणों को नोच लिया।

सुवन्धु के कल्याण निमित्त वे तत्पर हो गये । सुवन्धु को पुनर्जीवित करने के लिये वे आसनन लगा कर बैठ हगये। गोपायनो ने जप आरम्भ किया।

"जप करने के पश्चात् गोपायनो ने सुवन्धु के मन आवर्तन निर्मित सूक्त का स्तवन किया:

"गोपायनों ने सोम की स्तुति की। "

"गोपायनो ने दोनों लोको की स्तुति की।"

"गोपायनों ने असमाति की स्तुति की।"

"राजा गोपायनों की स्तुति सुन कर उनके पास आये।"

"अत्रियो ने सुवन्धु के प्राण निर्मित अग्नि की स्तुति की। अग्नि प्रकट हुए। उनकी पूजा स्तुति करते हुए गोपायनो ने निवेदन किया·

"अग्ने ! सुवन्धु का प्राण कहॉ है?"

"सुवन्धु की आत्मा अन्तरिक्ष मे स्थित है। "अग्नि ने उत्तर दिया।

"वे कैसे हैं ? "गोपायनों ने उत्सुक्तापूर्वक पूछा।

"हितार्थी सुवन्धु रक्षित हैं। "अग्नि ने कहा।

"भगवान् ! उनका प्राण लौटा दीजिए।"

"तथास्तु"

"गोपायनों ने अग्नि को प्रणाम किया। उनकी स्तुति की। उनकी पूजा की। अग्नि ने प्रसन्न होकर कहा:।

"सुवन्धु जीवित रहेगा।" कहते हुए प्रसन्न पूर्वक स्वर्ग चले गये।

गोपायनों ने सुवन्धु के प्राण का आह्वान किया·

अग्ने ! प्राणदातास्वरूप यहाँ पर आपका आगमन हुआ है। आप पिता –माता तुल्य है। सुवन्धु! तुम्हारा शरीर यहाँ पडा है। प्रवेश करों। "

गोपायनों ने· सुवन्धु के भूमि पर गिरे शरीर को देखते हुए चेतनार्थ सूक्त गान किया."

"सुवन्धु में चेतना प्रवेश करने लगी। गोपायनो ने प्रसन्न होकर सुवन्धु के शरीर का पृथक्–पृथक् स्पर्श करते हुए ऋचा का गान किया।

"सौभाग्यशाली हाथ भेषज तुल्य है। यह स्पर्श द्वारा मंगल प्रदान करता है।"

सुवन्धु का शरीर प्राणमय होकर जीवित हो गया। गोपायन प्रसन्न हो गये। उनकी प्रसन्नता में असुर पुरोहितों ने देखा अपने पौरोहित्य का अवसान' *

१७.पुरुरवा–उर्वशी

---

* सुदूर वैदिक काल में सुर तथा असुरो में विशेष भेद नहीं था। इस गाथा से प्रकट होता है कि असुर भी पुरोहित कार्य के लिये नियुक्त किये जाते थे। असुरों का देश वर्तमान असीरिया आर्थात् सीरिया तथा उसके समीपवर्ती भूखण्ड थे। अर्यजाति सीरिया के पूर्व और उत्तर में आबाद था दोनों जातियों का मूल स्रोत एक ही था। कालान्तर में दैशिक तथा सैद्धान्तिक भेद होने के कारण वे अलग–अलग होकर दो जातियाँ बन गयी।

उनके मुख्य भेद का आधार या आत्मा विषयक ज्ञान और विश्वास असुर मानते थें कि शरीर ही आत्मा है । शरीर के अवसान के साथ आत्मा भी मर जाती है। सुर मानते थे कि शरीर और आत्मा में भेद् है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश नहीं होता । यही कारण है सीरिया तथा उसके समीपवर्ती देशों में यहूदी, ईसाई, तथा उनकी परम्परा का अनुकरण करने वाले मुसलमान आत्मा के पूनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त के विरोधी हो गये। एक नीवन परम्परा चलाई, जिसकी पूर्णतया शामी किंवा सेमिष्क सस्कृति में प्राप्त होती है।

प्रस्तुत गाथा में आत्मा के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर पुन· वह मृत शरीर में लाई जा सकती है। मृत को जीवित किया जा सकता था।

"उर्वशी की कमनीय काया से उद्भूत पद्म–किंजल्क सुरभि मे पुरुरवा की प्राण–वायु लगी मिलने। पुरुरवा किंचित बढा आगे। फिर हटा पीछे। युवती गन्ध में मादकता जगने लगी।

"पुरूरूवा हो गया प्रफुल्लित। उर्वशी के अंगराग से उठती सुरभि में भूलने लगा अपनी चेतना। काम–प्रत्यंचा की हुई ध्वनि। कुसुम–वाण आहत् पुरूरूवा के मुख पर रक्तिम प्रभा बिखर गई।

"उर्वशी के ऑखे पुरूरूवा को तोलने लगीं। पुरूरूवा ने संक्षिप्त, किन्तु स्पष्ट बलवती वाणी में कहा·

"अप्सरे ! यदि तुम्हारा अनुराग मूल्य चाहता है तो मैं दूँगा।"

"भूपते ! स्त्री के साथ उपचार की एक प्रक्रिया होती है।"

"तन्वी ! उपचार का मैं स्वागत करूँगा।" पुरुरवा ने स्थिर स्वर में कहा।

"यशस्विन् ! प्रतिज्ञा करोगें ! उर्वशी के स्वर में प्रगल्भता थी ।

"गन्धर्विणी ! मैं ऐल हूँ । मैं क्षत्रिय हूँ।" पुरुरवा ने गर्वपूर्वक कहा।

"ऐल।" उर्वशी के स्वर में व्यंग्य था– " मानव । आप का कुल, गोत्र और वंश जानती हूँ।"

पुरुरवा किंचित हुआ लज्जित ।

"नृपवर!" उर्वशी ने कहा, " यदि आप तीन संविद् में बॅंध सकें तो? "

"बोलों उर्वशी ! संविद् में बॅंधता हूँ। " पुरुरवा ने दृढ स्वर से कहा।

"पृथ्वीपते ! पहली शर्त यह है आप दिन में तीन बार से अधिक मेरा आलिंगन नहीं करेंगे।"

"आप मेरी इच्छा के विपरीत मेरे साथ शयन नहीं करेंगे।"

उर्वशी पुरुरवा की प्रतिकिया लक्ष्य करने लगी।

"यह भी स्वीकार है, जलीय देवी पुरुरवा उर्वशी के अत्यन्त समीप आ गया," और क्या तुम्हारी संविद् है?"

"आप का नग्न दर्शन होते ही मैं आप का त्याग कर दूँगी । "उर्वशी का स्वर स्पष्ट और स्थिर था।

"उर्वशी ! प्रतिदिन केवल घृत के एकाहार करने का तुम्हें आग्रह क्यों है"?

"राजन् । "उर्वशी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "घृत अग्नि है। जीवन है। अग्नि यज्ञ है। अग्नि से जगत उत्पन्न हुआ है। अग्नि में हम मिलेंगे।

अग्नि हमे देवलोक से पितृलोक में पहुँचा देता है। परलोक गमन का माध्यम है। अग्नि मृतक को उच्चतम अमरत्व पद तक पहुचॉता है। अग्नि व्योम के साथ मृतक धुलोक पहुँचाता है। अग्नि पुण्यात्माओं के लोक में हमें रख देता है।"

पुरुरवा ने अग्निदेव का मानसिक स्तवन करते हुए पूछा,"प्रिये ! तुम दो मेषों को क्यों बॉध रखती हो? पुरूरूवा ने शयन –कक्ष में दो बॅधें मेषों को देखते हुए पूछा।

"पुरुश्रेष्ठ !" उर्वशी ने कहा, "प्राण और वायु प्राणी मात्र के जीवन का अवलम्बन है। यदि एक का अभाव हो जाए"?

"प्राण और अपान वायु से शरीर चलता है। एक के वियोग पर दूसरा स्वयं साथ त्याग देता है। हम मृतक हो जाते हैं।"

"राजन्!" उर्वशी ने विवेक मुद्रा से कहा, "हमार पार्थिव –शरीर आत्मा. पर आवरण मात्र है। इस आवरण के हटते, नग्न होते ही मनुष्य बन जाता है। मृत है, मिटटी हो जाता है । आत्मा पर रहने वाले इस अवारण के कारण हम जीवित कहे जाते है।। "

"सुनो !राजन्! लज्जावरण खण्डित होने पर मनुष्य में क्या शेष रह जाएगा"?

"–और कहूँ ? केवल मैथुन–काल में मनुष्य अपने नग्न रूप में रहता है। उस का वह स्वरूप अन्य समयों में अग्राह्य है। यही पुरुषों के साथ स्त्रियों के जीवन–यापन का उपचार है।"

"मैं गन्धर्व–कुल की हूँ। मैं अन्तरिक्ष वासिनी हूँ : मैंने नारायण के उर्वा से जन्म लिया है। अतएव उर्वशी नाम धारण किया है"।

"और मैं ।"पुरुरवा बीच में ही बोल उठा।

"आप का मृत्यु–धर्म है। आप मृत्युलोक के निवासी है। आप मृत्यु हैं। पुरुरवस्। आप मेरे भौतिक रूप पर अपनी भौतिक मनोवृति के कारण आसक्त हुए हैं।"उर्वशी ने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा। "

"तुम मृत्यु–लोक में !......"

"कहती हूँ महात्मन्। "उर्वशी ने भूमि की ओर देखते हुए कहा, "आपके पवित्र गुणों पर मोहित थी। यही मेरा एकमात्र अपराध था।"

"बात कुछ ऐसी हुई, नरश्रेष्ठ ! "उर्वशी ने मन्द स्वर मे कहा, "इन्द्र सभा मे नारद आप के गुणों की प्रशसा कर रहे थे । उस प्रशस्ति वाचन से मैं आप की ओर अनायास मन ही मन आकर्षित हुई। इस आकर्षण के कारण मित्रावरुण ईर्ष्या से रुष्ट हो गये । मुझे शाप दिया।, 'देव लोक त्याग कर मृत्युलोक मे चली जाओ । अमानुषी होकर मानुष का साहचर्य प्राप्त करों

"गन्धर्वो मे चर्चा थी उर्वशी चर्चा का विषय थी–"वह मृत्युलोक चली गयी है। अपने कुल का त्याग कर दिया। मनुष्य से विवाह – सूत्र में बँध गयी है। देवसभा उसके स्वर्गीय नृत्य एवं गान से वञ्चित हो गयी है।"

"यक्षेश्वर कुबेर की सेवा से वह विरत हो गयी है। नृत्य, गान, बृन्द सगीत मे, उसका अभाव खलता है। उसके बिना गर्न्धव–लोक शून्यवत उजाड लगता है। हमे धिक्कार है। हमारे लोक की उर्वशी मृत्यु लोक में मनुष्य के साथ विहार करती है। मानव पुरुरवा का मानवेतर उर्वशी से सबन्ध है । हमारा मुख लज्जा से लोक मे नत हो गया है।"

विश्वावसु गर्न्धव ने योजना उपस्थित की "उर्वशी के शयन–गृह में सर्वदा दो मेष बँधे रहते हैं। उन्हे उठा ले आना चाहिए। राजा नग्न सोता रहेगा। उर्वशी उसे नग्न न देख ले। इस लिये वह उठेगा नहीं मेष के अभाव में उर्वशी का वहॉ निवास सम्भव नही होगा। यदि राजा उठा और उर्वशी ने उस का नग्न रूप देख लिया, तो उर्वशी स्वतः पुरुरवा का त्याग कर देगी । "

घोर रात्रि थी । अन्धकार घनीभूत था। शयन–कक्ष था। उर्वशी और पुरुरवा पर्यंक पर गाढी निद्रा मे थे । मेष पर्यंक से बँधे थे ।

विश्वावसु आदि गर्न्धवों में प्रासाद में प्रवेश किया। शयनवास में पहुँचे। दो बधे मेषों मे से एक को खोलकर वे ले चले। मेष रोने लगा उर्वशी की निद्रा खुली एक मेष लुप्त था।

"हाय! प्रतीत होता है। मैं एक अवीर के पास हूँ। एक अजन के पास हूँ। मेरे एक पुत्र का हरण हो गया । मैं क्या करूँ ?

उर्वशी का विलाप सुनकर नग्न पुरुरवा उनिद्रित हो गया। उसे प्रतिज्ञा स्मरण हो गयी उसे नग्न दर्शन के भय से वह उठा नही

विह्ल उर्वशी शयन–वास मे रूदन करने लगी। पुरुरवा को उठते न देखकर गर्न्धवगण चकित हुए। उन्होने मन्त्रणा की। द्वितीय मेष को भी लुप्त कर देना चाहिए। गन्धर्वो नें शयन–वास में चुपचाप प्रवेश किया। कोलाहल हुआ। द्वितीय मेष उठा कर वे भागे। मेष रोने लगा। भय–विह्वला उर्वशी के कण्ठ से करुण वाणी निकली, ओह ! मैं अनाथा हूँ। भर्तृहीना हूँ। कायर पुरुष के साथ हूँ । एक अबीर के पास हूँ। मेरे द्वितीय पुत्र का हरण हो गया।। मैं क्या करूँ?

"पुरुरवा उठकर बैठ गया।

"तुम्हारे पूर्वज अत्रि, सोम, बुध, परलोक में बैठे क्या सोचते होंगे ? मैं अरक्षित हूँ ! आज वे कितने लज्जित होंगे"? उर्वशी ने उपालभ करते हुए कहा। वह घोर विलाप करने लगी।

मैं आ गया ! मैं आ गया, उर्वशी !

अकस्मात् आकाश प्रखर विद्युत–प्रकाश से प्रभामय हो गया। प्रकाश शयन–ग्रह में फूट पड़ा। दिन जैसा शुभ प्रकाश था। विद्युत–ज्योति हॅसी । पुरुरवा का पूर्ण नग्न–स्वरूप उर्वशी नें देख लिया।

गन्धर्व मुसकराए। विद्युत–प्रभा लुप्त हो गई और अन्तर्ध्यान हो गई अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी। शयनवास में अन्धकार घनीभूत होने लगा। पुरुरवा के स्वर मे उत्साह था। अपनी वीरता पर गर्व करता बोला, "उर्वशी ! उर्वशी ! उर्वशी !!! मैं तुम्हारे प्रिय मेषो को लौटा लाया हूँ ।"

शयन–कक्ष मे उसकी वाणी गूँजी होने लगी। शयन–कक्ष मे उसकी वाणी गूँजी और उसका उपहास करने लगी, "उर्वशी ! तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे मेष !

' प्रतिध्वनि स्वयं अपने में लीन होने लगी। शयन कक्ष में उसकी वाणी का, उसकी प्रतिध्वनि स्वयं अपने में लीन होने लगी। शयन–कक्ष में उसकी वाणी का, उसकी प्रतिध्वनि का उत्तर दिया मेषों की वाणी ने –मे–मे–मे–मे–। और सफल हुआ गन्धर्व कुचक्र।

विरह–विदग्ध पुरुरवा विषण्ण था। शान्ति खो बैठा था। क्षुब्ध –हृदय भू–तल पर उर्वशी को खोजता श्रीहीन शुष्क हो गया था। विह्वल विरही उर्वशी के अन्वेषण मे सर्वत्र विचरण करने लगा।

विमन पुरुरवा कुरुक्षेत्र के विश्वयोजन सरोवर–तट पर प्रयाजनहीन घूम रहा था। विस्तृत सरोवर के निर्मल शान्त जलस्तर पर हंसरूपिणी अप्सराएँ विलास कर रही थी ।

हसिनियों ने अगन्तुक भग्न–हृदय पुरुरवा को तट पर खडा देखा । उनमें किंचित् कोलाहल हुआ। हट कर दूर जाने के लिए बढ़ी। एक हंसिनी दल से पीछे रह गयी। उसकी उज्ज्वल लम्बी ग्रीवा उठी। उसनें स्थिर नयनों से पुरुरवा की ओर देखा।

पुरुरवा चकित हुआ, हंसिनी को मुद्रा लक्ष्य कर। हंसिनी नें दो–तीन बार ग्रीवा उपर–नीचे की। जैसे वह पुरुरवा को नमस्कार कर रही थी ।

"निश्चय प्रकट होना चाहिए।"

हंसिनी रूप अप्सराएँ अपने पूर्व स्वकीय रूपो में प्रादुर्भूत हुई। प्रसन्न मुख पॉच सखी अप्सराएँ, पूर्व चिन्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची तथा घृताची के मध्य उर्वशी को पुरुरवा ने देखा। उन्मादी के तुल्य वह चिल्ला उठा, "उर्वशी ! उर्वशी !!उर्वशी !!! क्रूर हृदय ! ठहर ! घोर मानसी !! ठहर ।"

"यदि हम इस समय मौन रहेंगे, तो कैसे हमारा भविष्य सुखपूर्वक बीतेगा?"

"पुरुरवस् ! "उर्वशी ने कहा, "वार्तालाप से क्या लाभ ? मैं वायु के समान दुश्प्राप्य नारी हूँ।"

"मानव !"पुरुरवा उदास हो गया। उर्वशी ने कहा, आपने वह नहीं किया। जिसे करने के लिये मैंने कहा था। तुम्हारे लिए मुझे पकड रखना सम्भव नहीं है। अपने घर लौट जाओं मैं। मैं यही कहना चाहती हूँ।"

पुरुरवा कातर हो गया।

"राजन् ! नई उषा पुरानी उषा का त्याग कर देती है। उसी प्रकार मैं आपसे विलग हो गई हूँ। लौट जाइए। लौट जाइए।"

पुरुरवा का उदासीन मुख मलिन होने लगा। वह दयनीय स्वर में बोला :

"उर्वशी ! तुम्हारी चिन्ता में मैं संतप्त हो गया हूँ। शक्तिहीन हो गया हूँ। अपने तुणीर से वाण नहीं निकाल सकता। युद्ध में विजय प्राप्त कर अगणित गउओं को प्राप्त करने में असमर्थ हो गया हूँ।

"प्रिये ! मैं राज्य–कार्य से विरक्त हो गया हूँ। मेरे सैनिक उत्साह हीन और कर्त्तव्य विमुिख हो गए हैं। "पुरुरवा ने दीन स्वर में कहा।"

"सुनो मानव ! सुजूर्णि, श्रेणी, सम आदि अप्सराएँ गोष्ठ मे प्रवेश करती गउओं की तरह शब्द करती मलिन वेश मे आती थीं, किन्तु वे मेरे घर में प्रवेश नहीं कर सकती थी।

पूरुरवा को बीच मे ही रोकती उर्वशी बोली, "आपके जन्मकाल मे सभी देवागनाएँ दर्शनार्थ आई। सरिताओं ने भी प्रशसा की। देवगणों ने घोर संग्राम में शत्रुओं का नाश करने के लिए स्तुति की।"

"पुरुवः !" उर्वशी ने कहा, "आपने पृथ्वी की रक्षा के लिए पुत्र उत्पन्न किया है। आपसे सतत् कह चुकी हूँ । मैं आपके पास नहीं जाउँगी । आप प्रजापालन से व्यर्थ विमुख हो गए हैं। तथ्य हीन वार्तालाप से क्या लाभ?"

"उर्वशी !" पुरुरवा ने मार्मिक वाणी से कहा, "तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रह सकेगा ? वह मेरे पास आकर रोएगा।"

"पुरुरवः ! "उर्वशी नें कहा, "मेरा उत्तर सुनो। आपका पुत्र आपके पास आकर रोएगा नहीं। वह आँसू नहीं गिराएगा। मैं उसकी सर्वदा मंगल–कामना करती रहूँगी। पुत्र जन्म ग्रहण करेगा। मैं अवलिम्ब उसे आपके पास भेज दूँगी।"

"उर्वशी ....!"

मैं निकीर्ति की गोद में बैठ जाउँगा। मैं यहीं रह जाऊँगा । भयकर वृक् मुझे फाड खाएँ । मैं यही कहना चाहता हूँ।'

"पुरुरवे ! "उर्वशी विचलित हुई," गिरो मत। मृत्यु की कामना मत करो । आपको बृकादि न खाएँ"।

"राजन् ! "उर्वशी ने करुण स्वर से कहा, "मत मरो। क्रूर वृक् को मत खाने दो। स्त्रियाँ किसी की नहीं होतीं। उनका हृदय वृक्तुल्य होता है। स्त्रियों की मित्रता स्थायी नहीं रहती आप घर लौट जाइए।"

"राजन् ! मैं गर्भिणी हूँ। तुम्हारी सन्तान मेरे गर्भ में स्थित है। "उर्वशी के मुख पर स्त्री–जन्य लज्जा आ गई ।

"उर्वशी ! लौट चलें............।"

"नही राजन्! "उर्वशी ने किंचित् विचार करते हुए कहा, "आज से सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि को पाधारिएगा।"

पुरुरवा का मुख खिल गया।

"उस समय, आप मेरे साथ रात्रि निवास कर सकेंगे"

सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि।

"भूपते ! "उर्वशी ने प्रसन्न–वदन कहा, "प्रातःकाल गन्धर्वगण आपके पास आएँगे।"

और..... फिर...गन्धर्व और गन्धर्वी–और–मानुष और अमानुष एक।"

उर्वशी के पायल झंकृत हो उठे।

"मानुष ! तुम्हारी मानुष–जाति में ऐसा कोई पवित्र नहीं है, जो बिना अग्नि की कृपा से हम में मिल सके।"

"देवगण ! पुरुरवा ने अग्निदेव का स्मरण करते हुए स्तवन किया, "अग्नि देव हैं अग्नि पवित्र करने वाले हैं। अग्नि वैश्वानर है।

उस अग्नि का स्तवन करता हूँ। उन हुताशन की शरण जाता हूँ। उन अग्निदेव की उपासना करता हूँ।"

गन्धर्वो ने हर्षित होकर कहा, "तुम्हें अग्नि हम देगे। अग्नि से तुम पवित्र हो जाओगे। पवित्रता मानुष और अमानुष को एक करती है।"

गन्धर्व अग्नि ले आए। उन्होने वह स्थाली मे रख कर अपने मस्तको से लगाकर पुरुरवा को दी। पुरुरवा को दी। पुरुरवा ने स्थाली मस्तक से लगाते हुए पूर्ण श्रद्धा से अग्निदेव को प्रणाम किया। गन्धर्वो नें कहा, "पवित्रात्मे! स्थाली की अग्नि ग्रहण कीजिए। इस पवित्र अग्नि मे यज्ञ करने पर तुम पवित्र होकर हम मे से एक हो जाओगे।

"उर्वशी द्वारा उत्पन्न कुमार आयु तथा स्थाल्य अग्नि पुरुरवा घर लौट रहा था। पुरुरवा ने अरण्य मे प्रवेश किया। उसका मार्ग अरण्य से होकर जाता था।

वह विचार करता जाता था। वह चाहता था उर्वशी और मिली अग्नि ।

उसने स्थाल्य अरण्य में रख दी। अपने पुत्र आयु कुमार के साथ, बिना अग्नि अकेले अपने ग्राम में प्रवेश किया

अग्नि अश्वत्थ वृक्ष का रूप ग्रहण कर चुकी थी । स्थाली शमी वृक्ष हो गई थी। शमी वृक्ष के गर्भ मे अश्वत्थ– वृक्ष स्थित था।

"मैं कर्म मे विश्वास करता हूँ। गन्धर्वगण ! मुझे इस श्रुति पर श्रद्धा है कि 'कर्म से सब कुछ प्राप्त होता है'।"

"शुद्ध मूल अग्नि कैसे प्राप्त कर सकूँगा?" पुरुरवा नें जिज्ञासा की तुम ऊपर अरणि अश्वत्थ की तथा नीचे की अरणि शमी काष्ठ की तैयार करों

उनके मंथन द्वारा जो अग्निद उत्पन्न होगी, वह पूर्व स्थाली वाली वही अग्नि होगी।"

"बताता हूँ ऊपर की अरणि अश्वत्थ काष्ठ तथा नीचे की आरणि भी अश्वत्थ काष्ठ की बनाओं। उन अरणियों के मन्थन से उत्पन्न अग्नि स्थाल्य की लुप्त अग्नि होगी।"

पुरुरवा ने पूर्ण आस्था से अश्वत्थ काष्ठ की उपर तथा नीचे की अरणियॉं बनाई। उनके मन्थन से अग्निदेव आविर्भूत हुए। वह वही अग्नि थी।, जिसे गन्धर्वो ने उसे स्थाल्य में दिया। था। यह अग्नि थी, जो अरण्य में लुप्त हो गई थी।

पुरुरवा ने पवित्रतापूर्वक विधिवत यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति हुई । आकाशवाणी हुई, "पुरुरवस् ! मानुष से तुम अमानुष हुए। हम गन्धर्वो में मिल कर अब एक हो गए।"

"पुरुरवा ! तुम सूर्य हो। उर्वशी ऊषा है। तुमने अपने कर्म से कीर्ति प्राप्त की है। तुमने अपनी ज्ञान–प्रभा से भू–तल को धवलित किया है। मानव–लोक को त्याग कर तुम देवलोक के निवासी बन गये। तुम्हें धन्यवाद।"

पुरुरवा अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित हो गया। गन्धर्वों नें गर्वपूर्वक कहा, "तुम्हारे पूर्व विश्व में केवल अग्नि थी।"

पुरुरवा ने अपने मानस–मन्दिर में स्थित अग्निदेव का स्मरण कर, उन्हें नमन किया।

गन्धर्वों का प्रसन्न संगीत तुल्य स्वर गूँज उठा–

"उर्वशी, जल है आप सूर्य हैं और आप लोगों का वांछित फल –आयु है"

१८.देवापि

"देवापि !" प्रजाजनों ने उपस्थित होकर सादर निवेदन किया, "आपके पूजनीय पिता ऋषि वेण दिवंगत हो चुके हैं। राज्य सूत्र आपको सम्भालना चाहिए।"

"महात्मन् ! "प्रजा नें कहा, "स्वर्गीय ऋषि वेण आप और शंतनु दो सगे भाइयों को छोडकर दिवंगत हुए। आप ज्येष्ठ भ्राता है। धर्मतः राज्य आपका है।"

मै त्वग्दोष से दूषित हूँ।

"भद्र पुरूषो ! "देवापि ने कहा, दुस्साध्य रोग से ग्रसित हूँ। मैं कैसे राज्य कर सकता हूँ। राजा स्वस्थ इन्द्रिय, स्वस्थ स्वास्थय, स्वस्थ विचार मना तथा स्वस्थ अभिप्राय युक्त होना चाहिये। मेरे किंचित् काल को स्वास्थय चिन्ता राज्य कार्य के समय को अपहृत करेगी। मैं पूर्ण राजा नहीं हो सकूँगा। आप अपूर्ण व्यक्ति को लेकर राज्य की अपूर्णता में वृद्धि करेंगे।"

"नहीं ! देवापि !!" बृद्धों ने कहा, "अधार्मिक राज्य में कौन रहना पसन्द करेगा।? अधार्मिक परम्परा अनुकरण करने का कौन साहस करेगा।"

"महानुभावों !" देवापि ने विशाल प्रजा समूह को सम्बोधित किया। मैंने निश्चय किया है शंतनु का अभिषेक किया जाय।"

"कहिये ! आपकी सम्मति है, शंतनु का राज्याभिषेक किया जाय। मैं अपने शरीर का भार उठाने में असमर्थ हूँ। राज्य –भार कैसे उठा सकूँगा?"

लोगों के मस्तक झुक गये। मौन सम्मति सभा ने दी ।

"घोर अवर्षण ! घोर अवर्षण !।"

जनता में त्राहि–त्राहि थी।

"बारह वर्ष बीत गये। एक बूंद पानी नहीं।" लोग बोले।

"चलो राजा शंतनु के पास चले।"

"हॉ।"

प्रजा राजा शंतनु के समीप चली।

"राजन् ! अवर्षण, कब तक?"

शुंतनु लज्जित थे।

"पृथ्वीपते ! द्वादश वर्ष से पर्जन्य ने वर्षा नहीं की है।"

शंतनु की ऑखे उपर नहीं उठ सकीं।

"हॉ, उस समय से जब से आपका धर्मात्मा थें उनका राज्य आपने लिया।

मर्यादा का उल्लंघन किया गया।

शंतनु उदास होत लगे।

"धर्म का उल्लंघन किया गया है। राज्य अधर्म से लिया गया है। उस अधर्म का प्रायश्चित हम अपनी भूख से कर रहे हैं।

शंतनु को कोई उत्तर देते नहीं बना।

छोटा आश्रम वन के बीच था। देवापि एकाकी तपस्या कर रहे थे । उनकी आवश्यकताएँ स्वल्प थी। चिन्ता नहीं थीं वे धूम्रहीन अग्नि की तरह शान्त हो गये थें।

उस आश्रम में प्रवेश किया, कनिष्ठ भ्राता राजा शंतनु ने। उनके साथ राज्य की प्रजा थी। देवापि देखते ही पूछाः

"शंतनु !" देवापि की ऑखें बारह वर्ष पश्चात् कनिष्ठ भ्राता को देख कर भर आयीं। प्रजाजन ने भूमि पर मस्तक रख कर दडवत किया। देवापि को प्राणम किया। शंतनु ने ज्येष्ठ भ्राता की चरण–रज श्रद्धापूर्वक मस्तक पर लगायी।

"महात्मन् ! "प्रजा बोली, "आप अपना राज्य सम्भालिये।"

देवापि मुसकराए।

"महात्मन् ! "शंतनु ने प्रांजलिबद्ध अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा, "आप अपना राज्य लीजिए। मैं राजा रह कर क्या करूँगा, जब प्रजा का दुःख दूर करने मे असमर्थ हूँ।"

शंतनु के मन में लेश –मात्र विषाद नहीं था। उसकी वाणी में हृदय का सच्चा उद्‌गार था। वह भ्राता के चरणों पर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा।

"शतनु !" देवापि ने उसे प्रेम से उठाते हुए कहाः

"मैं राज्य योग्य नहीं हूँ। त्वग् दोष से ग्रसित हूँ। हत इन्द्रिय हूँ। मेरी शक्तियाँ क्षीण हैं।

"पुरूष श्रेष्ठ।"देवापि ने गम्भीरतापूर्वक कहा,"राजा का गुण धैर्य है। आशा सम्बल है। नैराश्य विनाश है।"

प्रजाजन देवापि की बात ध्यानपूर्वक सुनने लगे । अपनी प्रिय प्रजा के शुष्क नर–कंकालवत शरीर को देख कर देवापि ने पाद में गिरे शंतनु को उठाते हुए कहा। :

"राजन् ! मैं स्वयं वृष्टि की कामना करूँगा।" उठो।

देवापि ने शतनु को उठा कर खडा किया। प्रजा देवापि की वृष्टि–कामना

"भ्राता !" देवापि ने दृढ़ स्वर में कहा, "मैं स्वयं तुम्हारा ऋत्विक् बनूँगा।"

शंतनु चकित हुए। प्रजाजन में से कोई बोल उठा,"क्षत्री और ऋत्विक् !"

"हॉ, मैं यज्ञ करूँगा। जन–सधारण की रक्षा के लिए, वर्षा के लिए। यह घोर अवर्षण अवश्य दूर होगा।"

''हॉ, तुम्हारे कष्ट दूर करने के लिए। ''देवापि ने स्थिर स्वर में कहा।

वर्षा निमित यज्ञ आरम्भ हुआ। राजा शंतनु ने ज्येष्ठ भ्राता देवापि को अपना पुरोहित नियुक्त किया। उनसे ऋत्विज् रूप से कार्य करने के लिए प्रार्थना की।

देवापि पौरोहित्य कर्म के लिए उद्यत हो गये। उन्होंने वृष्टि करने वाले देवताओं के निर्मित स्तोत्र की रचना की ।

देवापि ने यथाविधि यज्ञ कार्य का सम्पादन किया। उन्होंने बृहस्पति निर्मित यज्ञ करते हुए स्तुति की:

बृहस्पति ने देवापि में श्रेष्ठ स्तोत्र स्वरूप दिव्यवाणी का उन्मेष कराया। देवापि ने अग्नि की स्तुति की:

इन्द्र प्रसन्न हो गये। अन्तरक्षि से वाणी सुनाई पड़ी:

''देवापि !'' इन्द्र ने कहा, ''यज्ञ में तुम आओ। देवताओं का पूजन करों। उन्हें तुम हविरन्न से तृप्त करों।''

इन्द्र ! आप मरूदगणों के साथ शुभगमन कीजिए। आपने दस्युओं पर शासन किया। आपने तीन सिर और छः नेत्रों वाले विश्वरूप देवापि नें श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा ने पवित्र यज्ञ आरम्भ किया। सम्यक् स्तुति तथा आहुतियों से देवता प्रसन्न हो गये।

थे। जनता का मेघाच्छन्न आकाश में सुख विद्युत।

वर्षा ! वर्षा !! वर्षा !!! प्रजा प्रसन्न थी। शिशु प्रसन्न कूदने लगे। माताऍ अंचल उठाकर इन्द्र की वन्दना करने लगीं। पृथ्वी की तृष्णा शान्त हुई। अन्तरिक्ष स्वरूप से पार्थिव समुद्र में वर्षा की प्रचुर जलधारा आई। देवताओं ने अन्तररिक्ष को

आच्छादित कर दिया। देवापि की प्रेरणा से वर्षा का निर्मल जल उज्ज्वल पृथ्वी पर तैरने लगा।

बारह वर्ष का अवर्षण समाप्त हो गया। भूमि एक युग के पश्चात् पुनः श्य़ान्य श्यामला हो गयी । *

१६. मुद्गलानी

कुछ घटना ऐसी घटी। भृमस्व के पुत्र मुद्गल की गायों तथा वृषभों की चोरी हो गयी। मुद्गल के पास केवल एक वृद्ध बैल शेष रह गया। पशु–धन का अपहरण थॉ। मुद्गल व्यथित हो गयें उनकी चिन्ता देखी, उनकी पत्नी ने। सुपात्र गृहिणी की तरह चिन्तित नहीं हुई। घटना का सामना करने की दृष्टि से बलवती वाणी में बोंलोः–

"चिन्ता क्यों करते हैं ?एक वृद्ध वृषभ बचा हैं। उसी से अपहर्ताओं का पीछा करेंगे।"

ब्रहावादिनी मुद्गालानी तथा इन्द्रसेना से अपूर्व चेतना उत्पन्न हो गयी थी। मुद्गल ने बूढ़ा बैल रथ में योजित किया। इन्द्रसेना उसकी सक्रिय सहायता करने लगी। कठिनाइयों की उन्हें चिन्ता नहीं थीं। मुद्गल के हाथ में आयुध रूप के एक द्रूघण था।

---

*इस कहानी में वैदिक कालीन राजनीति के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। कर्म शक्ति न होने पर राज्य का स्वत· त्याग किसी दूसरे उपयुक्त व्यक्ति के लिए क स्पर्श तथाया है। पंचतत्वों से विश्व की रचना हुई। आकाश, वायु, अग्नि,जल, तथा पृथ्वी पॉच तत्व है। इनके गुण क्रमशः स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध हैं। आकाश सब में सूक्ष्म है। तत्व क्रमश· सूक्ष्म से स्थूल होने के लिए पृथ्वी से पूर्ण स्थूलता प्राप्त करते हैं। आगे तृतीय तत्व है। उसमें रूप तीन गुण वर्तमान हैं। वैदिक आश्रम जीवन का केन्द्र बिन्दु अग्नि है। वही हवि ग्रहण करता है। उसकी गति अध्वगामी है, जबकि जल तथा पृथ्वी की गति अधोगामी है। इसलिए रूपक खीचा गया है कि अग्नि हवि को देवताओं के पास पहुँचाता है। मृत्यु के प र देने की बात इसमें कही गयी है। साथ ही साथ राज्य अधिकार त्याग देने पर यदि राज्य पर आपति आये तो सहर्ष उसके लिये तैयार हो जाने के उदात्त विचार का वर्णन किया गया है। राजा प्रजा के कष्ट का उत्तरदायी प्रजा के सम्मुख होता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। आपद काल में क्षत्रिय भी ऋत्विक बनकर यज्ञ करा सकता है, इसका स्पष्ट निर्देश इस कहानी में किया ग श्चात् वही अपने पथ से प्राणियों को ले जाता हैं।

मुद्गल ने रथ के पहियों को चारो ओर से मजबूती से बाँधा। मुद्गल की पत्नी बैल को रथ के समीप लायी।

बृषभ बूढा था। परन्तु उसकी गति कम नहीं थी। उसमें शक्ति थी अपनी सींग से से मिट्टी के ढेर को ढहाने वाला बैल उग्र रूप से चला।

इन्द्रसेना नें सारथी का स्थान ग्रहण किया। उसने बैल की रस्सी सम्हाली। उसका पति मुद्गल रथारूढ़ बृद्ध बैल योजित रथ वेग से दौडाता, तस्करों के पीछे चला।

असीम साहस का परिचय दिया इन्द्रसेना ने । असीम पौरुष का प्रदर्शन किया मुद्गल ने और अपूर्व शक्ति प्रकट की वृषभ ने। तीनों प्राणियों के विजय का संयुक्त साधन बन गया। उनका बज्र से भी समयोपयोगी एक–मात्र अस्त्र था। द्रुघण। वही उनके विजय का कारण बना।

इन्द्रसेना चतुर सारथी प्रमाणित हुई। असके अपूर्व रथ–कौशल के कारण रथ तस्करों तक संवेग पहुँच गया। तस्कर चकित हुए। साधनहीन विचित्र विरोधियों को देखकर।

और वापस आये वे अपहृत पशुधन के साथ। दस्यु पराभूत हुए। प्रसन्न हो गया पुनः गायों को लौटा देख वृद्ध वृषभ। और जगत ने देख मन्त्रद्रष्टा मुद्गल की ब्रहावादिनी स्त्री का अपूर्व वीरत्व । *

२०.सरमा और पणि

पणियों नें "बृहस्पति की गाय चुरा लीं।

"पणियों ने।"

---

* यह रोचक कहानी है। यह वैदिक कालीन सभ्यता पर प्रकश डालती है। पति के साथ पत्नी युद्ध में जाती थी स्त्रियॉं भी पुरूषों के समान युद्ध में भाग लेती थीं।

देवता स्तब्ध हो गये।

"हमारे पौरूष को धिक्कार है।"

"गाय यज्ञ की आधारभूता है। अब यज्ञ कैसे होगा?"

"—और इन्द्र! उनका शासन !! हम आरक्षित !!!"

देवता नीरव हो उठे।

"गाये हरी गयी हैं?"

"हाँ ! वज्रिन् !!"

"कुछ रहस्य मालूम हुआ ?"

"हाँ ! सहस्राक्ष"?

देवराज ! "रसा नदी के उस पार। पर्वतों की गुहा में वे बन्द हैं।

"सरमा ! "इन्द्र ने सरमा को सम्बोधित किया।

"पुरन्दर ! आज्ञा।"सरमा ने नत मस्तक प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! तू कार्यकुशल है। वाक्पटु हैं चतुर है।"

"वे क्रूर हैं। अनिष्टकर हैं। अनुपकारी हैं मृघ्रवाच् ग्राथिन् हैं। वेकनाट हैं।

"सरमा ! वे वृक हैं। कृपण हैं। गाय उनकी सम्पति है। उन्होंने गायों में घृत खोज निकाला है। देवताओं के शत्रु हैं मनुष्यों के शत्रु अन्तरिक्ष के तुगतर पटल पर दैत्यो का पाणि नामक एक वर्ग है।

"वे गुह् शक्ति मुक्त हैं। सोम, अग्नि, बृहस्पति, अंगिरस के शत्रु हैं। वे दस्यु हैं। बृहस्पति ने अंगिरागण की सहायता से गुहा में पत्थर के द्वारों द्वारा बन्द रोती हुई गौओं को मुक्त किया था। नीचे एक द्वार से तथा उपर दो द्वारों द्वारा तिमिराच्छन्न गुफाओं में छिपाकर गायें रखी गई थी बृहस्पति ने तीनों द्वारों को खोला । सर्वप्रथम गुफा में प्रकाश किया। रात्रि में चुपचाप पणियों के नगर के पृष्ठभाग को विदीर्ण कर प्रवेश किया था। समुद्र तुल्य उन गुफाओं से प्रातः कालीन समुद्र से निकलने सूर्य की तरह गौओं को निकाला था।"

वे धनी हैं। परन्तु दान नहीं देते। देवों को हवि नहीं देते । पुरोहितों को दक्षिणा नहीं देते। ऋषियो की दृष्टि में अवांछनीय तत्व हैं वे गउ चुराते हैं। जल रोकते हैं। अस्पष्ट वाणी बोलते हैं। उपासना नहीं करते। बिना कुछ लिए कुछ भी नहीं देते। अदेव पूजक हैं। हेय हैं।"

"सरमा ! तू उनकी मनोवृति को समझती है। उनके आचरण तथा व्यवहार का तुझे ज्ञात है। अंगिरस ने मुझसे कहा है। तुझे दौत्य–कार्य निमित स्मरण किया है।"

"वृद्धश्रवा !" सरमा ने विनय से कहा। "आपकी कृपा है।"

"तुझे चुना है, तुझे दूत कार्य करना होगा। "

"दिवस्पति ! यह मेरा अहोभाग्य है।" सरमा ने नत–मस्तक इन्द्र को प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! दूत कार्य कठिन होता है।"

"जानती हूँ ! मघवा !!" सरमा ने सस्मित उत्तर दिया। "दूत की वाणी शुद्ध, व्याकरण शुद्ध,स्वर मधुर होता है। विनय, शील है। अपनी बात वेग से न कहकर शब्दोच्चारण के पूर्व किंचित मुसकराकर वाक्य मुख से निकालना चाहिए किसी भी अवस्था में आवेश में न आना चाहिए। दूसरे की बातें जान लेना और अपनी बात न जनाना, किसी प्रश्न तथा विषय पर आतुरता नहीं प्रकट करना, मिताहार, दुसरो को खिलाने की अधिक तत्परता, दूसरों को अनुग्रहीत करने का प्रयास, यह कुछ दूतों के गुण कहे गये हैं। दूत अबध्य है। तुझ पर कोई पाणि हाथ नहीं उठायेगा।"

इन्द्र ने सरमा को सफलता के लिए अभय मुद्रा से आशीर्वाद दिया।

"सरमा !" पाणियों ने सरमा को चकित दृष्टि से देखते हुए कहा, "तुममने किस आकांक्षा के साथ यहां पदापर्ण किया है।"

"यह स्थान दुर्गम है। दूर है। आगन्तुक पुनः पीछे फिर कर नहीं देख सकता।"

"तुमने किस प्रकार रसा नदी को पार किया है? कितनी रात्रियो तुम्हें यहॉ आने वें व्यतीत करनी पडी ? किसकी कामना से हमारे पास आगमन हुआ हैं?"

"पणिगण !" सरमा ने मधुर स्वर मे कहा, "मैं इन्द्र की दूत रूप से विचरण कर रही हूँ। आपने गउओ को अपने यहॉ संचित कर रखा है मैं आपकी कृपा से उन्हें लेना चाहती हूँ । मार्ग मे जल के कारण मुझे भयग्रस्त होना पडा था। किन्तु यहां पहॅचुने का जल साधन बन गया। वही रक्षक था। उसने मुझे पार पहुॅचा दिया।"

"सरमा"! पणियों ने परिस्थिति की गम्भीरता समझकर प्रलोभन को साधन बनाया। "भयभीत देवताओं की प्रेरणा से यहॉ आपका अ्रगमन हुआ है। आपको हम अपनी भगिनी स्वरूप मानते हैं। आपका भाग हम आपको प्रदान करते हैं। यहॉ से लौटकर जाने से आपका क्या लाभ होगा। यही निवास करिये।"

"पणियों !"सरमा उनके प्रलोभन से अप्रभावित होती हुई बोली।" आपके भाई बहन गाथा को मैं नहीं समझ पा रही हूॅ। इन्द्र अंगिरस जानते हैं।

"पणियों ! यहॉ से बहुत दूर चले जाओ । गुफा मे बन्द गायें कष्ट पा रही हैं। वे पर्वत से निकालकर धर्म का आश्रय प्राप्त करेगी। सोम का अभिषव करने वाले पाषाण, ऋषिगण,सोम, बृहस्पति, तथा अन्यान्य विद्वान् यहॉ पर छिपी गौओं का भेद जान गये हैं।"

पणि गाय लौटाने को तैयार नहीं हुए। सरमा इन्द्र लोक लौट गयी।

"सरमा !"इन्द्र ने प्रसन्न होकर पूछा, "तुम आ गई। कुशल तो है ?"

"पुरन्दर ।" सरमा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "रसा के पास पणियों ने गायों को पर्वतीय गुफा में छिपा रखा है।"

उतम पादवती सरमा गायो के स्वर को पहचानती थीं। वह उनके समीप गई। इन्द्र ने पणियों का संहार किया, गाये मुक्त हुई पर्वत के टुटे द्वार पर इन्द्र को ले जाती सरमा ने कहा–

इन्द्र नें सरमा को अपनें वचनानुसार प्रचुर मात्रा तथा अन्न तथा धन उसे तथा उसकी संतानों को देकर सखी बनाया और पणियो को पराजित कर वृहस्पति की गायों को लौटा दिया। देवताओ की गौरव पताका पुनः फहरा उठी। यज्ञवेदी, अपहित एवं पुनः प्राप्त गायों के घृत से प्रज्जवलित हो उठी।*

---

* इस कथा में राजदूतों के गुण, कर्म तथा व्यवहार का वर्णन किया गया है। युद्ध के पूर्व शत्रु को समझाने तथा शान्ति वार्ता के लिए दूत भेजना वैदिक प्रथा मालूम होती है। इसका किसी न किसी रूप में आज भी अनुसरण किया जाता है। वैदिक काल में स्त्रियां भी दौत्य कार्य करती थीं।

तृतीय अध्याय

ब्रह्मोद्य कथाएँ

१. ब्रह्मोद्य कथायें

ब्रह्म अर्थात वैदिक कर्म, आध्यात्मिक ज्ञान अथवा यज्ञ विषयिणी कथाओ को ब्रह्मोद्य कथाएँ कहते हैं। उत्तर वैदिक काल में वैदिक दर्शन से सम्बद्ध दो धाराएं चलती प्रतीत होती हैं। । प्रथम धारा नितान्त कर्मकाण्डपरक थी जब कि द्वितीय धारा ने वेदों में दार्शनिक अर्थ ढूढने की चेष्टा की । उत्तर वैदिक काल का अन्त होते–होते द्वितीय धारा ही प्रबल हो रही थी । यज्ञ की प्रकियाये जटिल तो थीं हीं साथ ही प्रबुद्ध वर्ग की वौद्धिक उत्कंण्ठा को शान्त करने में असमर्थ भी थीं । ऐसी स्थिति में ऐसा भी एक वर्ग उठ खडा हुआ जिसने वैदिक कर्मकाण्डों से दूर अध्यात्म–चिंतन किया तथा ब्रह्म जीव और जगत के विषय में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की । यहां तक कि उन्होंनें यज्ञों को भी, अधिभूत से हटकर अध्यात्म और अधिदैवत से सम्बद्ध व्याख्या की। ब्रह्मोध कथाएँ ऐसे ही व्यक्तियों से परस्पर संवाद हैं । यद्यपि ब्राह्मण प्रधान रूप से अध्ययन और अध्यापन करने वाली जाति थी , किन्तु इस अध्यात्म –विधा के विकास मे क्षत्रियों का भी समान योग रहा । शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार की १६ कथाएँ हैं ।

२. धीर शातपर्णेय और महाशाल जाबालि–शत० ब्रा० १०/३/३/१–८

एक ही अग्नि है । वह बहुधा समिद्ध है । वह प्रकृति के अणु–अणु में प्रत्येक प्राणी में प्रज्वलित है । वह मानव शरीर में भी अनेक रूप मे समाविष्ट है । वह वाक् मे चक्षु मे श्रोत्र में, मन में शक्तिरूपेण विद्यमान है । प्राण तत्व भी उसी का रूप है । सारी इन्द्रियों का केन्द्र है । इसी में सब का लय है । इसी से सब का उद्‌भव है । इसके बिना शक्तिशालिनी इन्द्रियां भी अशक्त हैं । पुरूष–शरीर में ये शक्तियां वस्तुतः प्रकृति शक्तियों की प्रतीक हैं –धीर शातपर्णेय महाशाल जाबाल के समीप गये । महाशाल जाबालि ने धीर से पूछा– 'क्या जानते हुए तुम मेरे समीप आये हो ? 'धीर ने

उत्तर दिया–'मैं अग्नि को जानता हूँ । 'जाबाल ने पूछा किस अग्नि को जानते हो ? धीर ने कहा, ' मैं वाक्‌रूप अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– 'जो उस अग्नि को जानता है , वह क्या होता है ? 'जो उस अग्नि को जानता है वह बाग्मी होता है । वाक् उसका परित्याग नहीं करती । **जाबाल** ने पूछा, 'तुम किस अग्नि को जानते हो? धीर ने– 'मैं चक्षु रूप अग्नि को जानता हूँ' । 'जो उस अग्नि को जानता है वह चक्षुभान् होता है' । चक्षु उसका त्याग नही करता । **जाबाल**– 'तुम अग्नि को जानते हो । क्या जानते हुए तुम मेरे पास आये हो ? **धीर**– 'मै अग्नि को जानता हूँ । जाबालि– 'मनरूप अग्नि को जानता हूँ' । **जाबाल**– 'जो इस अग्नि को जानता है उसका क्या होता है ? **धीर**– 'जो इस अग्नि को जानता है वह मनस्वी होता है । मन उसका परित्याग नहीं करता है। **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो? क्या जानते हुए मेरे पास आये हो? **धीर**– मैं अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो ? **धीर**– मैं श्रोत्ररूप अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– जो इस अग्नि को जानता है वह क्या होता है ? **धीर**– जो इस अग्नि को जानता है वह श्रोत्र होता है । श्रोत्र उसका परित्याग नहीं करता है । **जाबाल**– तुम अग्नि को जानते हो, क्या जानते हुए तुम मेरे पास आये हो ? **धीर**– मैं अग्नि को जानता हूँ। **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो? **धीर**– जो यह सर्वात्मक अग्नि है, उसे जानता हूँ। ऐसा सुनने पर जाबालि आसन से ऊपर उठखडे हुए और कहा, 'वह अग्नि किस प्रकार की है, समझाओ। **धीर**– 'तुम उस अग्नि को समझो। आध्यात्मिक रूप से ही वह सर्वात्मक अग्नि है। जब मनुष्य सोता है तो वाक् चक्षु, श्रोत्र सभी प्राण में आकर एकीभूत हो जाते हैं। जब मनुष्य सोता है तो वाक् चक्षु, श्रौत्र सभी प्राण में आकर एकीभूत हो जाते हैं। जब वह जग जाता है तो प्राण से यह पुनः पृथक् हो जाते हैं। अधिदैवत अर्थ में वाणी अग्नि ह। चक्षु आदित्य है, मन चन्द्रमा है, श्रोत्र दिशायें हैं । प्रवहणशील वायु ही

प्राण है। अग्नि वायु के प्रवाहित होनें पर झुकती है। आदित्य अस्त होने पर वायु में ही प्रवेश करता है। वायु में ही दिशायें प्रतिष्ठित हैं। वायु के समीप से ही ये पुन: उत्पन्न होते हैं। इस रहस्य को समझने वाला मृत्यु के पश्चात् तो वाणी से अग्नि में, चक्षु से आदित्य में, मन से चन्द्रमा में, श्रोत्र से दिशाओं में, प्राण से वायु में प्रवेश कर जाता है। इन तत्वों मे मिलकर जिस देवता के रूप में चाहता है उसी के रूप में विचरण करता है।

२. अत्ता आयसम्बन्ध तथा पुरूष की अपरूपता: उद्दालक और वैश्वावसव्य १०/३/४/१

वैदिक साहित्य मे शरीर को अनेक रूपकों द्वारा समझाया गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा श्रीमद् भगवद्‌गीता में इसे 'क्षेत्र' कहा गया है। यजुर्वेद और कठोपनिषद् में इसे 'रथ' कहा गया है। अथर्ववेद, शरीर को 'पुर' की संज्ञा देता है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण–शरीर को देवों की संसद शाखांयन आरण्यक– वीणा तथा अथर्ववेद इसे नाव की संज्ञा से अभिहित करता है। कबीर ने शरीर को तालाब एवं चादर की संज्ञा दी है। शतपथ में इसे 'अर्कवृक्ष' कहा गया है।

श्वेतकेतु आरूणेय यजन करने वाले थे। श्वेतकेतु से उनके पिता ने पूछा, श्वेतकेतु! तुमने किन्हें ऋत्विक चुना है। श्वेतकेतु ने बताया वैश्वावसव्य ही मेरे होता हैं। अब श्वेतकेतु के पिता आरूणि उद्दालक ने वैश्वावसव्य से पूछा, हे ब्राह्मण! वैश्वावसव्य! क्या चार महान् तत्वों को जानते हो? वै०– हां जानता हूं। उ०– क्या तुम उन चार महान् तत्वों से भी और अधिक महान तत्व को जानते हो। वै० हां, मैं उन्हें भी जानता हूँ। उ०– क्या तुम चार व्रतों को जानते हो? वै०, हां, मैं जानता हूँ। उ०– क्या तुम चार व्रतों के भी व्रत को जानते हो। वै०– हां मैं उन्हें भी जानता हूं। उ०–क्या तुम चार

क्य को जानते हो। वै०— हां मैं चार क्य को जानता हूं। उ०— क्या तुम चार क्या के क्य को भी जानते हो। वै— हा मैं उन्हे भी जानता हू। उ०— क्या तुम चार अर्कों को जानते हो। वै०— हॉ मैं जानता हूं। उ०— क्या तुम चार अर्कों के भी अर्कों को जानते हो? वै०— हां, मैं उन्हें भी जानता हूं।

वैश्वावसव्य ने भी उद्दालक से प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया। अब क्या आप मुझे बतायेंगे कि क्या आप अर्क को जानते हैं? क्या आप अर्क पुष्प, अर्क कोशी, अर्कसमुद्रग, अर्कचाना, अर्कष्ठीला तथा अर्कमूल को जानते हैं?

इतने प्रश्न करके वैश्वावसव्य ने उद्यालक के प्रश्नो के उत्तर देना आरम्भ किया। अग्नि महान् है। इस महान अग्नि से भी महान् औषधियां एवं वनस्पतिय़ॉ हैं। ये अग्नि के अन्न हैं। वायु महान् है। महान् वायु से भी महान् जल है। यह वायु का अन्न है। आदित्य महान् है। महान् आदित्य से भी महान् चन्द्रमा है। यह इसका अन्न है। पुरूष महान् है। महान् पुरूष से भी महान् पशु है। ये अग्नि, आदित्य, वायु एवं पुरूष चार महान हैं। इन चारों महान् से भी महान् औषधि वनस्पति, जल, चन्द्रमा और पशु हैं। ये ही चार व्रत हैं। चार व्रतों के भी व्रत हैं। ये ही चार 'क्य' हैं। ये ही चार 'क्य' के भी 'क्य' हैं। ये ही चार अर्क हैं और ये चार अर्कों के भी अर्क हैं।

उद्यालक ने भी वैश्वासव्य के प्रश्नों का उत्तर दिया— पुरूष अर्क है। कर्ण अर्कपर्ण है। ऑखें अर्क पुष्प हैं। नासिकारन्ध्र अर्ककोशी है। ओष्ठ अर्कसमुद्ग हैं। दांत अर्कघाना हैं। जिह्वा अर्कष्ठाला है। अन्न अर्कमूल है। इस प्रकार पुरूष ही अर्करूप हैं, जो पुरूष अपने को 'अर्काग्नि हूं', इस रूप में जान जाता है, उसके अन्दर विद्या से अर्काग्नि का चयन सम्पन्न हो जाता है।

३. वाजश्रवा कुश्री और सुश्रुवा कौश्य शत०ब्रा०१०/५/५/१

बाजश्रवा कुश्री ने अग्नि का चयन किया। कौश्य सुश्रुवा ने उससे कहा– 'गौतम'। तुमने जो यह अग्नि का चयन किया है वह प्राङमुख, प्रत्यङ्मुख, अवाङमुख और उतानमुख चयन क्यो किया? जो प्राङमुख अग्नि का चयन किया है। यह तो वैसे ही है जैसे पूर्वाभिमुखासीन व्यक्ति को कोई पीछे से भोजन रखे। अग्नि तुम्हारे हविष्य को ग्रहण नहीं करेगा। यदि तुमने अग्नि का प्रत्यङमुख चयन किया तो उसकी पूंछ भी पश्चिम की ओर क्यों किया। जो यह तुमने अग्नि का अवाङ चयन किया तो यह वैसे ही है जैसे कोई अधोमुख होने वाले के पीठ परे भोजन रख दे। तुम्हारा हविष्य अग्नि नहीं ग्रहण करेगा। जो यह तुमने उत्तानमुख होकर चयन किया तो पक्षी उत्तानमुख होकर स्वर्गलोक को जाते हैं। यह उत्तानमुख होकर तुम्हारे द्वारा किया गया अग्निचयन अस्वर्ग्य है। बाजश्रवा कुश्रि ने कहा, मैने प्राङमुख प्रत्यङ्मुख, अवाङमुख तथा उत्तानमुख होकर अग्नि का चयन किया है। अतः मैने सभी दिशाओं में अग्नि चयन किया है।

४. वैश्वानर अग्नि : अरुण, सत्ययज्ञ, जावाल, बुडिल, जनशार्कराक्ष्य और अश्वपति (शत०ब्रा०१०/६/१/१)

सत्ययज्ञ, पौलुषि, महाशाल, जाबाल, बुडिल, आश्वतराश्वि इन्द्रद्युम्न और जन शार्कराक्ष्य– ये सब अरूण औपवश के पास गये। वे अरुण से वैश्वानराग्नि को जानने के लिए उनके पास बैठ गये।

उन्हें वैश्वानराग्नि को उपदेश करने में अरुण समर्थ न हो सके। अब सबों ने मिलकर सोचा कि केकय के राजा अश्वपति वैश्वानर अग्नि को जानते हैं। उनके पास चला जाय। वे सब केकय नरेश अश्वपति के पास गये। केकयनरेश ने उन सब के

स्वागत में सब को पृथक–पृथक आवास प्रदान किया। पृथक–पृथक पूजा की तथ उन्हें पृथक–पृथक सोमयाग में ऋत्विक चुनकर दक्षिणा देने के लिए कहा। वे लोग राजा को बिना अपना आशय बताये ही समित्पाणि होकर उनके पास गये और कहा, मैं तुम्हारे पास आया हूं। अश्वपति ने कहा, आप लोक ऐश्वर्य सम्पन्न वेदवेत्ता हैं, वेदवेत्ता के पुत्र हैं, भला मेरे पास क्या सीखने आये हैं। ब्राह्मणों ने कहा, भगवन्! इस समय आप ही वैश्वानर अग्नि को जानते हैं। उसे हमें बता दीजिए। अश्वपति ने कहा, हां मैं इस समय वैश्वानर अग्नि को जानता हू। समिधाओं को अग्नि पर रख दो। मेरे पास आओ।

अश्वपति ने अरूण औपवेशि से पूछा, गौतम! तुम वैश्वानर किसे समझते हो? अरूण ने कहा, मैं पृथिवी को वैश्वानर समझता हूं। अश्वपति ने कहा, ठीक है, पृथिवी प्रतिष्ठा वैश्वानर है, तुम प्रतिष्ठा वैश्वानर को जानते हो, इसी से तुम प्रजाओ और पशुओं से प्रतिष्ठित हो। जो प्रतिष्ठा वैश्वानर को जानते हैं, मृत्यु को जीत लेना है। सम्पूर्ण आयु प्राप्त करता है। यह पृथिवी रूप, प्रतिष्ठा, वैश्वानर के दोनों पाद हैं। यदि तुम यहां न आये होते तो तुम्हारे पैर चलने में असमर्थ हो जाते तुम्हें केवल वैश्वानर के पाद–भाग का ही ज्ञान रह जाता।

दूसरी बार अश्वपति ने पौलुषि सत्ययज्ञ से पूछा– 'प्राचीन योग्य! तुम किसे वैश्वानर समझते हो। सत्ययज्ञ ने कहा, 'राजन् मैं जल को वैश्वानर समझता हूं। ठीक है जल रयि वैश्वानर है। तुम रयि वैश्वानर को जानते हो, जो इस रयि वैश्वानर को जानता है वह रयिमान, पुष्टिमान् होता है। मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। जल वैश्वानर की वस्ति (मूल) है। यदि तुम यहां न आये होते तो वस्ति तुम्हें छोड़ देती और तुम्हें वैश्वानर की वस्ति मात्र का ज्ञान होता।

अश्वपति ने महाशाल जावाल से पूँछा, औपमन्यव तुम किसे वैश्वानर समझते हो। जाबाल ने कहा, राजन् मैं आकाश को वैश्वानर मानता हू। अश्वपति ने कहा, ठीक है यह आकाश 'बहुल' वैश्वानर है। तुम बहुल वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम बहुत सी प्रजाओ तथा पशुओं से युक्त हो। जो इस बहुल वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। यह बहुल आकाश वैश्वानर की आत्मा है। यदि तुम यहां न आये होते तो आत्मा तुम्हें छोड़ देती। तुम्हे वैश्वानर की आत्मा मात्र का ज्ञान रह जाता।

अश्वपति ने बुडिल आश्वातराश्वि से पूछा, तुम किसे वैश्वानर समझते हो? बुडिल ने कहा, राजा मैं वायु को वैश्वानर मानता हूँ। अश्वपति ने कहा, "ठीक है, यह पृथग्वर्त्मा वैश्वानर है तुम पृथग्वर्त्मा वैश्वानराग्नि को जानते हो, इसलिए तुम्हारे पीछे–पीछे पृथक–पृथक रथश्रेणियॉ चलती हैं। जो पृथग्वर्त्मा वैश्वानर को जानता है मृत्यु को जीत लेता है। पृथग्वर्त्मा वायु वैश्वानर का प्राणरूप है। यदि तुम यहां न आते तो प्राण तुम्हें छोड़ देता, तुम्हें केवल वैश्वानर के ही प्राण का ज्ञान रहता।

अश्वपति ने इन्द्रद्युम्न से कहा, तुम किसे वैश्वानर समझते हो। इन्द्रद्युम्न ने कहा, राजन् में आदित्य को वैश्वानर समझता हूं। अश्वपति ने कहा, ठीक है यह सुततेजा वैश्वानर है। तुम सुततेजा वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम्हारे यज्ञ–गृह में अभिषुत सोम खाया जाता रहता है– पुरोडाश खाया जाता रहता है किन्तु क्षीण नहीं होता। जो सुततेजस् वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है, भरपूर आयु जीता है, यह आदित्य वैश्वानर का नेत्र है। यदि तुम वहां न आये होते तो नेत्र तुम्हें छोड़ देता। तुम्हें वैश्वानर के नेत्रमात्र का ज्ञान रह जाता।

अब अश्वपति ने जन शार्कराक्ष्य से पूछा, सावयवस् तुम किसे वैश्वानर समझते हो? जन० ने कहा, राजन् मैं द्युलोक को वैश्वानर समझता हू। अश्वपति ने कहा, ठीक है। यह अतिष्ठा वैश्वानर है। तुम अतिष्ठा वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम अपने से समान लोगों का अतिक्रमण कर जाते हो। जो इस अतिष्ठा वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीतता है। यह द्युलोक वैश्वानर की मूर्धा है। यदि तुम यहां न आये होते तो मूर्धा तुम्हारा परित्याग कर देती। तुम्हें वैश्वानर की मूर्धा मात्र का ज्ञान रह जाता।

हे ब्राह्मणों! तुम लोग वैश्वानर के अवयव मात्र को जानते हो। इसीलिए पृथक्–पृथक् अननमक्षण किये हो। प्रदेशमात्र में स्थित वैश्वानर को जानकर देवता लोग अति सम्पन्न हो गये। जिस वैश्वानर को तुम सब ने पृथक् पृथक बताया, उसे मैं इस प्रकार बताऊंगा कि वह कैसे प्रदेश मात्र में स्थित है।

मूर्धा अतिष्ठा वैश्वानर है। नेत्र सुततेजा वैश्वानर है। नासिका रन्ध्र पृथग्वर्त्मा वैश्वानर है। आकाश बहुल वैश्वानर है। जब रत्रि वैश्वानर है। चिबुक प्रतिष्ठा वैश्वानर है। यही पुरूष ही वैश्वानर अग्नि है। जो पुरूष रूप वैश्वानर पुरूष के ऊर्ध्व–भाग में प्रतिष्ठित वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। वैश्वानर का उपदेश करने वाले को वैश्वानर हिंसित नहीं करता है।

५. अग्निहोत्र : जनक और याज्ञवल्क्य

वाणी अग्निहोत्री धेनु है। मन अग्निहोत्री धेनु का वत्स है। ये दोनों परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी भिन्न प्रतीत होते हैं। श्रद्धा आहवनीय रूप तेज है। सत्य श्रद्धा में आहुत पय है। इस प्रकार अग्निहोत्र मन के सहारे ही वाणी रूप धेनु से प्राप्त सत्यरूप

पयोद्रव्य का श्रद्धारूप आहवनीय तेज में हवन का प्रतीक है। साभी साधनों से रहित होने पर भी इस रहस्य को जानने वाले यजमान का भी अग्निहोत्र बराबर चलता रहता है। उसी प्रकार जिसका चित्त निरन्तर जागृत रहता है, जो सम्पूर्ण प्राणमान जगत में एकत्व की अनुभूति करता है, वह कहीं भी रहे उसका भी अग्निहोत्र अविच्छिन्न रहता है। वह निश्चय ही प्राणद्रव्य का प्राणरूप तेज में हवन करता है। इस प्रकार प्राण ही अग्निहोत्र है।

वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा— याज्ञवल्क्य क्या तुम अग्निहोत्र जानते हो? हां सम्राट याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। तब जनक ने प्रश्न किया— अग्निहोत्र क्या है? उत्तर मिला— अग्निहोत्र पय है। जनक ने पुन· प्रश्न किया— जब पय न मिले तो किससे हवन करोगे। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ब्रीहि और यव से। जनक ने तीसरा प्रश्न किया, जब ब्रीहि और यव भी न मिल सके तो किससे हवन करोगे। अन्य औषधियों से याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। जब अन्य औषधियां भी अप्राप्य हो तब किससे हवन करें? उत्तर मिला— अरण्य औषधियों से। और जब यह भी न मिले तो क्या करें? वनस्पतियों से ही हवन करे। याज्ञवल्क्य ने कहा। जनक ने फिर से कहा, यदि वनस्पतियॉ भी न मिल सके तो किससे हवन करें? और अन्त मे याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, राजन्! वनस्पति के भी अभाव में जल से और जल भी न मिल सकने पर अन्य प्राप्य किसी द्रव्य से हवन करें। अतएव श्रद्धा रूप तेज में पय रूपी तेज का हवन ही श्रेयस्कर है।

याज्ञवल्क्य के इस उत्तर से प्रसन्न होकर जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य। सचमुच तुम अग्निहोत्र को जानते हो। मैं तुम्हें सौ गायें दूंगा।

६. दर्शपौर्णमास : उद्दालक और स्वैदायन शौनक (११/२/७/१)

यज्ञ दो प्रकार का होता है एक याकृत यज्ञ जो प्रकृति मे निरन्तर चलता रहता है और दूसरा अनुष्ठेय, जो ब्राह्मणों द्वारा अनुष्ठीयमान है। इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। प्रथम शाश्वत सत्य है, और दूसरा प्रथम का रूपात्मक अभिनय। इन दोनों की पारस्परिक घनिष्ठता विषयक एक कथा है।

कुरूपाचाल देश से अरूण के पुत्र उद्दालक किसी यज्ञ मे भाग लेने के लिए उदीच्य देश में बुलाये गये। उद्दालक के सामने निष्क नामक सिक्का रखा गया जिसे यज्ञ भेंट किया जाता था। उदीच्य देश के ब्राह्मणों ने विचार किया। यह कुरूपाचाल देश का विद्वान स्वयं ब्रह्मा और ब्रह्मा का पुत्र है। यदि वह अपनी दक्षिणा में से आधा द्रव्य हमें न दे तो क्या हम इसे बाद के बुला सकते हैं? अन्ततः निश्चित हुआ कि स्वैदायन को बाद में पंडित बनाकर उधालक से शास्त्र चर्चा करें। स्वैदायन से उन लोगों ने प्रार्थना की और स्वैदायन ने उन्हें आश्वासन भी दिया और कहा कि पहले मैं इसकी विद्वता का पता लगा लू। इतना कहकर स्वैदायन मण्डप की ओर गये। परस्पर परिचय के अनन्तर स्वैदायन ने प्रश्न करना आरम्भ किया।

१– गौतम पुत्र! वही पुरुष यज्ञ मे ऋत्विक बनकर दूर देश में जा सकता है, जो दर्शपौर्णमास के ८ पूर्व के आज्य भाग, पांच मध्य के हविर्भाग, छः प्रजापति देवता के भाग और आठ अन्त के आज्य भाग जानता हो।

२– गौतम पुत्र! वही पुरूष यज्ञ में ऋत्विक् होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास के उस कर्म को जानता है, जिसके कारण प्रजायें दन्त–विहीन उत्पन्न होती हैं, जिसके कारण बाद में दांत निकलते हैं, जिसके कारण फिर गिर जाते हैं और जिसके कारण दूसरी बार फिर निकलते हैं। ये दांत पहले नीचे क्यों निकलते हैं, ऊपर

बाद मे क्यों निकलते हैं, क्यों नीचे के छोटे और ऊपर के बडे होते हैं, दाढे क्यों फैली हुई किन्तु जबडे समान होते हैं।

३– गौतम पुत्र! वही पुरूष यज्ञ मे ऋत्विक होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास की उस प्रक्रिया को जानता है, जिसमे सब प्रजायें लोमश होती हैं, जिससे आगे चलकर श्मश्रु भी निकलते हैं। जिस कारण से पहले शिर के केश श्वेत होते हैं और अन्त में सब बाल पक जाते हैं।

४– हे गौतम पुत्र! वही व्यक्ति यज्ञ में ऋत्विक होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास की उस क्रिया को जानता है जिसके कारण कुमार मे सैचन शक्ति नहीं होती। युवावस्था में यह वीर्य सेचन शक्ति आजाती है तथा अन्तिम अवस्था में वह फिर समाप्त हो जाती है।

५– यज्ञ में ऋत्विक् होने का अधिकारी वही हो सकता है जो यजमान को स्वर्ग तक ले जाने वाली ज्योतिष्पक्षा हरिणी गायत्री को जानता है।

उद्दालक ने प्रश्न सुनते ही अपना निष्क स्वंदायन के सामने रखते हुए कहा, स्वैदायन तुम सचमुच अनूचान हो। सुवर्ण, सुवर्ण का ज्ञान रखने वाले को ही मिलना चाहिये। इस पर स्वैदायन उद्दालक से गले मिलकर यज्ञ भूमि चले गये। ब्राह्मणों ने पूछा, स्वैदायन गौतम का पुत्र कैसा है? उसे देखा। स्वैदायन ने उत्तर दिया, जैसा ब्रह्मा का पुत्र और ब्रह्मा होना चाहिये, वैसा ही उद्दालक है। इसके सामने जो खडा होगा, उसका सिर अवश्य झुक जायेगा। ब्राह्मण लोग निराश होकर घर चले गये। थोडी देर बाद उद्दालक समित्पाणि होकर स्वैदायन के समीप पहुंचे और बोले, भगवन्! मैं आपका शिष्य बनने आया हूं। स्वैदायन ने पूछा, आप मुझसे किस विषय का अध्ययन करना

चाहते हो? उद्दालक ने कहा, जो प्रश्न आपने किये थे उन्हीं का उत्तर जानना चाहता हूं। स्वैदायन ने उत्तर देना आरम्भ किया–

१– दो आधार, पंचप्रयाज, एक आग्नेय आज्यभाग– ये दर्शपौर्णमास के आठ आज्य भाग हैं। सोमीय तथा आग्नेय आज्य भाग, पुरोडाश, रिवष्टकृत् तथा अग्नि की आहुति– ये पांच भाग मध्य के हविर्भाग हैं। प्राशित्र, इडा, आग्नीध्र,आधान, ब्रह्म भाग यजमान भाग, अन्वहार्य ये प्रजापति देवता के लिए हैं। तीन अनुयाज, चार पत्नी संयाज और समिष्टयजुः ये आठ अन्त के आज्य भाग हैं।

२– प्रयाजों मे पुरोनुवाक्या न होने से प्रजायें दॉतरहित होती हैं। हवि में पुरोनुबाक्या होने से उनके दांत निकल आते हैं। अनुयाजों में पुन· पुरोनुवाक्या न होने से उनके दांत गिर जाते हैं। पत्नी संयाज मे पुरोनुवाक्या होने से दांत फिर से उग आते हैं। अन्ततः समिष्टयजुः में पुरोनुवाक्या न होने से वृद्धावस्था में दांत गिर जाते हैं। अनुवाक्या–पाठ के पश्चात् याज्या–पाठ होता है। अतएव पहले नीचे के और बाद में ऊपर के दांत निकलते हैं। अनुवाक्या `गायत्री है याज्या त्रिष्टप। त्रिष्टुप् से गायत्री छोटी होती है, इसलिए नीचे के दांत ऊपर के दांत से छोटे होते हैं। सबसे पहले आघार किया जाता है, इससे दाढें फैली हुई होती हैं। संयाज प्रयुक्त छन्द समान होते हैं। इस कारण जबड़े समान होते हैं।

३– क्योंकि यज्ञ में कुशाओ का आस्तरण किया जाता है, इसी कारण सारी प्रजा लोमयुक्त पैदा होती है। कुशनुष्टि कापुन· आस्तरण होता है। इससे श्मश्रु निकल आती है। केवल कुशमुष्टिका आहरण किया जाता है, इस कारण शिर के बाल पहले पक जाते हैं। अन्त में सारी कुशाओं का प्रहरण किया जाता है, इसलिए बाद मे वृद्धावस्था में सारे केश श्वेत होते हैं।

४–प्रयाजों में आज्य द्रव्य होने से कुमार में वीर्य संचन शक्ति नहीं रहती। प्रधान याग मे कठोर द्रव्य पुरोडाश एव दधि होने से युवावस्था में सेंचन शक्ति का संचार होता है। अनुयाज में पुनः आज्यद्रव्य प्रयुक्त होता है अतएव वृद्धावस्था मे वह शक्ति क्षीण हो जाती है।

५– यज्ञ की वेदी ही गायत्री है। पूर्व के आठ आज्य भाग उसके दक्षिण पक्ष हैं। अन्त के आठ आज्य भाग उसके वामपक्ष हैं। यही तेजोमय पक्ष वाली गायत्री यजमान को स्वर्ग ले जाती है। यह सुनकर उधालक सन्तुष्ट हो गये।

७. अग्निहोत्र : प्राचीनयोग्य और उद्दालक

अग्निहोत्रकर्म देवताविशेष से ही सम्बद्ध न होकर अनेक देवताओं से सम्बद्ध होना चाहिये। इस याग के विविध अग और प्रत्यंग विभिन्न देवताओं के लिए सम्पन्न किये जाते हैं। इसीलिए अग्निहोत्र कर्म मे सभी देवताओं को भाग प्राप्त होता है। सभी समान रूप से तुष्ट होते हैं। प्रस्तुत आख्यायिका इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। शाचेय प्राचीन योग्य एक बार आरूणि उद्दालक के पास गये और कहा कि मैं आप से अग्निहोत्र के विषय मे ब्रह्ममोघ के लिए आया हूं, और उधालक से प्रश्न भी किया–

१– गौतम! तुम्हारी अग्निहोत्री कौन हैं? २– वत्स कौन हैं? ३– वत्स सयाजिता धेनु कौन है? ४– संयोजनदाय क्या हैं? ५–दुह्यमान क्या है? ६– दुग्ध क्या है? ७– आहुति क्या है? ८– दधिश्रित द्रव्य क्या है? ६–अनज्योत्ययान क्या है? १०– जन से प्रत्यानीत क्या है? ११– उदास्यमान क्या है? १२– उदासित क्या है? १३– उन्नीयमान क्या है? १४–उन्नीत क्या है? १५– उद्यत क्या है? १६– ह्रियमाण क्या है? १७– बिगृहीत क्या है? १८– किस समिघ को अग्नि पर रखते हो? १६– पूर्वाहुति किसके लिये है? २०– आहुति के बाद सुव्यवस्थापन किसके लिए हैं। २१–गार्हपत्येक्षण किसके

लिए है। २२– उत्तराहुति किसके लिए है? २३–उत्तराहुति के स्रुक को क्यों कंपाते हो? २४– सुडमुख लेप का परिमार्जन कर कर्च मे क्यो लगाते हो? २५– द्वितीय बार परिमार्जन कर दक्षिण ओर हाथ क्यों रखते हो? २६– प्रथम प्राशन क्यो करते हो? २७– द्वितीय बार प्राशन क्यों किया? २८–वेदि समीप जाकर क्यों पान किया? २९– स्रुक में जल लाकर उक्षण क्यों किया? ३०– द्वितीय बार इस दिशा मे ऊपर की ओर उक्षण क्यों किया? ३१– तृतीयबार इस दिशा में ऊपर की ओर उक्षण कयों किया? ३२– आह्वानीय के पीछे जल का निनयन क्यों किया ? ३३– क्या संस्थापित किया?

यदि तुम्हें इन बातों का ज्ञान है तभी तुम्हारा यजन सच्चे अर्थों में हुत है, अन्यथा यह हुत भी अहुत ही है। यह सब सुनकर उद्दालक ने प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ किया।

१– मानवी इडा मेरी अग्निहोत्री है। २– वत्स वायव्य है। ३– वायु रूपवत्स से संयुक्त द्युलोक उपस्रष्टा है। ४– विराट् छन्द संयोजन है। ५– आश्विन दुह्यमान है। ६– दुग्ध वैश्वदेव है। ७– आह्रियमाण वायव्य है। ८– अधिश्रित आग्नेय है। ९– अवज्योत्यमान ऐन्द्राग्नि है। १०– जल से प्रत्यानीत आश्विन है। ११– उदास्यमान वायव्य है। १२– उद्वासित द्यावापृथवी है। १३– उन्नीयमान आश्विन है। १४– उन्नीत वैश्वदेव है। १५–उद्यत महादेव के लिये हैं। १६– ह्रियमाण वायव्य है। १७– बिगृहीत वैष्णव है। १८– जो समिध रखता हूं वह आहुतियों की प्रतिष्ठा है। १९– पूर्वाहुति से मैंने देवों को तृप्त किया। २०– स्रुक स्थापनबहिस्पत्य है। २१– जो ऊपर देखा, उससे पृथ्वीलोक को द्युलोक से सम्बद्ध कर दिया। २२– उत्तराहुति से अपने को स्वर्ग में प्रतिष्ठित कर लिया। २३– हवन करते समय स्रुक प्रकम्पन वायव्य है। २४– स्रुक परिमार्जन कर जो कूर्च में पोंछा, उससे औषधियों व वनस्पतियों को तृप्त कर दिया। २५– द्वितीय बार परिमार्जन करके जो दाहिनी ओर हाथ रखा उसने पितरों को तृप्त

किया। २६– पूर्वप्राशन से अपने को तृप्त किया। २७– द्वितीय प्राशन से प्रजाओ को तृप्त किया। २८– जो वेदि समीप जाकर दान किया उससे पशुओ को तृप्त किया। २६– जो स्रुक मे जाकर जल लाया और उक्षण किया उसने सर्पदेव जनों को तृप्त कर दिया। ३० द्वितीय बार उक्षण से गन्धर्वों और अप्सराओं को तृप्त कर दिया। ३१– आह्वानीय के पीछे जल लाकर पृथिवी लोक को वृष्टि प्रदान की। ३२– सस्थापन करके जो कुछ पृथिवी में कमी थी, उस कमी को समाप्त कर दिया। ३३– शौचेय ने पुनः निवेदन किया, भगवन् मैं आपसे पुनः प्रश्न करना चाहता हूं। उद्दालक ने कहा, जो कुछ भी चाहो, पूंछ लो प्राचीन योग्य। प्राचीन योग्य ने पूंछा, गार्हपत्य से आह्वानीय आदि अग्नियों का उद्धरण हुआ हो, पात्र निश्चित स्थान पर रख दिये गये हों तुम हवन कर रहे हो, ऐसे समय जब आह्वानीयाग्नि बुझ जाये तो क्या तुम जानते हो इसमें कौन सा भय है? उद्दालक ने बताया, इससे ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु हो जाती है। इससे बचने के लिए 'प्राणउदानमप्यगात्' इत्यादि मंत्र से हवन करेंगे। यह हवन गार्हपत्यागिन में करना चाहिए।

३४– शौचेय ने पुनः प्रश्न किया, भगवन् मैं आपसे पुनः पूछना चाहता हूं। उद्दालक ने कहा, जो भी चाहो पूँछ लो, प्राचीन योग्य। शौचेय नें कहा, यदि इसी समय गार्हपत्याग्नि भी बुझ जाय तो हवन करने वाले के पास बचने का क्या उपाय है? उद्दालक ने बताया किया हवनकर्त्ता का यजमान ऐसी दशा में तुरन्त मर जाता है। यदि इस अनिष्ट से बचना हो तो उदानःप्राणपम्यगात् मंत्र से हवन करना चाहिए। यह हवन आहवनीय में करना चाहिए। यह हवन आह्वानीय में करना चाहिए।

३५– प्राचीन योग्य ने पुनः निवेदन किया, यदि इसी समय अन्वादार्य–अन्वाहार्यपचनाग्नि भी बुझ जाय तो इससे हवन करने वाले को कौन सा भय होता है। उसका प्रायाश्चित क्या है? उद्दालक– ऐसा होने से हवनकर्त्ता के सभी पशु

मर जाते हैं। नैनं` इस भय को विधाओ के द्वारा पार कर लिया है। व्यान उदानमप्यगात् से मैं गार्हपत्य में हवन करुगा।

३६– प्राचीन योग्य– यदि इसी समय अग्नियां बुझ जायं तो कौन साभय उत्पन्न होगा? उसकी प्रायश्चित क्या है? उधालक, होता का कुल अदायाद ही जायेगा। इस भय से बचने के लिए तुरन्त ही अग्निमन्थन करके, जिस दिशा में वायु बहे उसी ओर वाहवनीय ले जाकर वायव्य आहुति करे, क्योंकि मरने पर प्राणी वायु में ही मिलते हैं, वहीं से उत्पन्न भी होते हैं।

३७– प्राचीन योग्य– सभी अग्नियों के बुझ जाने पर हवन करने वाले को कौन सा भय ग्रसित करता है? इस भय से बचने का उपाय क्या है?

उद्दालक– दोनों लोकों में उसे अप्रिय ही प्राप्त होगा। प्रायश्चित के लिए शीघ्र ही अग्नि मथकर पूर्व की ओर आहवनीय का उद्धरण कर आहवनीय के पीछे बैठकर मैं इसे पीऊं। मेरा अग्निहोत्र सभी देवताओं को तृप्त करें ऐसा कहूंगा।

यह उत्तर सुनकर प्राचीनयोग्य हाथ में समित् लेकर उद्दालक से कहा, भगवन् मैं आपका शिष्य बनने आया हूँ। उद्दालक नें उत्तर दिया, अच्छा हुआ जो तुमने इस प्रकार विनय प्रदर्शित कर दिया नहीं तो मूर्द्धा गिर पडती। ऐसा कहकर उद्दालक ने प्राची योग्य को दीक्षित कर लिया।

८. नरलोक और कर्म सिद्धान्त : वरुण और भृगु

वैदिक साहित्य में नरकलोक सम्बन्धी कल्पना के दर्शन सर्व प्रथम अथर्ववेद में मिलते हैं, जहां इसे अन्धतमस् लोक के रूप में चित्रित किया गया है। अथर्ववेद (५–१६) में नरकलोक की विभीषिका का भी चित्रण है। शतपथ ब्राह्मण ६/२/२/२७

के अनुसार समस्त प्राणी दूसरे लोको मे जन्म ग्रहण करते हैं एवं अच्छे बुरे कर्मों का फल पाते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक ६/५/१६ के अनुसार कर्मानुकूल प्रत्येक प्राणी मरने के पश्चात यम के सम्मुख उपस्थित हो बुरे और भले के निर्धारण का उल्लेख करता है। इसी प्रकार की एक कथा शतपथ में भी आई है—

भृगु अपने पिता को पिता वरुण की अपेक्षा अधिक विद्या सम्पन्न समझने लगा। वरुण नें इस बात को समझ लिया कि मेरा पुत्र अपने को मेरी अपेक्षा अधिक विद्वान समझने लगा है। वरुण नें कहा, पुत्र! पूर्व की ओर जाओ। वहा जो कुछ भी हो देखकर पश्चिम की ओर जाना। वहां जो कुछ भी दिखायी दे, उसे आकर मुझे बताना।

भृगु पूर्व की ओर गया। वहां उसने मनुष्य शरीर को पर्व पर्व पर काटकर कुछ मनुष्यों द्वारा परस्पर बांटते हुए देखा। देखते ही बोल पडा, अरे इतनी कठोरता, मनुष्य, मनुष्य के ही अंगों को काट कर बांट रहे हैं। उन मनुष्यों ने कहा, जिन्हे हम काट रहे हैं, उन्होने पहले हमारे साथ पूर्वलोक में यही व्यवहार किया था। अब हम लोग भी उसी प्रकार प्रतिकार कर रहे हैं। भृगु नें कहा, क्या उसका कोई प्रायश्चित है? मनुष्यों नें बताया कि प्रायश्चित अवश्य है जिसे तुम्हारे पिता जानते हैं। भृगु दक्षिण दिशा मे गया और पुरुषों के द्वारा पुरुषों के अंग–अंग को काट–काट कर परस्पर बांटते हुए देखा।

भृगु ने दुःख के साथ कहा, कष्ट है, ये मनुष्य–मनुष्य के ही अंगो को काटकर बांट रहे हैं। मनुष्यों नें बताया कि जिस प्रकार इन्होंने पूर्व लोक में हम लोगों के साथ व्यवहार किया था, वैसा ही व्यवहार हम लोग इनके साथ कर रहे हैं। भृगू के द्वारा प्रायश्चित पूछने पर उन लोगों ने बताया कि इसे तुम्हारे पिता जानते हैं।

भृगु पश्चिम की ओर गया जहां उसने कुछ चुपचाप बैठे हुए लोगों को देखा। कुछ लोग बैठे हुए लोगों का मांस खा रहे थे। उसने यह भयानक दृश्य देख कर कहा,

कष्ट है ये मनुष्य चुपचाप बैठे हुए लोगों का मांस खा रहे हैं। उन खाने वालों ने कहा, जैसे इन सब ने पूर्वलोक में हम लोगों के साथ व्यवहार किया। उसी का प्रतीकार हम लोग भी कर रहे हैं। भृगु ने पूँछा, क्या इसकी कोई प्रायश्चित है? लोगो ने बताया, इसका प्रायश्चित तुम्हारे पिता जानते हैं।

भृगु अब उत्तर की ओर गया जहां रोते चिल्लाते हुए पुरूषों की शोर मचाते हुए पुरुषों द्वारा खाते हुए देखा। भृगू ने कहा, कष्ट है ये शोर मचाते हुए पुरुष रोते हुए पुरुषों को खा रहे हैं। पुरुषों ने बताया कि जो इन्होंने पूर्वलोक में हम लोगों के साथ व्यवहार किया। उसी का प्रतिकार हम लोग भी कर रहे हैं। भृगु ने पूछा, क्या इसकी कोई प्रायश्चित है? लोगों ने बताया, इसकी प्रायश्चित तुम्हारे पिता जी जानते हैं।

अब भृगु पश्चिमोत्तर कोंण में गया जहां दो स्त्रियॉं कल्याणी और अतिकल्याणी के मध्य दण्डपाणि पुरुष को देखा। उन्हें देखकर भृगु डर गया और घर आकर बिस्तर पर पड गया।

पिता वरूण ने भृगु को निर्देश दिया कि उठो स्वाध्याय करो। वेदों का स्वाध्याय क्यों नहीं कर रहे हो? भृगु बोला, स्वाध्याय क्या करूं अब उसके लिए कुछ शेष नहीं। वरुण को मालूम हो गया कि इसे कुछ नही मालूम है। उन्होने उसे बताया कि जो तुमने प्राची दिशा में लोगों को पर्वशः मानव शरीर का विभाजन करते हुए देखा, वे वनस्पतियां थीं। वनस्पतियों की समिधा बनाकर उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं। दक्षिण दिशा में जिन्हें तुमने देखा वे पशु हैं। पय से हवन कर उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं। पश्चिम में दिखाई पड़ने वाली औषधियाँ थीं। तृण के द्वारा अवज्योतन करके औषधियों को अपने अधीन कर लेते हैं। उत्तर की ओर दिखाई पड़ने वाली आयुः थी। वे बलपूर्वक लाकर उन्हें अपने उसर और दिखाई। अधीन कर लेते है। दिगन्तराल में कल्याणी त्रद्धा

को रमाधीन कर लेता है।

६. अग्नि होत्र : जनक श्वेतकेतु सोमशुष्य तथा याज्ञवल्क्य ११

अग्निहोत्र याग के विषय में विभिन्न धारणायें थीं, कोई इसे सूर्या और अग्नि के परस्पर हवन का प्रतीक मानता तो कोई शारीरिक भोजनादि क्रियाओं का प्रतीक और कोई उसे प्रजनन क्रिया का प्रतीक मानता था। प्रस्तुत प्रतीक द्वारा इन सभी परस्पर विरोधी धारणाओं मे निहित– एक बार जनक देशान्तर से आते हुए श्वेतकेतु सोमशुष्म एवं याज्ञवल्क्य से मिले। जनक ने इन ब्राह्मणों से पूछा– तुम सब अग्निहोत्र कैसे हवन करते हो।

आरुणेय श्वेतकेतु ने कहा, हे सम्राट! सतत दीप्यमान प्रकाश से युक्त– अग्नि एवं आदित्य– इन दोनो में क्रमशः एक दूसरे का हवन करता हू। आदित्य धर्म है। सांयकाल उसे अग्नि में हवन करता हू। अग्नि भी धर्म है। प्रात: आदित्य में उसका हवन करता हूं। ऐसा करने से हवन कर्त्ता श्री और यश से सयुक्त होकर दोनों देवो के सायुज्य और सालोक्य प्राप्त कर लेता है।

सात्ययज्ञि सोमशुष्म ने कहा, सम्राट मैं तेज का तेज मे हवन करता हूं। आदित्य तेज है। सांयकाल उसका अग्नि में हवन करता हू। इस प्रकार हवन करने वाला तेजस्वी, यशस्वी एवं अन्नाद हो जाता हैं वह दोनों देवों के सायुज्य एवं सालोक्य को प्राप्त कर लेता है।

याज्ञवल्क्य ने कहा, जब मैं गार्हपत्य से आहवनीयाग्नि का उद्धरण करता हूं तो सम्पूर्ण अग्निहोत्र को ऊपर ले लेता हूं। जाते हुए आदित्य का सभी देव अनुसरण करते

हैं। वे मेरे द्वारा उद्धृत व अग्नि कोदेखकर लौट आते हैं। बाद में मैं पात्रों को शुद्धक उन्हें रखकर अग्निहोत्री गाय को दुहकर देखते ही देखते प्रतीक्षा में स्थित देवो को तृप कर देता हूं।

जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य! तुम सत्य के अधिक समीप हो। तुमने अग्निहोत्र वं स्वरूप पर विचार किया है। तुम्हें सौ गायें दूंगा। किन्तु अग्निहोत्र की उत्क्रान्ति, गति प्रतिष्ठा, तृप्ति, पुनरावृत्ति, प्रत्युत्यायी लोक आदि के विषय में तुम भी नहीं जानते हो इतना कहकर वे रथ पर बैठकर चले गये।

इन तीनों ने कहा, इस क्षत्रिय ने हम सबसे बढ़कर बात की है। अच्छा हो, यदि इसे ब्रह्ममोघ के लिए बुलायें। तब याज्ञवल्क्य ने कहा, हम ब्राह्मण हैं, यह क्षत्रिय है। इसे यदि जीत भी लेते हैं तो सच सच हम जीते माने जायेगे। जीतना और न जीतना बराबर ही है किन्तु यदि यह हमें जीत लेगा तो सभी लोग हम लोगों की निन्दा करेंगे कि क्षत्रिय ने ब्राह्मणों को ब्रह्मोद्य में हरा दिया। अतएव ऐसा करना ठीक नहीं है। सभी ब्राह्मणों ने याज्ञवल्क्य की बात को समझ लिया। याज्ञवल्क्य रथ पर चाढ़कर जनक के घर पर पहुँचे याज्ञवल्क्य! क्या तुम अग्निहोत्र जानने आये हो। याज्ञवल्क्य ने कहा, हा सम्राट ऐसा ही है। अन्त में जनक ने बताया।

प्रातः सांयकालीन आहुतिया हवन करने पर ऊपर की ओरजाती हैं। अन्तरिक्ष मे प्रवेश कर जाती हैं। वे अन्तरिक्ष को ही आहवनीय कर देती हैं। वायु की समिधा सूर्य रश्मियों को निर्मल आहुति बना देती है। अन्तरिक्ष को तृप्त कर देती है। वे वहा से ऊपर उठती हैं। द्युलोक में प्रविष्ट होती हैं। द्युलोक को आहवनीय कर देती है। आदित्य को समिघ और चन्द्रमा को निर्मल आहुति बनाती हैं। वे द्युलोक को तृप्त करती हैं। वहां से पुनः लौटती हैं। पृथिवी में प्रवेश करती हैं।

इस खर् को आहवनीय, अग्नि को समिध और औषधियों को निर्मल आहुति बना ली है। इस पृथिवी को तृप्त करती है। वे वहां से भी उठकर पुरुष में प्रवेश करती है। मुख को आहवनीय जिह्वा को समिधा और अन्न को निर्मल आहुति बनाती है। जो इस रहस्य को जानता हुआ भोजन करने वाला है, उसका अग्निहोत्र सम्यक् रूप से हुत है। वे आहुतियां वहां से भी उठकर स्त्री में प्रविष्ट होती हैं। उसकी गोद की आहवनीय श्रोणि को समाधि और रेतस् को निर्मल आहुति बनाती है, स्त्री को तृप्त करती है जो इस रहस्य को जानता हुआ मिथुन क्रिया सम्पन्न करता है, उसका पुत्र लोकातिशायी होता है।

हे याज्ञवल्क्य! यही अग्निहोत्र है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई बात बताने को शेष नहीं रही। इस पर प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्य ने जनक को वर दिया। जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य तुम्हारे प्रति मेरा प्रश्न स्वेच्छापूर्ण हो। तब से जनक ब्रह्मिष्ठ हो गये।

१०. संवत्सर–मीमांसाः प्रीति और उद्दालक शतपथ (१२/२/२/१४)

यज्ञ की दृष्टि से संवत्सर में १० दिन अधिक महत्त्व के थे। प्रायणीय, उदयनीय, चतुर्दिश महाव्रत, षष्ठया अभिप्लव, अभिजित, विश्वजित और स्वरसाय। इनके परस्पर अनुप्रवेश से यह संख्या नौ, आठ, सात आदि और अन्त में एक तक पहुंच जाती है।

कौशाम्बी निवासी को सुरिविन्दि उद्दालक आरुणि के पास ब्रह्मचारी के रूप मे निवास करता था। आचार्य ने उससे पूँछा, कुमार तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? को सुरिविन्द ने कहा, विराट दस अक्षरों वाला हैं विराट् ही यज्ञ है। उद्दालक – कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? कौ०– नव, प्राण नौ हैं। प्राणों से यज्ञ का वितन्वर होता है। उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? कौ०– आठ, गायत्री आठ अक्षरों वाली हैं। यज्ञ गायत्री छन्द वाला है। उद्दा०– कुमार!

तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? कौ०– सात, छन्द सात हैं। छन्दों से यज्ञ का वितन्वर होता है। उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे? कौ– छ वर्ष मे छ ऋतुये होती हैं। संवत्सर ही यज्ञ है। प्रायणीय तथा उदयनीय दोनो समान हैं।

उद्दालक– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? कौ०– पाच यज्ञ पाच है। वर्ष मे ऋतुए भी पांच ही हैं। सवत्सर ही यज्ञ हैं। चतुर्विश महाव्रत दोनो दिन समान हैं।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे?

कौ०– चार, पशु चतुष्पद होते हैं। पशु ही यज्ञ हैं। षष्ठ्या और अभिप्लव समान हैं।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे?

कौ०– तीन, छन्द तीन हैं। तीन ही लोक हैं। यज्ञ तीन सवनो वाला है। अभिजित् और विश्वजित् दोनों दिन समान ही है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे?

कौ०– दो पुरुष द्विपाद होता है। पुरुष ही यज्ञ है। स्वर सामान् के दिन समान ही है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे?

कौ०– एक–एक ही दिन होता है। यह एक दिन संवत्सर ही होता है। यही संवत्सर मीमांसा है।

११. दृप्तवाल्मीकि और अजातशत्रु १४/३/१/१

आदित्य, चन्द्र, विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, अप्, आदर्श, शब्द तथा छायामय–व्यस्त पुरूष एव आत्पन्विशिष्ट गुणवान् आत्मस्थ समस्त ब्रह्म की उपासना अविद्यामूलक है, क्योंकि कर्तब्य और भोक्तृत्व आदि आत्मा के स्वाभाविक धर्म नही हैं। ये यागादि इन्द्रियों के धर्म हैं। इसी कारण ये कर्तृत्त्व भोकृत्त्व आदि भाव केवल जागृत अवस्था मे और जागृत वासना के कारण स्वप्न मे भी दिखाई पडते हैं।

गार्ग्यगोत्रोत्पन दृप्त वाल्मीकि विश्रुत वेदाध्यायी था। उसने का शिराज, अजातशत्रु से कहा, तुम्हें ब्रह्म का उपदेश करू। उस अजातशत्रु ने कहा, इस बात पर मैं आपको सहस्र गाये देता हूं।

गार्ग्य ने कहा, "यह जो आदित्य मे पुरूष है, उसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूँ। अजातशत्रु ने कहा, नही–नही इसके विषय में बात मत करो। यह सब का अतिक्रमण करके स्थित है। समस्त भूतो का मस्तिष्क है। राजा है, इस रूप मे इसकी उपासना करता हूं। जो पुरूष इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह सबका अतिक्रमण करके स्थित, समस्त भूतो का मस्तिष्क हैं और वह राजा होता है।"

गार्ग्य नें कहा, यह जो चन्द्रमा मे पुरूष है उसी को मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु बोला, नही नहीं, इस विषय मे बात न करे। यह महान् पाण्डुरवासी सोम राजा है। इस रूप मे मौं इसकी उपासना करता हू। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है उसके लिए नित्यप्रति सोम सुत और स्तुत रहता है। उसका अन्न क्षीण नहीं होता है।

गार्ग्य बोला, यह जो विद्युत में पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं, इस विषय में बात न करो। इसकी तो मैं तेजस्वी

रूप में उपासना करता हूं। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी होता, उसकी प्रजा तेजस्विनी होती हैं

गार्ग्य ने कहा, यह जो आकाश मे पुरूष है उसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं, इसके विषय मे बात न करो। मैं इसकी पूर्ण और अपरिवर्तित रूप से उपासना करता हू। जो कोई इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह प्रजाएव पशुओ से भरपूर हो जाता है। इस लोक से उसकी प्रजा का विच्छेद नही होता।

गार्ग्य बोला, यह जो वायु मे पुरूष है, इसकी मैं ब्रह्म रूप से उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय में बात न करो। इसकी तो मैं इन्द्र, बैकुण्ठ और अपराजिता सेना– इस रूप मे उपासना करता हू। जो कोई इसकी इस रूप मे उपासना करता है वह विजयी, अपराभूत और शत्रुजयी होता है।

गार्ग्य ने कहा, यह जो अग्नि मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं विषासहि रूप मे प्रार्थना व उपासना करता हूँ। जो कोई इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह निश्चय ही विषासहि हो जाता है। उसकी प्रजायें भी विषासहि हो जाती हैं।

गार्ग्य ने कहा, यह जो जल में पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं प्रतिरूप रूप से उपासना करता हूं, जो कोई इसकी इस रूप में उपासना करता है वह निश्चय ही उसे प्रतिरूप में प्राप्त करता है, वह उसके पास प्रतिरूप में ही आता है, अप्रतिरूप में नहीं। उससे प्रतिरूप पुत्र उत्पन्न होता है।

गार्ग्य ने कहा, यह जो दर्पण मे पुरूष है इसकी मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं रोचिष्णु रू॰ में उपसना करता हू। जो कोई इसकी इस प्रकार उपसना करता है वह निश्चय ही रोचिष्णु होता है, उसकी प्रजा भी रोचिष्णु होती है। उसका जिससे सम्पर्क होता है, उन सबसे बढकर राचिष्णु होता है।

गार्ग्य ने कहा, जाने वाले के पीछे जो यह शब्द उत्पन्न होता है, इसी की मै ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नही इसके विषय में बात न करो। इसकी तो मैसे उपासना करता हू। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है वह इस लोक में पूर्णायु प्राप्त करता है। उसे प्राण समय से पहले नही छोडता।

गार्ग्य ने कहा, यह जो छायामय पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं मृत्यु रूप से उपासना करता हू। जो इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह इस लोक में सारी आयु प्राप्त करता है और इसके पास समय से पहले मृत्यु नही आती है।

गार्ग्य नें कहा, यह जो आत्मा मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं आत्मन्वी रूप में उपासना करता हूॅ। जो इसकी इस रूप में उपसना करता है, वह निश्चय ही आत्मान्धी होता है। उसकी प्रजा भी आत्मान्वी होती है। तब वह गार्ग्य चुप रह गया।

अजातशत्रु नें कहा, बस क्या इतना ही है, इससे तो ब्रह्म विदित नहीं होता। गार्ग्य ने कहा, हां इतना ही है, मैं तुम्हारे समीप आऊं। अजातशत्रु ने कहा, ब्राह्मण क्षत्रिय के पास इस उद्देश्य से जाय कि यह मुझे ब्रह्म का उपदेश करेगा। यह तो उल्टी

सी बात हैं तो भी मैं तुम्हें इसका ज्ञान कराऊंगा ही। तब वह उसका हांथ पकडकर उठ खडा हुआ और वे दोनों सुप्त पुरूष के पास गये।

अजाशत्रु ने सुप्त पुरुष को हे ब्रह्म। हे पाण्डुरवास। हे सोभराजन्। इन नामो से पुकारा। परन्तु वह न उठा। जब उसे हाथ से दबाकर जगाया, तब वह उठ बैठा।

अजातशत्रु ने समझाया, यह जो विज्ञानमय पुरूष है यह जब सोया हुआ था, तब कहा था। और यह कहा से आया? किन्तु गार्ग्य कुछ समझ न सका। अजातशत्रु ने स्पष्ट किया, यह जो विज्ञानमय पुरूष है, जब यह सोया हुआ था, उस समय वह विज्ञान के द्वारा इन प्राणो के विज्ञान को ग्रहण कर, यह जो हृदय के भीतर आकाश है उसमे शयन करताहैं जिस समय यह उन विज्ञानो को ग्रहण करता है। उस समय इस पुरूष का नाम स्वपिति होता है। उस समय प्राण गृहीत रहता है, वाक् गृहीत रहती है, चक्षु गृहीत रहता है, श्रोत्र गृहीत रहता है, और मन भी गृहीत रहता है।

जिस समय यह आत्मा स्वप्न वृति का आचरण करता है। उस समय इसके वे लोक उदित होते हैं वहा भी यह महाराज या महाब्राह्मण होता है अथवा ऊंची नीची जातियो को प्राप्त करता है। जिस प्रकार कोई महाराज अपने प्रजाजनों को लेकर अपने देश मे यथेच्छ विचरता है, उसी प्रकार यह प्राणो को ग्रहण कर अपने शरीर मे यथेच्छ विचरता है।

इसके पश्चात जब वह सुषुप्त होता है, जिस समय कि वह किसी के विषय में कुछ नहीं जानता, उस समय जो हिता नाम की बहत्तर हजार नाडियां हृदय से सम्पूर्ण शरीर में होकर व्याप्त हैं, उनके द्वारा बुद्धि के साथ जाकर वह शरीर भर में व्याप्त होकर शयन करता है। वह जिस प्रकार कोई बालक अथवा महाराज किंवा महाब्राह्मण

आनन्द की दुखनाशिनी अवस्था को प्राप्त होकर शयन करे, उसी प्रकार शयन करता है।

जिस प्रकार ऊर्णनाभि तन्तुओ पर ऊपर की ओर जाता है, तथा जैसे अग्नि से अनेको छोटी–छोटी चिनगारिया उडती है, उसी प्रकार इस आत्मा से समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देवगण, और समस्त भूत विविध रूप से उत्पन्न होते हे। सत्य का सत्य यह आत्मा की उपनिषद् है। प्राण ही सत्य हैं उन्हीं का यह सत्य है।

१२. याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद शत० (१४/२/४/१ शत० १४/४/५/१)

ब्रह्म और आत्मा में अभेद है। आत्मा के लिए ही प्रियता, आत्मज्ञान से सब का ज्ञान सभव है। आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु को देखने मे पराभव है। उसी से सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति एव उसी में विलय निहित हैं। अनात्म वस्तुओ की सत्ता तो अज्ञान मे है। जिसकी दृष्टि में सब कुछ आत्मा ही हो जाता है, उसके लिए कर्ता, करण और क्रिया का सर्वथा अभाव हो जाता है। वहां घ्राण, श्रवण, मनन, ज्ञान सब का अभाव हो जाता है। आत्म तत्व किसी का ज्ञेय नहीं, अपितु सब का स्वयमेव ही ज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य के दो पत्निया थीं– मैत्रेयी और कात्यायनी। उनमे से मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी विदुषी और कात्यायनी साधारण स्त्री थी। याज्ञवल्क्य ने सन्यास लेने के समय कहा, मैं इस स्थान (गार्हस्थ्य) से ऊपर (सन्यास आश्रम) में प्रवेश करने वाला हूं। अत· इस कात्यायनी से तेरा बंटवारा कर दूं। मैत्रेयी ने कहा, भगवन्! यदि धन से भरपूर यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी हो जाय तो क्या मैं इससे किसी प्रकार अमर हो सकती हूं। याज्ञवल्क्य ने कहा, नहीं भोगोपकरण युक्त लोगों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा भी जीवन हो जायेगा। धन से अमृतत्व की आशा तो नहीं। मैत्रेयी ने कहा, जिससे

मैं अमर नही हो सकती उसे लेकर मैं क्या करूंगी? भगवन्! जो कुछ अमृतत्त्व का साधन जानते हो उसे बताये।

याज्ञवल्क्य ने कहा, तुम धन्य हो। तुम पहले भी प्रिया रही हो, इस समय भी प्रियतम बात कह रही हो। अच्छा आ बैठ जा तेरे सामने उसकी व्याख्या करूंगा। मेरे द्वारा कहे गये वाक्यों के अर्थ का चिन्तन करना। उन्होंने कहा, अरी मैत्रेयी। यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिय नहीं होती। अपने ही प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिय होती है। पुत्र के प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते अपने ही प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय होते हैं। इसी प्रकार धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देव प्राणी, प्रजा ये सब पदार्थ प्रिय नही होते, अपितु अपने लिए ही प्रिय होते हैं। अरी मैत्रेयी। यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यायनीय है। मैत्रेयि इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन, ध्यान और विज्ञान से सब का ज्ञान हो जाता है।

ब्राह्मण जाति उसे परास्त कर देती है जो उसे आत्मा से भिन्न मानता है। क्षत्रिय जाति उसे परास्त कर देती है जो क्षत्रिय जाति को आत्मा से भिन्न मानता है। लोक उसे परास्त कर देता है जो लोकों को आत्मा से भिन्न देखता है। देवगण उसे परास्त कर देते हैं, जो देवों को आत्मा से भिन्न मानता है उसे भूतगण उसे परास्त कर देते हैं, जो भूतों को आत्मा से भिन्न देखता है। सभी उसे परास्त कर देते हैं, जो सब को आत्मा से भिन्न देखता है। दृष्टान्त यह है कि जिसप्रकार दुन्दुभि वादन किये जाने पर उसके बाह्य शब्दो को कोई ग्रहण नहीं कर सकता, किन्तु दुन्दुभि के आघात को ग्रहण करने से ही उसके शब्द को भी ग्रहण कर लिया जाता है। एक दूसरा दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई बजायी जाती हुई शंख के बाह्य शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकता किन्तु शंख के बजाने से उसके शब्द का भी ग्रहण हो जाता है। तृतीय दृष्टान्त भी है,

जैसे कोई बजायी जाती हुई वीणा के बाह्य शब्द को ग्रहण नही कर पाता, किन्तु वीणा या वीणा के स्वर को ग्रहण करने या बजाने पर उस शब्द का ग्रहण भी हो जाता है। चौथा दृष्टान्त है– जैसे गीले ईंधन के आधान वाली, अग्नि से पृथक धुआ निकलता है। हे मैत्रेयी इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद है, वे इस महत् के ही नि श्वास हैं।

जिस प्रकार समुद्र समस्त जलों का अयन है उसी प्रकार त्वक् समस्त स्पर्शों का एक अयन है। उसी प्रकार समस्त स्पर्शों का जिह्वा एक अयन है। इसी प्रकार समस्त रूपो का चक्षु एक अयन है। इसी प्रकार समस्त शब्दो का श्रौत्र एक अयन है। इसी प्रकार संकल्पो का मन एक अयन है। इसी प्रकार समस्त विद्याओ का हृदय एक अयन है, इसी प्रकार समस्त आनन्दों का उपस्थ एक अयन है और इसी प्रकार समस्त आनन्दों का उपस्थ एक अयन है। इसी प्रकार समस्त विसर्गों का वायु एक अयन है। इसी प्रकार समस्त मार्गों का चरण एक अयन है, और इसी प्रकार समस्त वेदों का वाक् एक अयन है। जिस प्रकार समस्त नागो का चरण एक अयन है, और इसी प्रकार समस्त वेदों का वाक् एक अयन है। जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक जल में ही विलीन हो जाता है, उसे जल से पृथक करने में कोई सफल नही हो सकता, हा वहा से भी जल लिया जाय तो वह नमकीन प्राप्त होगा। हे मैत्रेयी! उसी प्रकार यह महद्भूत विज्ञानघन ही हैं यह इन भूतो के साथ प्रकट होकर इन्हीं के साथ विनाश को प्राप्त होता है। देहेन्द्रिय भाव से मुक्त होने पर उसकी कोई संज्ञा नहीं होती। हे मैत्रेयी! ऐसा मैं तुझसे कहता हूं।– ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा।

मैत्रेयी ने कहा, मृत्यु के अनन्तर कोई सज्ञा नहीं रहती। ऐसा कहकर भगवान् ने मुझे मोह में डाल दिया है। याज्ञवल्क्य ने कहा, है मैत्रेयी! मैं मोह का उपदेश नहीं करता। अरी! यह तो उसका विज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है।

जहाँ द्वैत होता हे, वहीं अन्य अन्य को सूंघता है। अन्य अन्य को सुनता है, अन्य अन्य का अभिवादन करता है। अन्य अन्य का मनन करता है, तथा अन्य को जानता है। किन्तु जहां इसके लिए आत्मा ही सब कुछ हो गया है, वहां किसके द्वारा किसे सूंघे, किसके द्वारा किसे देखे, किसके द्वारा किसे सुने, किसके द्वारा किसका अभिवादन करे अथवा किसके द्वारा किए जाने। जिसके द्वारा इन सब को जानता हूं, उसे किसके द्वारा जाना जा सकता है। हे मैत्रेयी! विज्ञाता को किसके द्वारा जाने। वह किसका ज्ञेय हो सकता है। ज्ञाता को ज्ञेय नहीं बनाया जा सकता है।

१३. याज्ञवल्क्य एवं अश्वल

यज्ञ विविध हैं– अधिदेव, अध्यात्म और ऋत्विकों के द्वारा सोमपान प्रतीक यज्ञ या अघिमूत यज्ञ। अधिदैव यज्ञ में अग्नि, आदित्य, वायु और चन्द्रमा अध्यात्म में वाक्, चक्षु, प्राण, एवं मन के रूप व्यक्त हुए हैं। ये ही अधिभूत में क्रमश· होता अघ्वर्यु , उद्‌गाता और ब्रह्मा है। अध्यात्म और अधिभूत में दर्शपूर्णमासादि सांग होने के कारण बन्धनकारी है। इन्हे अधिदेव अर्थ में ग्रहण करने पर आदित्यादि के प्रति दिन रातादि की सत्ता का अभाव होने से काल लक्षण मृत्यु एवं अध्यात्म अधिभूत अर्थका निषेध कर देने पर यजमान कर्मलक्षण मृत्यु से मुक्ति पा लेता है। अतएव केवल ज्ञान युक्त कर्म ही भोगकारी है।

विदेह राज जनक ने एक विशाल दक्षिणा वाले यज्ञ द्वारा यजन किया। उसमें कुरू और पांचाल देश के ब्राह्मण एकत्र हुए। राजा जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि इन ब्राह्मणों में अनूचानतम कौन हैं। इसलिए उसने एक सहस्र गायें गौशाला मेंरोक लीं। उनमें से प्रत्येक के सींगों में दश दश पाद सुवर्ण बंधे हुए थे। उसने उनसे कहा, पूज्य ब्राह्मणों! आप लोगों में से जो ब्रह्मिष्ठ हो, वह इन गायों को ले जाए। किन्तु उन

ब्राह्मणो का साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने अपने ही एक ब्रह्मचारी से कहा, हे सौम्य! सामश्रवा! तू इन्हे ले जा। तब वह इन्हे ले चला। इससे वे ब्राह्मण यह हम सब मे अपने को ब्रह्मिष्ठ कैसे कहता है, इस प्रकार कहते हुए क्रुद्ध हो गये।

विदेह राजा जनक का होता अश्वल था। उसने याज्ञवल्क्य से पूछा, याज्ञवल्क्य! हम सब मे क्या तुम ही ब्रह्मिष्ठ हो। उसने कहा ब्रह्मिष्ठ को तो नमस्कार करते हैं, हम तो गायो की ही इच्छा वाले हैं जैसा ब्राह्माण्ड में है वैसा ही मनुष्य शरीर मे भी घटित हो रहा है। मनुष्य शरीर मे वाक्, चक्षु, प्राण, और मन क्रमश ब्रह्माण्ड पुरुषगत अग्नि, आदित्य वायु, चन्द्रमा के प्रतिनिधि ही हैं। इसी प्रकार अध्वर्यु, उदगाता, और ब्रह्मा भी यज्ञ पुरुष के क्रमश. वाक, चक्षु, प्राण, मन, स्थानीय है। इन्हीं में विविध कर्मों से मनुष्य मृत्यु आदि का अतिक्रमण कर लेता है। अज्ञान जनित आसक्ति के स्थान को छोड स्वर्गादि की प्राप्ति करता है।

हे याज्ञवल्क्य ! अश्वल ने कहा, यह सब जो मृत्यु से व्याप्त है, मृत्यु द्वारा स्वाधीन किया हुआ है, उस मृत्यु की व्याप्ति का यजमान किस साधन से अतिक्रमण करता है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, यजमान होता ऋत्विक रूपाग्नि से और वाक द्वारा उसका अतिक्रमण कर सकता है। वाक ही यज्ञ मे प्रमुख होता है। यह जो वाक् है यही अग्नि है, यही होता है, यही मुक्ति एवं अतिमुक्ति है।

अश्वल ने कहा, है याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ है सब दिन और रात्रि से व्याप्त है। सब दिन एवं रात्रि के अधीन है तब भला किस साधन के द्वारा यजमान दिन एव रात्रि के व्याप्ति का अतिकमण कर सकता है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, अध्वर्यु, ऋत्विक् और चक्षुरूप आदित्य के द्वारा। अध्वर्यु यज्ञ का चक्षु ही है। अतः यह जो चक्षु है आदित्य है। वह अध्वर्यु है,वही मुक्ति और वही अतिमुक्ति भी है। अश्वल ने कहा, है

याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ है वह पूर्वापर पक्ष से व्याप्त है। सब कुछ पूर्वापर पक्ष द्वारा वशीभूत है। किस उपाय से यजमान पूर्वपक्ष और अपरपक्ष की व्याप्ति सेस पार होकर मुक्त होताहै। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ऋत्विक से और वायुरुप प्राण से क्योकि उद्गाता यज्ञ का प्राण ही है तथा यह जो प्राण है वही वायु है वही उद्गाता है वही मुक्ति है, और अतिमुक्ति है।

अश्वल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! यह जो अन्तरिक्ष है, वह निरालम्ब सा है। अत यजमान किस आलम्बन से स्वर्गलोक मे चढता है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ब्रह्मा ऋत्विक के द्वारा और मन रुप चन्द्रमा से। ब्रह्मा यज्ञ का मन ही है। यह जो मन है, यही चन्द्रमा है, वह ब्रह्मा है, वह मुक्ति है, और वही अतिमुक्ति है।

अश्वबल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! आज कितनी ऋचाओ के द्वारा होता इस यज्ञ मे शस्त्रशसन करेगा? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, तीन के द्वारा। अश्वबल, वे तीन कौन सी हैं? याज्ञवल्क्य, पुरोनुवाक्या, याज्या और शस्या।

अश्वबल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! आज इस यज्ञ मे अध्वर्यु कितनी आहुतिया देगा? याज्ञवल्क्य, तीन। अश्वबल, ये तीन कौन–कौन सी हैं? याज्ञवल्क्य, जो होम की जाने पर प्रज्वलित होती हैं, जो होम की जाने पर शब्द करती है, जो होम की जाने पर पृथ्वी मे लीन हो जाती हैं। अश्वबल, इसके द्वारा यजमान किसे जीतता है? याज्ञवल्क्य, जो होम किये जाने पर प्रज्वलित की जाती है, उनसे यजमान देवलोक को ही जीत लेता है, क्योंकि देवलोक मानों देदीप्यमान हो रहा है। जो होम किये जाने पर अत्यन्त शब्द करती है, उनसे वह पितृ लोक को ही जीत लेता है, क्योंकि पितृ लोक अत्यन्त शब्द करने वाला है। जो होम की जाने पर पृथ्वी में लीन हो जाती है, उनसे मनुष्य लोक को ही जीतता है, क्योंकि मनुष्य लोक अधोवर्ती है।

हे याज्ञवल्क्य! अश्वबल ने कहा, आज यह ब्रह्मा यज्ञ में दक्षिण की ओर बैठकर कितने सूर्य देवताओं द्वारा यज्ञ की रक्षा करता है? याज्ञवल्क्य, एक के द्वारा। अश्वबल, वह एक देवता कौन है। याज्ञवल्क्य, वह मन ही है। मन अनन्त है और विश्वदेव भी अनन्त है, अत· उस मन से यजमान अनन्त लोकों को जीत लेता है।

हे याज्ञवल्क्य! अश्वबल ने कहा, आज इससे यज्ञ में उद्‌गाता कितनी ऋचाओं का स्तवन करेगा। याज्ञवल्क्य – तीनो का । अश्वबल– वे तीन कौन सी हैं? याज्ञवल्क्य – पुरोनुवाक्या, याज्या और शस्या। अश्वबल, इनमे से जो शरीर के अन्दर रहने वाली है। याज्ञवल्क्य– प्राण ही पुरोनुवाक्या है, अपान याज्या है और व्यान शस्या है। अश्वबल , इनसे यजमान किन पर विजय प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य– पुरोनुवाक्या से पृथ्वी लोक पर याज्या से अन्तरिक्ष लोक पर और शस्या से द्युलोक पर विजय प्राप्त करता है। इसके पश्चात् अश्वबल चुप हो गया।

१४. याज्ञवल्क्य और जरत्कारब आर्त्तभाग (१४/३/३/१)

इन्द्रिय और उसके विषय ग्रह और अतिग्रह रूप हैं। ये बन्धन हैं अतएव मृत्युरूप हैं। इस सप्रयोजक बन्धन से मुक्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है और इससे बंधा होने पर वह संसार को प्राप्त होता है, वही मृत्यु हैं इस मृत्यु का भी मृत्यु है। जो मुक्त है उसका कही गमन नहीं होता, क्योंकि वह तो प्रदीप निर्वाण के समान सब का उच्छेद हो जाने पर आकृति से संबद्ध होने से केवल नाम मात्र अवशिष्ट रह जाता है। वह पुरूष अच्छे कार्य किये रहने पर पुण्य यानि और बुरे कर्म किये रहने पर पाप योनि में उत्पन्न होता है।

जरत्कारव आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! ग्रह कितने हैं और अतिग्रह कितने हैं। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, आठ ग्रह हैं आठ अतिग्रह हैं। आर्तभाग, जो आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं, वे कौन हैं?

याज्ञवल्क्य नें स्पष्ट किया, कि प्राण ही ग्रह हैं वह अपान रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योंकि प्राण अपान से ही गन्धो को सूंघता है। बाक् ही ग्रह है, वा नाम रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योंकि प्राणी वाक् से ही नामों का उच्चारण करता है। जिह्वा ही ग्रह है। वह रस रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योकि प्राणी जिह्वा से रसों को विशेष रूप से जान पाता है। चक्षु ही ग्रह है, वह रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योकि प्राणी चक्षु से ही रूपो को देखता हैं श्रोत्र ही ग्रह है। वह शब्द रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योंकि प्राणी श्रोत्र से ही शब्दों को सुनता है। मन ही ग्रह है, वह काम रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योंकि प्राणी मन से ही कामो की कामना करता है। हस्त ही ग्रह हैं। वे कर्मरूप अतिग्रह से गृहीत हैं, प्राणी हाथ से ही कर्म करता है। त्वक् ही ग्रह है, यह स्पर्श अतिग्रह से गृहीत है क्योकि त्वक् द्वारा ही स्पर्श का ज्ञान कर पाता है। इस प्रकार से आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं।

आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ भी है, वह सब मृत्यु का रवाध है, वह देवता कौन है, जिसका रवाध मृत्यु है? याज्ञ०– अग्नि ही मृत्यु है, वह जल का खाद्य है। याज्ञवल्क्य! आर्तभाग ने पूछा, जिस समय यह मनुष्य मरता है उस समय उसके प्राणों का उत्क्रमण होता है या नहीं। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, नहीं नहीं, वे यहां ही लीन हो जाते हैं। वह फूल जाता है और वायु से पूर्ण हुआ ही मृत होकर पडा रहता है।

आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! जिस समय यह पुरुष मरता है उसे उस समय क्या नहीं छोडता? याज्ञवल्क्य, नाम नहीं छोडता, नाम अनन्त ही है, विश्वेदेव भी अनन्त ही है। इस आनन्त्यदर्शन के द्वारा वह अनन्त लोक को ही जीत लेता है।

आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! जिस समय यह मृत पुरूष वाक् अग्नि मे लीन हो जाता है तथा प्राण वायु मे, चक्षु, आदित्य मे, मन चन्द्रमा में, श्रोत्र दिशा में, शरीर पृथिवी मे, हृदयाकाश, भूताकाश, मे लोग औषधियों मे और केश वनस्पतियों में लीन हो जाता है। तथा लोहित एवं वीर्य जल में स्थापित हो जाते हे, उस समय पुरुष कहां रहता है?

याज्ञवल्क्य ने कहा, है प्रिय दर्शन आर्तभाग। तू मुझे अपना हाथ पकड़ा, हम दोनो ही इस प्रश्न का उत्तर दें। यह प्रश्न जन समुदाय में किये जाने योग्य नहीं, तब उन दोनों ने उठकर विचार किया। उन्होने जो कुछ कहा तथा जिसकी प्रशंसा की वह कर्म ही था। पुरूष पुण्य कर्म से पुण्यवान् और पाप कर्म से पापवान् होता है। अब जरप्कारव आर्तभाग चुप हो गया।

१५. याज्ञवल्क्य और भुज्यु लाट्यायनि (१४/३/३/१)

मोक्ष का आरम्भ नहीं होता, वह किसी का कार्य भी नहीं है। वह तो बंधन का ध्वंसमात्र है। बन्धन अविद्या है। अविद्या का कर्म से नाश असंभव है, अतएव ज्ञान युक्त कर्म भी मोक्ष का कारण नहीं बन सकता। कर्मों का फल तो संसारत्व मात्र है।

याज्ञवल्क्य ने भुज्युलाट्यायनि ने पूछा, याज्ञवल्क्य। हम व्रत का आचरण करते हुए भद्रदेश में घूम रहे थे कि पतंजलि काप्य के घर पहुंचे। उसकी पुत्री गन्धर्व से गृहीत थी। उसने उससे पूछा, तू कौन है? वह बोला अगिरस सुधन्वा हूं।

याज्ञवल्क्य ने कहा, उस गन्धर्व ने निश्चय ही यह कहा था कि वे वहां चले गये जहां अश्वमेध यज्ञ करने वाले जाते हें। भुज्यु अश्वमेध याजी कहां जाते हैं? याज्ञ०– यह लोक ३२ देवरथाहूय है, उसे चारो ओर से दूनी पृथिवी घेरे हुए हैं। उस पृथिवी को सब ओर से दूना समुद्र घेरे हुए है। जितनी पतली छुरे की धार, जितना सूक्ष्म मक्खी का पंख होता है, उतना उन अण्ड कपोलो के मध्य में आकाश है। इन्द्र (चित्याग्नि) ने पक्षी होकर पारिक्षितो को वायु को दिया। वायु उन्हें अपने स्वरूप मे स्थापित कर रखा है। वहां ले गया, जहां अश्वमेधयाजी रहते हैं इस प्रकार उस गन्धर्व ने वायु की ही प्रशसा की थी। अत वायु ही व्यष्टि है और वायु ही समष्टि है। जो ऐसा जानता है वह पुनर्मृत्यु को जीत लेता है। तब भुज्यु लाट्यायनि चुप हो गया।

१६. याज्ञवल्क्य – उषस्त संवाद (१४/३/४/१)

यह आत्मा सर्वान्तर है, विज्ञानमय है, इसी से सारे प्राण अनुप्राणित है। यह चक्षु श्रौत्रादि का अविषय भूत है। वह दृष्टि का भी द्रष्टा, श्रुति का भी श्रोता, मति का भी मन्ता, विज्ञप्ति का भी विज्ञाता है। इससे भिन्न सब अति हैं।

याज्ञवल्क्य से उषस्त चाकायण ने पूछा, हे याज्ञवल्क्य। जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तरात्मा है उसकी मेरे प्रति, व्याख्या करो। याज्ञवल्क्य ने कहा, यह तेरा आत्मा ही सर्वान्तर है। उषस्त, याज्ञवल्क्य। यह सर्वान्तर कौन सा है, याज्ञ०– जो प्राण से प्राणक्रिया करता है वह तेरा आत्मा सर्वान्तर है, जो व्यान से व्यान क्रिया करता है, तेरा आत्मा सर्वान्तर है। यह तेरा आत्मा सर्वान्तर है।

उषस्तचाक्रयण ने कहा, जिस प्रकार कोई गौ और अश्व बताने का सकल्प करके धावनरूप लिंग दिखाकर कहे कि यह जो चलता है गौः है जो दौडता है घोड़ा है, उसी प्रकार तुम्हारा ब्रह्मोपदेश है। अतः साक्षात् अपरोक्षब्रह्म और सर्वान्तरात्मा का

स्पष्ट उपदेश करो। याज्ञवल्क्य यह तेरा आत्मा सर्वान्तर है। उषस्त, याज्ञवल्क्य। सर्वान्तर कौन है? याज्ञ०– तुम दृष्टि के द्रष्टा को नहीं देख सकते, श्रुति के श्रोता को नहीं सुन सकते मति के मत्ता का मनन नहीं कर सकते। विज्ञप्ति के विज्ञाता को नहीं जान सकते। तुम्हारा यह आत्मा सर्वान्तर है। इससे भिन्न वस्तु विनाशशील है। तब उषस्त चाक्रायण चुप रह गया।

१७. याज्ञवल्क्य – कहोल संवाद (१४/३/५/१)

आत्मा ही ब्रह्म है। वह शरीर के धर्मों से रहित है। शोक, मोह, जरा; मृत्यु आदि शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं, जो पुत्र, वित्त, एवं लोकैषणाओं से ऊपर उठकर आत्मदर्शन कर लेता है। वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

याज्ञवल्क्य से कौषीतकेय कहोल ने पूछा, याज्ञवल्क्य। जो भी साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तरात्मा है। उसकी तुम मेरे प्रति व्याख्या करो। याज्ञ०– यह तुम्हारी आत्मा सर्वान्तर है। कहोल, याज्ञवल्क्य। यह बताओं कि सर्वान्तर कौन है? याज्ञ०– जो क्षुधापिपासा, शोक, मोह, जरा, और मृत्यु से परे है, उस इस आत्मा को जानकर ब्राह्मणपुत्रैषणा वित्तैषणा, लौकैषण से रहित हो भिक्षाचरण करते हैं वही वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है। ये दोनों ही साध्य और साधनेच्छायें एषणायें ही हैं। अत: ब्राह्मण पूर्णतया पांडित्य का सम्पादन कर आत्मज्ञान रूप बल से स्थित रहने की इच्छा करे फिर पाण्डित्य को पूर्णतया प्राप्त कर वह मुनि होता है। मौन और अमौन का पूर्णतया सम्पादन करके ब्राह्मण कृतकृत्य होता है। वह किस प्रकार ब्राह्मण होता है? जिस प्रकार भी हो ऐसा ही ब्राह्मण होता है। इससे भिन्न और सब नाश्वान है। यह सुनकर कौषीतकेय कहोल चुप हो गया।

वायु रूप सूत्र के द्वारा यह लोक, परलोक और सम्पूर्णभूत संग्रहीत है। इस सूत्र का नियन्ता अन्तर्यामी अमृत है, जो पृथिवी, अप्, अग्नि, अन्तरिक्षवायु द्युलोक, आदित्य, दिक्, चन्द्रतारक, आकाश, तम तेज, भूत तथा भूतगत प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन त्वक्, विज्ञान एवं रेतस् आदि में व्याप्त है। ये सब जिसके शरीर हैं जिसे ये सब नहीं जानते हैं, और इन सब का नियन्ता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अदृष्ट, अश्रुत, अमृत, अविज्ञेय होकर भी सबका द्रष्टा, सबका श्रौता, मन्ता और विज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य से आरूणि उद्दालक ने पूछा, याज्ञवल्क्य। हम मद्रदेश में यज्ञशास्त्र का अध्ययन करते हुए काप्य पतजल के घर में रहते थे। उसकी भार्या गन्धर्वगृहीत थी। हमने उससे पूछा, तुम कौन हो? उसने कहा, मैं आधर्वकबन्ध हूं। उस गन्धर्व ने काप्य पतंजल और याज्ञिकों से पूछा, काप्य। क्या तुम उस सूत्र को जानते हो जिसके द्वारा यह लोक और परलोक साथ ही सारे भूत ग्रथित हैं। तब काप्य पतंजल ने कहा, भगवन्। मैं उसे नहीं जानता। उसने फिर पूछा, काप्य! क्या तुम उस अन्तर्यामी को जानते हो, जो इस लोक, परलोक और समस्त भूतो को भीतर से नियमित करता है। काप्य ने उत्तर दिया, भगवन्! मैं उसे नहीं जानता। उस गन्धर्व ने समझाया, काप्य! जो कोई उस सूत्र और उस अन्तर्यामी को जानता है, वह ब्रह्मवेत्ता है, वह देववेत्ता है, वह भूतवेत्ता है, आत्मवेत्ता और सर्ववेत्ता है।

इसके पश्चात् गन्धर्व ने उन सबसे सूत्र और अन्तर्यामी को बताया। उसे मैं जानता हूं। हे याज्ञवल्क्य! यदि उस सूत्र और अन्तर्यामी को न जानने वाले होकर ब्रह्मवेत्ता की स्वभूत गायों को लेकर जाने पर तुम्हारा मस्तक गिर पड़ेगा। याज्ञवल्क्य ने कहा, हे गौतम! मैं उस अन्तर्यामी को जानता हूं। आरूणि, ऐसा तो कोई भी कह सकता है। यदि जानते हो तो बताओ।

याज्ञवल्क्य ने कहा, गौतम! वायु ही वह सूत्र है, वायु रूप सूत्र के द्वारा लोक, परलोक और सारे के सारे प्राणी ग्रथित हैं। इसीलिए मृत व्यक्ति के लिए कहते हैं कि इसके अंग विस्रस्त हो गये हैं। आरुणि ने अनुमोदन किया, ठीक है, उस अन्तर्यामी को बताओ। याज्ञवल्क्य, जो पृथ्वी में रहने वाल पृथ्वी के भीतर है, पथ्वी उसे नहीं जानती, जिसका पृथ्वी शरीर है, पृथ्वी के अन्दर रहकर इसका नियमन करता है, यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो जल मेंरहने वाला जल के भीतर है, जिसे जल नही मानता , जल जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर जल का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अग्नि में रहने वाला अग्नि के भीतर रहता है। अग्नि जिसे नहीं जानता। अग्नि जिसका शरीर है, और अग्नि के भीतर रहकर उसका नियमन करता है। वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी है। जो अन्तरिक्ष में रहने वाला अन्तरिक्ष है भीतर है, जिसे अन्तरिक्ष नहीं जानता। अन्तरिक्ष जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर अन्तरिक्ष का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

जो द्युलोक में रहने वाला द्युलोक के भीतर है जिसे द्युलोक नही जानता, द्युलोक जिसका शरीर है, और जो भीतर रहकर द्युलोक का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आदित्य में रहने वाला आदित्य के भीतर है जिसे आदित्य नहीं जानता, आदित्य जिसका शरीर है जो भीतर रहकर आदित्य का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है जिस दिशाओं में रहने वाला दिशाओं के भीतर है, दिशायें जिसे नहीं जानती, जो भीतर रहकर दिशाओं का नियमन करता है,वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो चन्द्रमा और तारों में रहने वाला, चन्द्रमा और तारों के भीतर रहता है, जिसे चन्द्रमा और तारागण नहीं जानते। चन्द्रमा और तारागण जिसकी शरीर हैं, भीतर रहकर जो इनका नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आकाश में रहने वाला आकाश के भीतर रहता है, जिसे

आकाश नहीं जानता, आकाश जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर आकाश का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तम मे रहने वाला तम के भीतर है, तम जिसे नहीं जानता, तम जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर तम का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तेज मे रहने वाला तेज के भीतर है, जिसे तेज नहीं जानता, तेज जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर तेज का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। यह अधिदैवत दर्शन है।

जो समस्त भूतों में स्थित रहनें वाला समस्त भूतो के भीतर है जिसे समस्त भूत नहीं जानते, समस्त भूत जिसके शरीर है, और जो भीतर रहकर समस्त भूतों का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अधिभूत और अध्यात्म दर्शन का प्रत्याख्यान कर रहा हू। जो प्राण में रहने वाला प्राण के भीतर रहता है, प्राण जिसे नहीं जानता, प्राण जिसका शरीर है, प्राण के भीतर रहकर नियमन करता है। वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वाणी में रहने वाला वाणी के भीतर है, वाणी जिसे नही जानती, वाणी जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर वाणी का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो नेत्र के भीतर रहने वाला है किन्तु नेत्र उसे नहीं जानता, नेत्र जिसका शरीर है भीतर रहकर जो नेत्र का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो श्रोत्र के भीतर रहने वाला है किन्तु श्रोत्र उसे नहीं जानता, श्रोत्र जिसका शरीर है भीतर रहकर जो श्रोत्र का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो मन के भीतर रहने वाला है किन्तु मन उसे नहीं जानता, मन जिसका शरीर है भीतर रहकर जो मन का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो विज्ञान के भीतर रहने वाला है किन्तु विज्ञान उसे नहीं जानता, विज्ञान जिसका शरीर है भीतर रहकर जो विज्ञान का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। भीतर रहकर जो नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वीर्य

मे रहने वाल वीर्य के भीतर है जिसे वीर्य नहीं जानता वीर्य जिसका शरीर है, जो वीर्य के भीतर रहकर वीर्य का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। वह दिखाई नहीं देता। किन्तु स्वय द्रष्टा है। जो सुनायी नही पडता स्वयं सुनता है, मंनन का विषय नहीं होता, स्वयं मनन करता है। विशिष्ट रूप मे ज्ञात नहीं होता स्वयं विशिष्ट ज्ञाता है। यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इससे भिन्न जो भी है वह विनाशशील है। यह सुनकर आरूणि उद्दालक चुप हो गया।

२०. याज्ञवल्क्य और गार्गी (१४/३/८/१)

द्युलोक और पृथिवीलोक के ऊपर नीचे एवं मध्य में व्याप्त स्वयं भी जो द्युलोक पृथिवी न्लोक रूप ही है, जिसे भूत भुवत और भविष्यत् कहते हैं, वह आकाश में ओत–प्रोत है। यह आकाश तत्व अक्षर, अस्थल, अह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित, अस्नेह, अच्छाय, अतम, अवायु, अनाकाश, असंग जरस्, अचक्षु, अश्रौत्र, अवाक्, अतेज, अप्राण, अमुख, अमाप, अनन्तर और अबाह्य है। इसी के शासन में सारी प्राकृतिक शक्तियां ऋत का अनुगमन करती है।

बहुत से लोगों के पूंछ लेने पर वाचवतवी गार्गी बोली, पूज्य ब्राह्मणों। अब मैं इनसे दो प्रश्न करूंगी यदि यह मेरे उन दोनों प्रश्नों का उत्तर दे देंगे तो हममें से कोई भी इन्हें बाद में नहीं जीत पायेगा। ब्राह्मणों ने कहा, पूंछो।

गार्गी ने पूंछा, याज्ञवल्क्य ! जिस समय काशी या विदेह का रहने वाला कोई वीर वंशज प्रत्यंचा हीन धनुष पर प्रत्यंचा चढाकर, शत्रुओं का अत्यन्त संहार करने वाले दो वाणों वाले धनुष को हांथ मे लेकर खडा हो जाय, उसी प्रकार दो प्रश्न लेकर मैं तुम्हारे सामने उपस्थित होती हूँ। तुम मुझे इन दो प्रश्नो काउत्तर दो। इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा, पूंछ ले गार्गी। गार्गी– याज्ञवल्क्य ! जो द्युलोक से ऊपर है, जो

पृथ्वी से नीचे है, जो द्युलोक और पृथ्वी के मध्य मे है स्वय भी जो द्युलोक और पृथ्वी लोक है और जिन्हें भूत, भुवत और भविष्यत् कहते हैं, वे किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्य ने कहा, गार्गी ! वे सब आकाश में ओत प्रोत हैं। वह बोली, याज्ञवल्क्य ! जिसने मुझे इसका उत्तर दिया उस तुझको नमस्कार है। अब दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हो जाइये। याज्ञवल्क्य ने कहा, पूंछ ले गार्गी ! गार्गी ने पूंछा, आकाश किसमें ओत प्रोत है? याज्ञवल्क्य ने कहा, गार्गि ! उस तत्व को ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते हैं। वह न मोटा है, न पतला है, छोटा है न बडा, न लाल है, न द्रव है, न तम है न छाया है, न वायु है, न आकाश है, न संग है न रस है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, न इसमे अन्दर है न बाहर है, वह कुछ भी नही खाता, उसे कोई भी नहीं खाता।

हे गार्गि! उस अक्षर तत्व के प्रशासन में सुर्य और चन्द्रमा द्युलोक और पृथ्वी लोक, निमेष, मुहुर्त, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर विवृत होकर स्थित है। उस अक्षर के प्रशासन में ही पूर्व वाहिनी नदिया और अन्य नदियां श्वेतपर्वतों से बहती हैं। उसस अक्षर के प्रशासन में ही मनुष्यदाता की प्रशंसा करते हैं। देव यजमान का और पितर दर्वी होम का अनुवर्तन करते हैं।

जो कोई इस लोक में उस अक्षर को न जानकर हवन करता है, यज्ञ करता है, सहस्रों वर्ष तप करता है, उसका वह सारा कर्म नाशवान् होता है, जो कोई इस अक्षर को बिना जाने इस लोक से मर जाता है, कृपण है और जो उस अक्षर को जानकर मरता है वह ब्राह्मण है। यह अक्षर स्वयं दृश्य नहीं अपितु द्रष्टा है, श्रव्य नहीं श्रोता है मननीय नहीं मन्ता है स्वयं अविज्ञेय होकर विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई भी द्रष्टा, श्रोता, मन्ता और विज्ञाता नहीं है। उसी में आकाश ओतप्रोत है। गार्गी ने कहा, हे पूज्य

ब्राह्मणों ! आप मे से कोई भी इन्हें ब्रहमोघ मे नहीं जीत सकेगा। इतना कहकर गार्गी चुप हो गई।

२२. याज्ञवल्क्य – शाकल्य संवाद (११/६/३/१, १४/३/६/१)

अनन्त देवों की निविद सख्या विशिष्ट देवों मे अन्तर्भाव है और उनका भी तैंतीस देवो मे और अन्ततः एक देव प्राण मे ही अन्तर्भाव, है। एक प्राण का ही अनन्त संख्या के रूप मे विस्तार हुआ है। यहा अधिकार भेद से एक ही देव के नाम रुप, कर्म, गुण और शक्ति का भेद है। उसी प्राण के ८ भेद प्रतिष्ठा सहित बताए गये हैं।

इसके पश्चात् शाकल्य विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया, याज्ञवल्क्य देवता कितने हैं? याज्ञवल्क्य– तीन सहस्र तीन सौ छ.। शाकल्य, ठीक है। कितने देवता हैं ? याज्ञवल्क्य– तैंतीस। शाकल्य ने कहा – ठीक है कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य– छः देव हैं। शाकल्य, ठीक है, कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य – केवल तीन देव हैं। शाकल्य, ठीक है, कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य– दो देवता हैं। ठीक है। ठीक है कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य– एक देव है। शाकल्य, ठीक है, तीन सहस्र तीन सौ छ· देव कौन हैं? याज्ञवल्क्य– देवता तो ३३ हैं, ये उनकी महिमायें हैं। शाकल्य– तैंतीस देवता कौन हैं? याज्ञवल्क्य– आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ये ३१ और इन्द्र तथा प्रजापति, ये ३३ देव हैं। शाकल्य ने कहा, वसु कौन हैं? याज्ञवल्क्य– अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा एवं नक्षत्र–७ ये आठ वसु हैं। इन्हीं में यह सारा जगत विहित है अतः ये वसु हैं। शाकल्य– रुद्र कौन हैं? याज्ञवल्क्य– पुरुष में ये दश प्राण और ग्यारवां आत्मा। ये जिस समय इस मरणशील शरीर से उत्क्रमण करते हैं, उस समय रुला देते हैं। रुला देने के कारण ये रुद्र हैं। शाकल्य– आदित्य कौन हैं? याज्ञवल्क्य– संवत्सर में १२ मास होते हैं, ये ही आदित्य हैं, ये सब का ग्रहण करते हुए चलने के

कारण आदित्य कहलाते हैं। शाकल्य, इन्द्र कौन हैं? प्रजापति कौन है? याज्ञवल्क्य– स्तनयित्रु इन्द्र है। यज्ञ प्रजापति है। शाकल्य– स्तनयित्रु कौन है? यज्ञ कौन है? याज्ञवल्क्य– स्तनयित्रु अशनि है, यज्ञ पशु है। शाकल्य– छ· देव कौन है। याज्ञवल्क्य– अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य और द्युलोक ये ६ देव हैं। शाकल्य– तीन देव कौन हैं? तीनों लोक ही तीन देव हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा– इन्हीं मे सारे देव रहते हैं। शाकल्य– दो देव कौन हैं? याज्ञवल्क्य– अन्न और प्राण। शाकल्य– अध्यर्द्ध कौन है? यह अध्यर्द्ध क्यों हैं? शाकल्य ने पूंछा। याज्ञवल्क्य बोला, क्योंकि इसी मे यह सब ऋद्धि को प्राप्त होता है। शाकल्य– एकदेव कौन है? याज्ञवल्क्य– प्राण, वह ब्रह्म है, उसी को व्यद् कहते हैं। शाकल्य– पृथिवी ही जिसका आश्रय है, अग्नि जिसका नेत्र हैं, मन जिसकी ज्योति है उस पुरुष को सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय जानता है, वही सच्चा ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य– जिसे सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को मैं जानता हूॅ। यह जो शरीर पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– अच्छा उसका देवता कौन है? काम ही जिसका आयतन है हृदय लोक है, मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय जानता है, वही ज्ञात है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को मैं जानता हॅं। जो भी यह काममय पुरुष है। वही यह है। हे शाकल्य और बोलो। शाकल्य, उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य – स्त्रियॉ।

शाकल्य, रूप ही आयतन है, चक्षु लोक है, मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय जानता है, वही ज्ञात है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय कहते हो मैं उस पुरुष को तो जानता हूं। जो भी यह आदित्य में पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– सत्य। शाकल्य– आकाश ही जिसका आयतन है। हृदय लोक है, मन

ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य – जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओं का आश्रय कहते हो। उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह श्रौत्र सम्बन्धी प्रातिश्रुत्क पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– दिशायें। शाकल्य – तम ही जिसका आयतन है हृदय लोक है मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय कहते हो। उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह छायामय पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य, उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– मृत्यु। शाकल्य– रूप ही जिसका आयतन् है, नेत्र लोक है, मन ज्योति है, उसस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओं का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यहआदर्श मे पुरुष है वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– असु। शाकल्य– जल ही जिसका आयतन है, हृदय लोक है, मन ज्योति है, जो भी पुरुष को सम्पूर्ण आत्माओ का परम आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य – जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओं का आश्रय कहते हो उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह पुत्र–रुप पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य – प्रजापति है।

याज्ञवल्क्य ने कहा, शाकल्य। इन ब्राह्मणों ने तुम्हें अंगारे निकालने का चिमटा बना दिया है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह जो तुम कुरुपांचालदेशीय ब्राह्मणों पर आक्षेप करते हो, क्या तुम ब्रह्मवेत्ता हो? याज्ञवल्क्य– मैं देवता और प्रतिष्ठा के सहित दिशाओं को जानता हूँ। शाकल्य– इस पूर्व दिशा में तुम किस देवता से युक्त हो? याज्ञवल्क्य – पूर्व दिशा में मैं आदित्य देवता से युक्त हूँ। शाकल्य, वह आदित्य किसमें

प्रतिष्ठित है। याज्ञवल्क्य– नेत्रों में। शाकल्य– नेत्र किसमे प्रतिष्ठित हैं? याज्ञवल्क्य– रुपो मे पुरुष नेत्र से ही रुपो को देखता है। शाकल्य– रुप किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय में, क्योकि पुरुष हृदय में ही रुपों को जानता है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।

शाकल्य– इस दक्षिण दिशा में तुम किस देवता वाले हो? याज्ञवल्क्य– यम देवता वाला हूँ। शाकल्य– यम देवता किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– यज्ञ मे। शाकल्य– यज्ञ किसमें प्रतिष्ठित है। याज्ञवल्क्य– दक्षिण में। शाकल्य–दक्षिणा किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– श्रद्धा मे। शाकल्य– श्रद्धा किसमे प्रतिष्ठित है? हृदय में, क्योंकि हृदय से ही पुरुष श्रद्धा को जानता है। याज्ञवल्क्य ने कहा। इस पर शाकल्य ने ऐसा ही है, कहा।

शाकल्य– इस पश्चिम दिशा में तुम किस देवता वाले हो। याज्ञवल्क्य– वरुण देवता वाला हूँ। शाकल्य– वरुण देवता किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– जल मे। शाकल्य– जल किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– वीर्य में। शाकल्य– वीर्य किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय में, इसी से पिता के अनुरुप उत्पन्न हुए पुत्र को लोग

कहते हैं कि मानों यह पिता के हृदय से ही निकला है, क्योंकि हृदय में वीर्य स्थित रहता है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।

शाकल्य– इस उत्तर दिशा में तुम किस देवता वाले हो? याज्ञवल्क्य– सोमदेवता वाला हूँ। शाकल्य– सोमदेवता किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– दीक्षा मे। शाकल्य– दीक्षा किसमें प्रतिष्ठित है? शाकल्य– सत्य में— इसी सो दीक्षित पुरुष को सव्यबदन के लिए आदेश दिया जाता है।शाकल्य– सत्य किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय

में। क्योंकि पुरुष हृदय से ही सत्य को जानता है।शाकल्य– यह बात ऐसी ही है याज्ञवल्क्य।

शाकल्य– इस ध्रुवा दिशा मे तुम किस देवता वाले हो याज्ञवल्क्य ! याज्ञवल्क्य– अग्नि देवता वाला हूँ। शाकल्य– वह अग्नि किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय मे। शाकल्य– हृदय किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– अहल्लिक ! (प्रेता) जिस समय तुम इसे अलग मानते हो उस समय यदि यह हम से अलग होा जाय तो इसे कुत्ते खा जाये। अथवा इसे पक्षी चोंच मार कर मार डालें।

शाकल्य– तुम (शरीर) और आत्मा (हृदय) किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– प्राण मे। शाकल्य– प्राण किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– अपान में। शाकल्य– अपान किसमें प्रतिष्ठित है? व्यान में — याज्ञवल्क्य ने कहा। व्यान किसमें प्रतिष्ठित है? शाकल्य ने पूंछा। याज्ञवल्क्य– उदान में। शाकल्य – उदान किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– समान में, जिसका नेति, नेति कह कर उपदेश किया गया है, वह आत्मा अगृह्य है अशीर्य है, असग है, असित है। ये आठ आयतन है, आठ लोक हैं, आठ देव हैं, आठ पुरुष हैं। वह जो इन पुरुषो को निश्चय पूर्वक जानकर उनका अपने हृदय में उपसहार करके औपाधिक धर्मों का अतिक्रमण किये हुए है, उस औपनिषद पुरुष को मै पूंछता हू, यदि तुम मुझे स्पष्ट रुप से न बतला सकोगे, तो तुम्हारा मस्तक गिर जायेगा। उसका मस्तक गिर गया क्योंकि वह शाकल्यय उस औपनिषद् ब्रह्म को नहीं जानता था। चोर लोग उसके गिरे मस्तक की हड्डियों को और कुछ समझ कर उठा लो गये। फिर याज्ञवल्क्य ने कहा, पूज्य ब्राह्मणों। आपमें से जिसकी इच्छा हो, वह मुझसे प्रश्न करे, अथवा आप सब मुझसे प्रश्न करे। इसी प्रकार आप सब में सो जिसकी इच्छा हो, उससे मैं प्रश्न करता हूं अथवा आप सबसे मैं प्रश्न करता हूं उन ब्राह्मणों का प्रश्न करने का साहस न हुआ । तब याज्ञवल्क्य ने स्वयं कुछ श्लोको द्वारा प्रश्न किया, यह

सत्य है कि पुरुष, वनस्पति, वृक्ष जैसा ही होता है। पुरुष मे त्वक् वल्कल स्थानीय होता है ।।१।। चोट लगने पर त्वक् से रक्त और वल्कल से गोद निकलता है ।।२।। पुरुष शरीर मे मास शर्करा स्थानीय अस्थि दारु स्थनीय है एव मज्जा वृक्ष और पुरुष मे समान रुप से है ।।३।। कन्तु यदि वृक्ष को काट दे तो वह अपने मूल से पुन नवीनतर होकर अंकुरित हो जाता है, लेकिन यदि मनुष्य को मृत्यु काट देता है तो वह किस मूल से अंकुरित होता है ।।४।। वह वीर्य से उत्पन्न होता है, ऐसा तो मत कहो, क्योंकि वीर्य तो जीवित पुरुष से ही उत्पन्न होता है। बीज से उत्पन्न होने वाला वृक्ष भी कट जाने के बाद पुन अकुरित हो उत्पन्न हो उठता है ।।५।। यदि बृक्ष को मूल सहित उखाड दिया जाया तो वह पुनरु उम्पन्न नहीं होगा। इसी प्रकाश्र यदि मृत्यु मनुष्य को मूल से काट दे तो वह किस मूल से उत्पन्न होता है।

२२.जनक : याज्ञवल्क्य (१४/४/१/१)

निरुपाधिक, निरुपारव्य, नेति नेति से निर्देश्य, साक्षात् अपरोक्ष, सर्वान्तिरात्मा, ब्रह्म अक्षर, अन्तर्यामी, प्रशास्ता, औपनिषद पुरुष विज्ञान– आनन्द रुप ब्रह्म है। सूक्ष्माहार करने वाला वैश्वानर, फिर उससे भीा सूक्ष्मतर आहार करने वाला हृदयान्तर्वर्ती लिंगात्मा और फिर उससे भी सूक्ष्म प्राणोपाधिक जगदाता का उपदेश है। फिर रज्जु आदि मे सर्पादि के समान उपाधिभूत जगदात्मा का भी ज्ञान द्वारा लय करके स एष नेति नेति द्वारा साक्षात् सर्वान्तर ब्रह्म का उपदेश किया गया है।

एक ओर विदेह जनक आसन पर बैठा था। तभी याज्ञवल्क्य उसके पास आये। जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य ! कैसे आये? पशुओं की इच्छा से अथवा सूक्ष्म बातों को जताने की इच्छा से? याज्ञवल्क्य– राजन् दोनों के लिए आया हॅं। तुमसे किसी आचार्य ने जो कहा है, उसे हम सुने। जनक ने कहा, जित्वा शैलिनि ने कहा है, वाक् ही ब्रह्म है।

याज्ञवल्क्य– यह तो एक पादवाला ब्रह्म हुआ। वाक् ही उसका आयतन है। आकाश उसकी प्रतिष्ठा है। उसकी प्रज्ञा रुप से उपासना करे। जनक, पज्ञता क्या है? याज्ञवल्क्य– राजन् ! वाक् ही प्रज्ञता है। वाक् से ही बन्धु का ज्ञान होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस वेद, इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, इष्ट, हुत, आशित, पायित, यह लोक परलोक और समस्त भूत वाक् से ही जाने जाते हैं। वाक् ही परब्रह्म है। वाक्ब्रह्म के उपासक को वाक् नहीं छोड़ती है। उसे सारे प्राणी मिलउपहार देते हैं। वह देवरुप होकर देवों को प्राप्त होता है। वैदेह जनक ने कहा, मैं तुमको हस्तितुल्य बछडो से युक्त सहस्र गाये देता हॅं। याज्ञवल्क्य ने कहा, राजन् मेरे पिता का आदेश था कि शिष्य को उपदेश से कृतार्थ किये बिना उसका धन लेना नहीं चाहिए। जनक ने कहा, उपङ्ग शौल्वायन ने मुझसे कहा, प्राण ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य ने कहा, यह तो एक पाद् ब्रह्म है। प्राण ही उसका आयतन है, आकाश प्रतिष्ठा है। उसकी प्रिय रुप से उपासना करे। जनक, प्रियता क्या है? याज्ञवल्क्य– सम्राट ! प्राण ही प्रियता है, प्राण के लिए ही अयाज्य से यजा करते हैं। प्रतिग्रह न लेने योग्य से प्रतिग्रह लेते हैं तथा जिस दिशा मे जाते हैं उसके वध ही की आशंका करते हैं। सम्राट ! यह प्राश्ण ही परम ब्रह्म है। प्राणब्रह्म के उपासक को प्राण नहीं छोडता। उसे सभी भूत उपहार देते हैं। वह देव होकर देवों को प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं हस्तितुल्य बछडों वाली सहस्र गायें तुम्हें देता हूं। याज्ञवल्क्य – किन्तु राजन्। मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को उपदेश के द्वारा कृतार्थ किये बिना उसका धन नहीं लेना चाहिए।

जनक, वर्कुवार्ष्णि ने मुझसे कहा है, चक्षु ही ब्रह्म है। सम्राट यह तो एक पाद ब्रह्म है, याज्ञवल्क्य ने कहा, चक्षु ही उसका आयतन है, आकाश प्रतिष्ठा है, इसकी

सत्य रुप से उपासना करे। जनक, सत्यता क्या है? चक्षु ही सत्य है। चक्षु ही परब्रह्म है। चक्षुपरब्रह्म के उपासक का चक्षु परित्याग नहीं करता है। सब भूत उसको उपहार देते हैं। वह देव होकर देवों कोा प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं आपको हस्तितुल्य बछडों से युक्त सहस्र गायें देता हू। याज्ञवल्क्य – किन्तु राजन्। मेरे पिता का विचार था कि बिना शिष्य को संतुष्ट किये उसका धन नहीं लेना चाहिए।

जनक, भारद्वाज ने मुझसे कहा है, श्रोत्र ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य ने कहा, राजन्। यह तो एक पाद ब्रह्म है। श्रोत्र ही उसका आयतन है। आकाश प्रतिष्ठा है तथा इसकी अनन्त रुप से उपासना करें। जनक, अनन्तता क्या है? याज्ञवल्क्यै– दिशायें ही अनन्तता हैं। कोई भी जिस दिशा को जाता है, उसका अन्त नहीं हो पाता क्योकि दिशायें अनन्त हैं। दिशायें ही श्रोत्र हैं। श्रोत्र ही परमब्रह्म है। श्रोत्र ब्रह्म के उपासक को श्रोत्र नहीं छोडता। सभी भूत उसे उपहार देते हैं, वह देव होकर देवों को प्राप्त हो जाता है। जनक– मै। आपको हस्तितुल्य बछडों वाली सहस्र गायें देता हूँ। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को कृतार्थ किये बिना उसका धन नहीं लेना चाहिए।

जनक– सत्यकाम जाबाल ने मुझसे कहा है, मन ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य– मन तो उसका आयतन है आकाश प्रतिष्ठा है। इसकी आनन्द रुप से उपासना करें। जनक – आनन्दता क्या है? याज्ञवल्क्य– मन ही आनन्दता है, मन से ही पुरुष स्त्री की कामना करता है। इसमें अजुरुप पुत्र उत्पन्न होता है, वह आनन्द है, मन ही परमब्रह्म है। मनब्रह्म के उपासक को मन नहीं छोडता। सभी भूत उसे उपहार देते हैं। वह देव होकर देवों को प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं आपको हस्तितुल्य बछड़ों से युक्त १००० गायें देता हूं। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि बिना शिष्य को संतुष्ट किये उसका धन नहीं लेना चाहिए।

जनक– विदग्ध शाकल्य ने मुझसे कहा है, हृदय ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य– यह एक पाद ब्रह्म है, हृदय उसका आयतन है। आकाश प्रतिष्ठा है। इसकी स्थिति रुप से उपासना करें। जनक– स्थिति क्या है? याज्ञवल्क्य– हृदय ही स्थितता है हृदय ही समस्त भूतों का आयतन है, प्रतिष्ठा है। हृदय ही परम ब्रह्म है। हृदय के उपासक को हृदय नहीं छोडता। सब भूत उसे उपहार देते हैं। वह देव होकर देवो को प्राप्त हो जाता है। जनक – मैं हाथी के समान बडे बछडों से युक्त १००० गाये तुम्हे देता हूँ। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को उपदेश द्वारा कृतार्थ किये बिना उसका धन नहीं लेना चाहिए।

तब जनक ने कूर्चासन से उठकर याज्ञवल्क्य के समीप जाते हुए कहा, याज्ञवल्क्य आपको नमस्कार है। मुझे उपदेश दीजिए। याज्ञ०– राजन्! जिस प्रकार लम्बे मार्ग को जाने वाला पुरुष सम्यक् रूप से रथ या नौका का सहारा ले, वैसे ही तू इन उपनिषदो से युक्त प्राणादि ब्रह्म की उपासना कर समादितचित् हो गया है। इस प्रकार तू पूज्य, श्रीमान्, एवं उपनिषद्मय हो गया है। इतना होने पर भी तू इस शरीर से छूटकर कहां जायेगा? जनक– भगवन्! मैं कहा जाऊँगा, यह मुझे ज्ञात नही है। याज्ञ०– अब मैं तुझे बताऊंगा। जनक– भगवन् आप मुझे बताये।

याज्ञ०– यह जो दक्षिण नेत्र में पुरुष है उसे इन्द्र कहते हैं। यह जो बायें नेत्र में पुरुष है, वह इसकी पत्नी विराट् है। हृदयाकाश इन दोनों का संस्ताव (मिलन स्थान) है। हृदयान्तर्गत लोहित पिण्ड इन दोनो का खाद्यान्न है। हृदयान्तर्गत जालतुल्य वस्तु इन दोनों का प्रावरण है। हृदयोर्ध्वगामिनी नाड़ी इन दोनों का संचरण मार्ग है। सहस्रधा विभक्त केश राशि की तरह ये हिता नाड़ियां हृदय में स्थित है। इन्हीं के द्वारा अन्न शरीर में जाता है। अतः स्थूल शरीराभिमानी वैश्वानर की अपेक्षा सूक्ष्म देहाभिमानी तेजस सूक्ष्मतर आहार ग्रहण करने वाला है। प्राणाभाव को प्राप्त हुए विद्वान के पूर्वादिक् दक्षिण

दिक्, प्रतीचीदिक् उत्तरादिक्, उदक्प्राण, ऊर्ध्वादिक ऊर्ध्वा प्राण, अवाचीदिक् अवाक् प्राण और सर्वादिक् सर्वप्राण है। वह नेति नेति से उपदिष्ट आत्मा अग्रहणीय, अर्शीय, असंख्य, अबद्ध और अक्षय्य है। हे जनक! तू निश्चय ही अभय को प्राप्त हो गया है। जनक ने कहा, भगवन्! आपने मुझे अभय ब्रह्म का ज्ञान कराया है। आपको अभय प्राप्त हो। आपको नमस्कार है। यह विदेह देश और मे आपके अधीन है।

२३. जनक और याज्ञवल्क्य (१४/४/३/१)

विदेहराज जनक के पास याज्ञवल्क्य गये। जनक ने निश्चय किया था कि मैं कुछ भी उपदेश न करूगा। किन्तु पहले कभी जनक और याज्ञवल्क्य में अग्निहोत्र के विषय मे कुछ सवाद हो चुका था। उस समय याज्ञवल्क्य ने उसे वर दिया था, और उसने इच्छानुसार प्रश्न करना ही वर मे मांगा था। अत पहले राजा ने ही प्रश्न किया, याज्ञवल्क्य! यह पुरूष किस ज्योतिवाला है। याज्ञ०— सम्राट! यह आदित्यरूप ज्योतिवाला है। यह आदित्य रूप ज्योति से ही बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक याज्ञ०— ठीक है। आदित्य के अस्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०— उस समय चन्द्रमा ही उसकी ज्योति होता है। चन्द्रमा रूप ज्योति के द्वारा ही यह बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक, ठीक है, आदित्य और चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०— अग्नि ही इसकी ज्योति होती है यह अग्निरूप ज्योति के द्वारा ही बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक, ठीक है, आदित्य और चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर और अग्नि के बुझ जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञवल्क्य, वाक् रूप ज्योति वाला। आदित्य चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर अग्नि के शान्त हो जाने पर यह पुरूष

वाक् ज्योति वाला होता है, क्योंकि वाक् तब भी वर्तमान रहती है। जनक– वाक् के भी शान्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०– आत्म ज्योतिवाला। जनक, आत्मा क्या है? याज्ञ०– यह जो प्राणो बुद्धिवृत्तियो के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिःस्वरूप पुरूष है वह समान बुद्धिवृत्तियों के सदृश हुआ इस लोक और परलोक में सचरणकरता है। वह बुद्धि वृत्ति के अनुसार मानो चिन्तन करता है और प्राणवृत्ति के अनुरूप होकर चेष्टा करता है, वही स्वप्न होकर उस लोक देहेन्द्रिय सघात का अतिक्रमण करता हैं। शरीर तथा इन्द्रिय रूप मृत्यु के रूपो का भी अतिक्रमण करता है। वह यह पुरूष जन्म लेते समय शरीर को आत्म भाव से प्राप्त होता हुआ पापों से देह और इन्द्रियों से संश्लिष्ट हो जाता है। मरते समय पापो को त्याग देता है। पुरूष के दो ही स्थान हैं। १– एतद्लोक संबंधी। २– परलोक संबंधी। तीसरा स्वप्न सबंधी स्थान सध्यास्थान है। उस सध्या स्थान मे स्थित रहकर यह इस लोक रूप स्थान और परलोक स्थान इन दोनों को देखता है। यह पुरूष परलोक स्थान के लिए जैसे साधन से सम्पन्न होता है, उस साधन का आश्रय लेकर यह पाप और आनन्द दोनों को ही देखता हैं

२४. उद्दालक, श्वेतकेतु और प्रवाहण जैबल (१४/६/२/१)

केवल कर्म से पितृलोक और ज्ञान संयुक्त कर्म से देव–लोक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्मफलभोग के दो मार्ग हैं। यही सम्पूर्णसंसार की गति का उपसंहार है। यहां पर पितृयान और देवयान का विवेचन कर देवयान की साधन स्वरूपा पचाग्नि विधा का निरूपण है।

आरूणेय श्वेतकेतु पांचालों की परिषद् में पहुंचा। यह जैबल प्रवाहण के समीप गया जो कि परिचर्या कर रहा था। उसे देखकर प्रवाहण ने कहा, कुमार वह बोला भौः।

प्रवाहण ने पूछा, क्या तेरे पिता ने तुझे शिक्षा दी हैं तब श्वेतकेतु बोला, हा। तब प्रवाहण ने छ प्रश्न किये।

प्रजायें किस प्रकार से मरने पर विभिन्न मार्गो से जाती हैं। पुनः पुन बहुतों के पर जाने मर भी वह लोक क्यों नहीं मरता? कितनी बार आहुतियों के करने पर आप पुरूष शब्द वाच्य होकर उठता है और बोलने लगता है? क्या तू देवयान का अथवा पितृयान का कर्मरूप साधन जानता हू?– श्वेतकेतु ने हर बार नकारात्मक उत्तर ही दिया।

उसके अनन्तर राजा ने श्वेतकेतु से ठहरने के लिए प्रार्थना किया। किन्तु कुमार ठहरने की चिन्ता न करके चल दिया। वह अपने पिता के पास आया और कहा, आपने यही कहा था न कि आपने मुझे सब विषयों की शिक्षा देदी है। पिता ने कहा, सुमेध! क्या हुआ? श्वेत० मुझसे एक राजन्य बन्धु ने पांच प्रश्न किये उनमें से मैं एक का भी उत्तर न दे सका। उद्दालक, वे प्रश्न कौन थे? श्वेतकेतु ने कहा सुनाया। उद्दालक, पुत्र तू ऐसा समझा कि मैं जो कुछ जानता था सो सब कुछ मैंने तुमसे कह सुनाया था। अब हम दोनों वहीं चलें और ब्रह्मचर्य पूर्वक उसके यहां निवास करे। श्वेत० ने कहा, आप ही जायं। तब वह उद्दालक प्रवाहण की परिषद् में गया। उसके लिए राजन ने आसन लगवाकर अहर्य दिया फिर कहा, मैं पूज्य गौतम को वर देता हूं। उद्दालक ने कहा, आपने जो वर देने की प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार आपने कुमार से जो प्रश्न किया है, वह मुझसे कहें। प्रवाहण– तुम शास्त्रौत उसे पाने की इच्छा न करो। उद्दालक– मैं आपके पास शिष्य भाव से उपासना में हूँ। प्र०– गौतम! आपने पितामहों की भाांति तुम मेरा अपराध न समझना। इससे पूर्व यह विद्या किसी ब्राह्मण के पास नहीं थी। उसमें तुझ ब्राह्मण के प्रति कहता हूं। इस प्रकार सविनय बोलने वाले तुमको निषेध करने में कौन समर्थ हो सकता है।

गौतम! द्युलोक अक्षि है। आदित्य उसका समिध, किरणें घूम दिन ज्वाला, दिशायें, अंगार और अबान्तर दिशाये चिनगारियां हैं। उस अग्नि मे देवगण श्रद्धा से हवन करते हैं, जिससे सोम राजा होता है। मेघ अग्नि है संवत्सर उसका समिध, अंम्र, धूम, विद्युत ज्वाला, अशनि, अंगार और मेघगर्जन चिनगारियां हैं। उस अग्नि मे देवगण सोमराजा को हवन करते हैं।उससे वृष्टि होती है। यह लोक अग्नि है। पृथिवी उसका समिधा, अग्नि धूम, रात्रि, ज्वाला, चन्द्रमा अंगार और नक्षत्र चिनगारिया होती हैं। इस अग्नि मे देवगण वीर्य का हवन करते हुए पुरूष की उत्पत्ति करते हैं। वह जीवित रहता है। जब तक कर्म शेष रहते हैं, वह जीवित रहता है और जब वह मरता है तो उसे अग्नि के पास ले जाते हैं। उसका अग्नि ही अग्नि होता है, समिध, समिधा होती है, ज्वाला ज्वाला होती है, अंगार अंगारे होते हैं। चिनगारिया चिनानारिया होती हैं। जो गृहस्थ पंचाग्नि को जानते हैं तथा जो बन में श्रद्धायुक्त होकर सत्य की उपासना करते हैं। वे ज्योति के अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। ज्योति के अभिमानी देवो से दिन के अभिमानी देवता को उससे देवलोक को, देवलोक से आदित्य लोक को और आदित्य से विद्युत संबंधी देवताओं को प्राप्त होते हैं। उन वैद्युत देवों के पास एक मानस पुरूष आकर इन्हें ब्रह्मलोको मे ले जाता है। वे उन लोकों में अनन्त संवत्सर पर्यन्त रहते हैं। उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती।

जो यज्ञ, दान, तप करके लोको को जीतते हैं वे धूम को प्राप्त होते हैं। धूम से रात्रि देवता को और इसी प्रकार क्रमशः अपदायिमात्र पक्ष, दक्षिणयन, पितृलोक, चन्द्रमा के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। जब उनके कर्मक्षीण हो जाते हैं। देवगण उनका भक्षण करते हैं। जब उनके कर्मक्षीण हो जाते हैं तो वे आकाश को प्राप्त होते हैं। आकाश से वायु को, वायु से वृष्टि को, वृष्टि से पृथिवी को प्राप्त हो जाते हैं। पृथिवी को प्राप्त होकर वे अन्न बन जाते हैं। फिर वे पुरूष रूपाग्नि में हवन कये जाते हैं।

उससे वे लोक के प्रति उत्थान करने वाले होकर स्त्री रूपाग्नि में उत्पन्न होते हैं। वे इसी प्रकार पुनः पुन परिवर्तित होते रहते हैं, और जो इन दोनो मार्गों को नहीं जानते, वे कीट, पतंग, डास, और मच्छर आदि होते हैं।

आलोचना और निष्कर्ष

शतपथब्राह्मण मे उपलब्ध ये ब्रह्मोध–कथाएं वैदिक चिन्ताधारा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मोड प्रस्तुत करती हैं– एक ऐसा मोड जिसने आगे चलकर उपनिषदो के गम्भीर दार्शनिक चिन्तन को जन्म दिया। ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के हेतु किये जाने वाला यज्ञीय कर्मकाण्ड किस प्रकार आध्यात्मिक चिन्तन की आधार–भूमि बन गया इसके रोचक संकेत इन कथाओं में मिल जाते हैं। इस प्रकार ये कथायें भारतीय दार्शनिक चिन्तन के विकास के अध्येताओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और आस्तिक भारतीय दर्शन के उत्स के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

इन कथाओं ने जिस प्रकार के वातावरण में जन्म लिया, वह निःसन्देह संहिता के मन्त्र–द्रष्टा ऋषियो के वातावरण से सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी दृष्टियो से बहुत भिन्न और विकास की एक सुदीर्घ परम्परा के द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। सहिता के मन्त्र–दृष्टा ऋषियो ने मुख्यतः युद्ध के वातावरण में, जहां आर्य–जन एक और दास–दस्युओ से भिडे हैं और दूसरी ओर पारस्परिक स्पर्धा में संलग्न हैं, स्वत. स्फूर्त सूक्तों द्वारा इन्द्र आदि देवों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। तब आर्य–जन छोटे–छोटे कबीलो में विभक्त थे, वर्ण–व्यवस्था बदमूल न हुयी थी, सप्त–सिन्धु प्रदेश आर्य–जनो की गतिविधियों का केन्द्र था, और भरत–जन अभी विपाशा और शुतुद्रि को पार कर आगे बढने की चेष्टा कर रहे थे। इसके विपरीत इन ब्रह्मोद्य–कथाओं मे झलकते आर्य–जनों के विशाल राज्य पूर्व में काशी, कौशल और

विदेह क्षेत्र बन गया है, अब युद्धों में शास्त्रों के घात–प्रतिघात से उत्पन्न तुमुल नाद सुनायी नहीं पडता। चारो ओर शान्ति और समृद्धि का वातावरण दिखायी देता है। स्वभावत इस प्रकार के वातावरण मे सप्त–सिन्धु प्रदेश मे विजेयषण से प्रेरित सरल कर्मकाण्ड, आमुष्मिक ऐहिक तथा कल्याण कामनाओं की विविधता के अनुरूप बहु–विस्तृत हो गया है। यज्ञ–सस्था विकसित होकर विशाल वट–वृक्ष जैसा रूप अपना चुकी है, जिसके साथ–साथ किन्हीं परिवारों में पौरोहित्य की परम्परा प्रतिष्ठित हो चुकी है, और इन पुरोहित परिवारों में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का भाव खूब पनप उठा है। यदि कुठ–पांचाल के आरूणि उद्दालक उदीच्य में किसी यज्ञ में ब्रह्मा के रूप में आमन्त्रित होते है, तो औदीच्य ब्राह्मण भड़क उठते हैं और उद्दालक के साथ शास्त्रार्थ पर उतर पडते हैं[1]।

परन्तु ब्राह्मण वर्ग की इस पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के बीच भी उनकी सत्य निष्ठा अक्षुण्ण है। दूसरे पक्ष को अपने से अधिक अनूचान स्वीकार करने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती। औदिच्य स्वेदायन शौनक के प्रश्न सुनकर आरूणि उद्दालक ने उसके अध्ययन की श्रेष्ठता सहज भाव से स्वीकार कर ली[2]। तत्कालीन बुद्धि–जीवी वर्ग की इस सतयनिष्ठा को ही परिणाम था कि भारतीय चिन्तन इतनी उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित हो सका।

पुरोहित वर्ग जहा कर्मकाण्ड के प्रसार में उलझा हुआ था, और उसका सारा ध्यान इसी चिन्ता में लगा था कि यज्ञ के विधि–विधान में किसी प्रकार की त्रुटि न होने पाए, वहां क्षत्रिय यजमान को स्थूल कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर आध्यात्मिक चिन्तन का पर्याप्त अवसर मिल रहा था। कुरूपांचाल नरेश प्रवाहण जैवलि, का शिराज

---

[1] शत ब्रा २/७/१

[2] वही

अजातशत्रु और विदेह सम्राट् जनक आध्यात्मिक चिन्तन में बहुत आगे बढ चुके थे। राजन्य–वर्ग में पल्लवित होती इस आध्यात्मिक–चिन्ता–धारा से ब्राह्मण–वर्ग भी अधिक समय तक सम्पर्कित न रह सका। ब्राह्मण–वर्ग ने बडे विनीत भाव से आध्यात्म–चिन्तन–प्रवण क्षत्रियो के पास पहुंच कर ज्ञान की इस अभिनव दिशा का परिचय प्राप्त किया। और फिर स्वय भी इसको इतनी गहराई और सूक्ष्मता प्रदान की कि बाद में क्षत्रिय–वर्ग भी इस ज्ञान के लिए उनके सामने नतमस्तक हुआ। याज्ञवल्क्य अध्यात्म–ज्ञान में भी विदेह–सम्राट् जनक के गुरू बन गये।

कुछ विद्वानों ने ब्राह्मणो को क्षत्रियों से अध्यात्म–ज्ञान प्राप्त करने की कथाओ के आधार पर ब्राह्मण–क्षत्रियो में वर्ग संघर्ष की कल्पना करती हैं[1]। परन्तु यदि इन ब्रह्मोद्य कथाओं को ध्यान से देखा जाए तो इनमें वर्ग–संघर्ष की किंचित भी गन्ध नहीं मिलती। प्रारम्भ में ब्राह्मणों ने विनीत भाव से ही क्षत्रियों से यह ज्ञान प्राप्त किया। क्षत्रियो को भी ज्ञान के वितरण में किसी प्रकार की हिचक न हुयी और जब स्वय ब्राह्मणो ने इस अध्यात्म चिन्तन को और भी अधिक विकसित कर लिया तो न तो क्षत्रिय–वर्ग के साथ उनकी प्रतिस्पर्धा के कोई सकेत मिलते हैं, और न क्षत्रिय वर्ग स उन्होंने इस ज्ञान को छिपाया ही।

यज्ञीय कर्मकाण्ड के बीच आध्यात्मिक चिन्तन किस प्रकार अंकुरित हो रहा था, इसके अनेक रोचक उदाहरण इन कथाओ मे मिलते हैं। आरूणेय श्वेतकेतु ने वैश्वावसव्य को होता चुना। श्वेतकेतु के पिता ने वैश्वावसव्य के ज्ञान की परीक्षा के लिए जो प्रश्न किए और उनके जो उत्तर दिये गये[2] वे भले ही आज की तर्कबुद्धि का परितोष न कर पाये पर उनमें इतना तो स्पष्ट होता ही है कि वैदिक मनीषियों का

---

[1] शत०ब्रा० १०/३/४/१

[2] शत०ब्रा० १०/३/३/१–८

ध्यान यज्ञ के स्थूल कर्मकाण्ड मे निहित किसी रहस्यात्मक तत्त्व की खोज मे लग गया है। इस चेष्टा के फलस्वरूप यज्ञ की आधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक व्यख्या प्रस्तुत करनें की वेष्टा करनने लगी है। अतः यज्ञ की समस्त प्रक्रियाएं प्राकृतिक नियमो के अनुरूप हैं,[1] इसी विचार को चरम परिणति यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त मे हुयी,[2] जिसने भारतीय चिन्तधारा को अत्यधिक प्रभावित किया और योग–साधना के लिए ठोस आधार प्रस्तुत किया।

यज्ञ की अध्यात्म–परक व्याख्या इन ब्रह्मोधों में बार–बार उभरी हैं,[3] और इसी तत्कालीन चिन्ता–धारा को एक ऐसा मोड दे दिया जिसने बाद मे उस औपनिषदिक ब्रह्म तक पहुंचा दिया। इस चिन्तधारा के साथ चलते–चलते वैदिक मनीषी ब्रह्माण्ड में सर्वानुस्यूत एक तत्व तक पहुंच गये है, कही उस तत्व को उन्होने अग्नि के रूप में पहचाना[4] तो कहीं वैश्वानर[5] के रूप में। इस चिन्तन का परिपक्व फल इन ब्रह्मीय–कथाओं में याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–संवाद[6] के रूप में प्रकट हुआ है, जिसमें आत्मा को ही सब कुछ बता कर उसी के दर्शन, मनन निदिध्यासन का उपदेश किया गया है। यह याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–संवाद कर्मकाण्ड–पाक–चिन्तन तथा औपनिषदिक रहस्यात्मक–चिन्तन को जोडने वाली वह कडी है, जो वैदिक विचार–धारा के अखण्डित सतत–प्रवाह का प्रमाण है।

इन ब्रह्मोद्य–कथाओ में से वरुण और भृगु के ब्रह्मोद्य मे हमें प्रथम बार पुनर्जन्मवाद के दर्शन होते हैं। पूर्वजन्म में जो, जिसके प्रति जैसा व्यवहार करता है,

---

[1] शत०ब्रा० ११/२/७/१
[2] शत०ब्रा० १४/६/१/१
[3] शत०ब्रा० १४/२/४/१/. १४/३/४/१, १४/६/५/१, १४/६/६/१, १४/६/७/१, १४/६/८/१, १४/६/६/१, १४/४/५/१, आदि।
[4] शत०ब्रा० १०/३/३/१–८
[5] शत०ब्रा० १०/६/१/१
[6] शत०ब्रा० १४/२/४/१, १४/४/५/१

अगले जन्म में उसके हाथों उसे वैसा ही व्यवहार सहन करना पडता है, भारतीय कर्मवाद का यह सिद्धान्त सर्वप्रथम इस ब्रह्मोद्य में प्रकट हुआ। और फिर इसकी भी कर्मकाण्डपरक व्याख्या प्रस्तुत कर यह निश्चित सकेत कर दिया गया है कि इस विचारधारा को भी, वह चाहे किसी भी स्रोत से आयी हो, वैदिक मनीषियो ने अपनी यज्ञ–परायण विचारधारा मे समाहित कर लिया है। इसी प्रकार मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है? नरक क्या है? वहां कैसी दशा रहती है? आदि प्रश्न भी इन ब्रह्मोद्य कथाओ मे उभरने लगे हैं।[१]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय– चिन्तन के विकास को समझने के लिये ये ब्रह्मोद्य–कथाएं महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं और भारतीय चिन्तन–धारा के प्रवाह की अविच्छिन्नता प्रमाणित करती है।

---

[१] शत०ब्रा० १४/६/२/१

चतुर्थ अध्याय

बृहद्देवता में वर्णित कथाएँ

वृहद्देवता में वर्णित कथाएँ

१.दिव्य, त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा[1]

त्वष्टा शब्द की व्युत्पत्ति त्विष् अथवा त्वक्ष धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– "शीघ्रता पूर्वक प्राप्त करना"[2] अथवा कर्मों में सहायता करना।

त्वष्टा को अग्नि कहा गया है। चन्द्रमा में आश्रित सूर्य की सहस्र रश्मियों तथा पृथिवी एवं उसके ऊपर विद्यमान मधु को त्वष्टा में निहित बतलाया गया है।

चन्द्रमा में स्थित दिव्य सोम के रक्षक के रूप में त्वष्टा ही माने जाते हैं। सोम की रक्षा में अग्नि भी तत्पर रहते हैं।

पुराकथाशास्त्र में यह वर्णन मिलता है कि "जब देवों द्वारा सोम का पान कर लिए जाने के कारण चन्द्रमा क्षीण होने लगा उस समय सूर्य ने उसे पुनः सम्वर्धित किया था।"

अर्थवान् के पुत्र दध्यञ्च पर इन्द्र भली प्रकार प्रसन्न होकर एक अभिचारिक प्रयोग "ब्रह्म" प्रदान किया, जिससे दध्यञ्च ऋषि और भी दीप्तिमान हो गये।

इन्द्र ने ऋषि को मना करते हुए कहा–" इस प्रकार उद्घाटित मधु की कहीं भी चर्चा मत करना, क्योंकि यदि इस मधु की कथा फैल गयी तो मैं तुम्हें जीवित नहीं रहने दूँगा।"

इतना सुनने के बाद दिव्य अश्विनों ने ऋषि से गुप्त रूप से मधु की याचना की। उनके द्वारा याचना करने पर परम दयालु ऋषि ने शचीपति इन्द्र के द्वारा कही गयी बातों को बता दिया, तत्पश्चात नासत्यों ने कहा कि आप हम दोनों को

---

[1]. वृहददेवता, ३/१६–२५

[2]– नि० ८/१३–त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नेरूक्ताः त्विषेर्वास्यात्। दीप्तिकर्मण। त्वक्षतेर्वास्यात्। करोतिकर्मणः।

शीघ्रतापूर्वक अश्व का सिर धारण करके मधु ग्रहण करायें, इससे इन्द्र अपका वध नहीं कर पायेंगे।

चूँकि अश्व सिर के रूप में दध्यञ्च अश्विनद्वय को रहस्य बता दिया था, अतः इन्द्र ने उसके उस शिर को पृथक कर दिया। इन्द्र द्वारा सिर पृथक करने के बाद अश्विनों ने उसके शिर को पुनःस्थापित कर दिया।

दध्यञ्च अश्व शिर इन्द्र द्वारा अपने वज्र से पृथक कर दिया जाने के पश्चात शर्यणावत् पर्वत पर स्थित एक सरोवर में गिर पड़ा। उस समय से वह जलों के ऊपर उठकर तथा जीवित प्राणियों को विविध वरदान देते हुए युगपर्यन्त उन्हीं जलो में डूबा रहता है।

मध्यम स्थानीय[1] गण के अन्तर्गत आने वाला त्वष्टा रूपों का निर्माता[2] माना गया है। मंत्रों में इसकी नेपातिक स्तुति ही की गयी।

२—ऋभुओं और त्वष्टा की कथा[3]

अङ्गिरस के पुत्र सुधन्वन् के ऋभु, विश्वान् और वाज तीन पुत्र हुए। ये तीनों त्वष्टा के शिष्य कहे गये हैं।

त्वष्टा नें इन्हें अपनी समस्त ज्ञात कलाओं की शिक्षा प्रदान किया जिससे ये लोग भी इन शिक्षाओं में पारंगत हो गये।

एक बार विश्वेदेवों नें जो स्वयं भी समस्त कलाओं में प्रवीण थे, इन्हें चुनौती दी। तत्पश्चात् सुधन्वन् के पुत्रों नें विश्वेदेवों के लिए विभिन्न वाहनों का निर्माण किया। इनसे सर्वदुधा नामक गाय उत्पन्न की गई। इन लोगों नें अश्विनों के लिए

[1] – नि० ८/१४ " माध्यमिकस्त्वष्टेत्याहुः। मध्यमें च स्थाने समाम्नातः।

[2] – ऋग्वेद मे त्वष्टा को प्रायः रूपों का निर्माता तथा तेत्तिरीयसहिता में "रूपकृत" कहा गया है।

[3] वृह०, ३५८३ ८८

तीन आसनों वाले दिव्यरूप रथ को बनाया तथा इन्द्र के लिए दो अश्वों को उत्पन्न किया। देवों के द्वारा भेजे गये अग्नि के माध्यम से भी इन्होंने अपने कौशल प्रदर्शन किया।

अग्नि के द्वारा एक चमस् को चार भाग में विभक्त करनें की बात कहे जानें पर सुधन्वन् के पुत्रों ने स्वर्गलोक में परस्पर विचार–विमर्श करने के पश्चात उनके कथन से हर्षित होकर चार चमसों (प्यालों) का निर्माण कर दिया और त्वष्टा सविता तथा प्रजापति नें समस्त देवों को आमन्त्रित करके ऋभुओं को अमरत्व प्रदान किया।[१]

तृतीय सवन मे विश्वेदेवों के साथ इनके भाग का भी निर्धारण किया गया है और इन्द्र नें उस सवन के समय ऋभुओं के साथ सोमपान किया।[२]

३.दीर्घतमस् के जन्म की कथा[३]

उचथ्य और वृहस्पति नाम के दो सहोदर ऋषि पुत्र थे। उचथ्य की पत्नी का नाम ममता था, जो भृगुवंशी थी।

उचथ्य और वृहस्पति दोनों में कनिष्ठ वृहस्पति ममता के पास मैथुन के लिये गये। ममता के गर्भ में पहले से विद्यमान शिशु नें उनके शुक्रोत्सर्ग के समय कहा, "चूँकि पहले से ही मैं यहाँ सम्भूत हूँ, अतः तुम शुक्र को संकर करनें का काम मत करो।" ऐसा कहनें पर भी वृहस्पति शुक्र सम्बन्धी इस अवरोध को सहन न कर सके।

तत्पश्चात् उन्होंने गर्भ को सम्बोधित करते हुए कहा – तुम दीर्घतमस्वी

---

[१] ऋ० स०, ४ ३३ ३–४
[२] तदेव, १.२० ८
[३] वृहद्देवता, ४/११–१५,२१–२५

होवो। इसलिए उपथ्य के पुत्र का नाम दीर्घतमस् नाम के साथ जन्म हुआ।

ऐसा प्रचलित है कि जन्म लेने के थोडे ही समय पश्चात् अकस्मात् दीर्घतमस् नेत्रहीन हो गये । दीर्घतमस् को नेत्रहीन होने की सूचना मिलते ही सभी देवतागण दुखी हो गये। दुखी होने के पश्चात् सभी देवों नें विचार–विमर्श किया। विचाार विमर्श करनें के पश्चात् उसे नेत्र प्रदान किया गया जिससे उनका अन्धापन दूर हुआ।

एकबार उनके परिचारक खिन्न हो गये और उन अन्धे दीर्घतमस को बॉधकर नदी में फेंक दिया । उन परिचारको मे से त्रेतन नामक एक परिचारक नें दीर्घतमस् पर अपनी तलवार से प्रहार करना चाहा, जैसे ही प्रहार करनें की इच्छा प्रकट हुई वह दीर्घतमस् पर प्रहार न करके स्वयं अपनें ही सिर स्कन्ध और वक्ष के टुकड़े–टुकडे कर दिये।

महान पाप में लीन उस दास का दीर्घतमस् के द्वारा वध कर दिये जानें के पश्चात् दीर्घतमस् नें नदी के जल में अपनें संज्ञाशून्य अंगों को हिलाया। ऐसा करनें के पश्चात् नदी की तेज धारा नें उन्हें बहाकर अङ्ग देश के निकट पहुँचा दिया।

उशिज् नामक दासी अङ्गराज के गृह में नियुक्त थी। ऐसा कहा जाता है कि राजा नें पुत्र प्राप्ति की इच्छा से इस उशिज् नामक दासी को दीर्धतमस् के पास भेजा। जब महा तेजस्वी दीर्धतमस् जल से बाहर निकले तो देखा कि वह भक्ति भाव में लीन सामनें खडी है। उसे भक्ति भाव में लीन खड़े हुये देखकर दीर्धतमस् नें उससे कक्षीवत् तथा अन्य पुत्रों को उत्पन्न किया।

४. अगस्त्य और लोपामुद्रा की कथा[1]

वृहद्देवता में अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के दाम्पत्य जीवन की कथा मिलती है–

---

[1] वृहद्देवता, ४/५४–६४

किसी समय लोपामुद्रा के द्वारा ऋतु स्नान के पश्चात् अगस्त्य ऋषि नें अपनी उस यशस्विनी पत्नीं से समागम की इच्छा से बातचीत प्रारम्भ की। "पूर्वीः" से शुरू होनें वाली दो ऋचाओं में लोपामुद्रा नें अपना मत व्यक्त किया तत्पश्चात् आनन्द प्राप्त करनें की इच्छा से अगस्त्य नें उसे बाद की दो ऋचाओं से सन्तुष्ट किया।

जिस समय अगस्त्य एवं लोपामुद्रा परस्पर आनन्द प्राप्त करनें की इच्छा व्यक्त कर रहे थे उस समय उनके शिष्य अपनें महान तप के प्रभाव से अगस्त्य एवं लोपामुद्रा की परस्पर आनन्द प्राप्त करनें की इच्छा की सम्पूर्ण स्थिति से अवगत हो गया। सम्पूर्ण स्थिति से अवगत होनें के पश्चात् उसके मन में यह विचार हुआ कि उसनें इन सब बातों को सुनकर एक महान् पाप किया है। अतः पाप से निवृत्त होने के लिए उसनें दो ऋचाओं का गान किया।

उसके ऋचाओं का पाठ करनें पर गुरू अगस्त्य और उनकी पत्नी लोपमुद्रा दोनों नें उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की और आलिंगन करते हुए उसका मस्तक चूमा तत्पश्चात दोनों ने ही उसे आश्वस्त करते हुए कहा– हे पुत्र ! तुम निष्पाप हो।

५.गृत्समद इन्द्र और दैत्यगण की कथा[1]

गृत्समद ने "त्वम्"[2] से आरम्भ ऋचा से अग्नि की स्तुति की है। तत्पश्चात् "यज्ञेन"[3]और "समिद्धो"[4] जातवेदस् को सम्बोधित है। "हुवे"[5] से आरम्भ सात सूक्तों में गृत्समद् नें अग्नि की स्तुति की है।

---

[1] वृहददेवता, ४/६५–७६
[2] ऋग्वद,२/१
[3] तदेव, २/२
[4] तदेव, २/३
[5] तदेव, २४४१०

गृत्समद नें तप के साथ अपना सामंजस्य स्थापित करके इन्द्र के समान विराट शरीर धारण किये हुए वह एक मुहूर्त में ही दिव्यलोक आकाश और पृथ्वी पर प्रकट हुये।

जिस समय गृत्समद् पृथ्वी पर प्रकट हुए उस समय धुनि और चुमुरि नामक पराक्रमी दैत्य उन्हें इन्द्र समझकर उन पर वज्र सहित टूट पड़े। दैत्यों द्वारा आक्रमण किये जाने के पश्चात दोनो के पापपूर्ण भाव को जानकर ऋषि गृत्समद् ने 'योजातएव'। सूक्त द्वारा इन्द्र के कार्यों का गान किया।

जब गृत्समद् ने इन्द्र के कार्यों का गान किया तो उस गान के द्वारा दोनों दैत्यों 'धुनि और चुमुरि' में भय उत्पन्न हो गया। इन्द्र ने यह कहते हुए उन्हें मार गिरायर कि "यह मेंरा अवसर है।" दैत्यों को मार गिराने के पश्चात इन्द्र ने गृत्समद ऋषि से कहा–

"हे मित्र गृत्समद तुम मुझे एक प्रिय के रूप में देखो, क्योंकि तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो गये हो।"

इन्द्र ने गृत्समद् पर प्रसन्न होकर उनसे कहा–"हे गृत्समद! तुम मुझसे कोई एक वर मॉगो। तुम्हारा तप अक्षय हो।' इन्द्र के ऐसा कहने पर गृत्समद नत् मस्तक होकर इन्द्र से बोले–

" हे वक्ताओं मे श्रेष्ठ! हम लोगों को ऐसी शक्ति प्रदान करो जिससे शरीर की सुरक्षा हो सके और हृदयङ.गम हो जाने वाली वाणी की भी सुरक्षा हो सके तथा हमें ऐसी शक्ति दो कि हम वीर बनें और सम्पत्ति से परिपूर्ण हों।"

"हे इन्द्र हम अन्तरात्मा से तुम्हारा ध्यान करते हैं और हम तुम्हें प्रत्येक जन्म में जान लेते है, तुम हमसे दूर मत जाओ, तुम श्रेष्ठ रथी हो।"

गृत्समद् के इस प्रकार वर मांगने पर ऋषि ने इन सबका वर के रूप में वरण किया। यह सुनकर परम विजयी शचीपति इन्द्र ने सहमत होकर ऋषि को अपने दाहिने हाथ से पकड़ लिया। ऐसा करने पर ऋषि ने भी इन्द्र के प्रति मैत्री भाव प्रकट करते हुए उन्हें हाथ से पकड़ लिया।

किसी समय धुनि और चुमुरि नामक दोनों दैत्यों ने साथ–साथ इन्द्र के आवास में प्रवेश किया। वहॉ पुरन्द इन्द्र ने स्वयं गृत्समद् का आदर तथा पूजन किया। अपनी मित्रता के कारण इन्द्र ने ऋषि को पुनः सम्बोधित किया–

"हे ऋषियों में श्रेष्ठ! तुम अपनी स्तुति द्वारा हम लोगो को प्रसन्न करते हो अतः शुनहोत्र के पुत्र होने के कारण तुम्हारा नाम गृत्समद् होगा।

तत्पश्चात श्रुधि से आरम्भ बारह सूक्तो द्वारा ऋषि ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति करते समय गृत्समद् ने वहॉ ब्रह्मणस्पति के दर्शन किये।

६– एक पुत्रिका–पुत्री विश्वामित्र और शक्ति[१]

ऋग्वेद के एक सूक्त में यह उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार पुत्रिका कही जाने वाली **को अपना पुत्री बनाया जाता है** अथवा उसे इस आशय में गर्भित किया जाता है।[२] ऋग्वेद की 'न' ऋचा में पुत्री को उत्तराधिकार देने का निषेध किया गया है।[३] ऋषि ने यह कहा है कि पुत्री से छोटा पुत्र ज्येष्ठ भ्रता के होता है।

एक समय की बात है जब सुदास द्वारा महायज्ञ किया जा रहा था, उस महायज्ञ में शक्ति ने गाधिन पुत्र को घायल करके चेतना रहित कर दिया था। जब वह अपने पुत्र को अचेतन अवस्था में देखकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसे दुःखी

[१] वृददेवता, ४/११०–१४
[२] ऋ० सं० ३/३१
[३] ३.३१.२

देखकर जमदग्नियों ने सूर्य के आवास पर पहुँचाया। वहाँ पर ब्रह्म अथवा सूर्य की पुत्री ने उसे ससर्परी नाम वाच् प्रदान की। तत्पश्चात् वाच् ने विश्वामित्र की अचेतन अवस्था को दूर कर दिया।

७– इन्द्र का जन्म और बामदेव के साथ युद्ध[1]

अदिति के गर्भ में विद्यमान इन्द्र ने कहा कि मैं उचित रूप से जन्म नहीं लूँगा, तो अपने हित की रक्षा के लिए अदिति ने उसे समझाया किन्तु उसके समझाने के बाद भी इन्द्र ने जन्म लेने के तुरन्त बाद ही ऋषि को युद्ध के लिए ललकार दिया।

तत्पश्चात् इन्द्र और वामदेव के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध आरम्भ होने के पश्चात् इन्द्र नें वामदेव को पराजित करने के लिए अपनें बल का प्रयोग किया। इस प्रकार वामदेव तथा इन्द्र के बीच दस दिन तथा रात्रियों तक युद्ध चलता रहा। अन्त में वामदेव नें अपनीं शक्ति द्वारा इन्द्र को पराजित कर दिया।

"क इमम्"[2] ऋचा में गौतम नें उसका ऋषियों की सभा मे विक्रय करते हुए इस उद्देश्य से "नकिर इन्द्र"[3] द्वारा स्वयं उसकी स्तुति की तथा "किंम आद्व" के द्वारा उसके क्रोध को बीच में ही समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् ऋषि ने इन्द्र के रूप, वीरता तथा धीरतापूर्ण कार्यो और विविध कर्मों को अदिति से बताया। इस प्रकार वामदेव ने 'अहम्'[4] से प्ररम्भ अपने सूक्त में यद्यपि आत्मस्तुति की है, परन्तु वह इन्द्र की ही स्तुति मानी जाती है।

बृहद्देवता में वामदेव एवं इन्द्र से सम्बन्धित एक दूसरी कथा भी पायी जाती है। इसके अनुसार दोनो में अत्यधिक मित्रता थी। किसी समय वामदेव ने देवों,

---

[1] –बृहददेवता, ४/१२७–१३५
[2] ऋ०, ४ २४ १०
[3] तदेव, ४ ३०१
[4] तदेव, ४/२६

ऋषियों और पितरो की पूजा के लिए अन्य सामग्री के अभाव में कुत्ते की अतडियों को पकाया था, उस समय इन्द्र उस ऋषि के लिए मधु ले आये थे। इस पर गौतम के वंशज उस ऋषि ने 'त्वाम्'[1] से प्रारम्भ होनें वाले १५ सूक्तों द्वारा अग्नि की तथा "आ"[2] से प्रारम्भ १६ सूक्तों द्वारा इन्द्र की स्तुति की।

८–त्रयरुण और वृशजान की कथा[3]

एक बार इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रिवृष्ण के पुत्र राजा त्रयरूण अपने रथ पर सवार होकर जा रहे थे। उस समय जन के पुत्र वृषजान नामक पुरोहित ने अश्वों की रश्मियों लगामों को अपनें हाथमें ले लिया। उसी समय उसके रथ से एक ब्राह्मण कुमार का सिर कट जाने के पश्चात् राजा नें अपनें पुरोहित से कहा कि "तुम हत्यारे हो।"

राजा त्रयरूण के द्वारा यह कहे जाने पर कि तुम हत्यारे हो पुरोहित वृषजान नें अर्थवान मंत्रो का दर्शन किया और बालक को पुनः जीवित कर दिया। तत्पश्चात वह कोध में आकर राजा त्रयरूणका परित्याग करके अन्य देश में चला गया।

वृषजान के चले जाने पर राजा की अग्नि तापरहित हो गयी। उसमें डाली गयी हवि ताप के अभाव में पकती ही नहीं थी। बार–बार ऐसा होने पर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। तत्पश्चात् अपनी भूल को समझकर राजा त्रयरुण वृषजान के पास गया और उन्हें प्रसन्न करके अपने साथ ले आया। पुनः वृशजान को अपना पुरोहित बनाया, पुनः पुरोहित बना लिए जाने के पश्चात् वृशजान नें प्रसन्न होकर राजा के घर में अग्नि के ताप को ढूढ़ा। वहाँ उसने राजा की पत्नी को पिशाची के रूप में पाया।

---

[1] तदेव, ४४/१–१५

[2] तदेव, ४/१६–३२

[3] बृहद्देवता, ५/१२–२२

तत्पश्चात् बिस्तर से युक्त आसन्दी पर राजा त्रयरूण के साथ बैठकर वृशजान ने पिशाची को "कम् एवं त्वम्"[1] मंत्र द्वारा सम्बोधित किया।

उस अग्नि के ताप को एक कुमार के रूप में बताते हुए वृषजान ने पिशाची को संबोधित किया । जब उन्होंने 'विज्यनेतिषा'[2] का उच्चारण किया तब पास आते हुए अन्धकार को दूर भगाते हुए और प्रकाश को प्रकाशित करते हुए अग्नि सहसा प्रकट होकर पिशाची जहाँ बैठी थी, उसे वहीं भस्म कर दिया।

६. श्यावाश्व की कथा

प्राचीन काल में रथवीति दार्भ्य नामक एक प्रसिद्ध राजर्षि हुए। ऐसा सुना जाता है। कि एक बार वह यज्ञ की इच्छा से अत्रि के पास गये और उनको प्रसन्न किया।

तत्पश्चात् उन्हे अपना तथा अपनें कार्य का प्रयोजन बताकर जब हॉथजोड़कर खड़े हुए तब उसनें अपनें ऋत्विज के रूप में अत्रि के पुत्र अर्चनानस को चुना।

अत्रि अपने पुत्र को साथ लेकर यज्ञ की सिद्धि के लिए राजा के पास गये। अर्चनानस के पुत्र का नाम श्यावाश्व था, जिसे उसके पिता ने प्रसन्नतापूर्वक अङ्.गों और उपाङ.गों सहित वेदों की शिक्षा प्रदान की थी।

अर्चनानस् नें अपनें पुत्र के साथ राजा के यज्ञ को पूॅर्ण किया। जिस समय यह यज्ञ चल रहा था उसी बीच उसने राजा की यशस्विनी पुत्री को देखा। उस यशस्विनी पुत्री को देखने के बाद अर्चनानस् के मन में यह विचार आया कि वह

---

[1] ऋ०, ५.२२
[2] तदेव, ५.२.६

राजपुत्री को देखने के बाद अर्चनानस् के मन मे यह विचार आया कि वह राजपुत्री उसकी पुत्र–वधू बन सकती है।

पिता अर्चनानस् के विचार को जानने के पश्चात् श्यावाश्व का मन भी उस पर आसक्त हो गया। एतदर्थ उसने यजमान से कहा– "हे राजन! तुम मेरे साथ सम्बद्ध हो जाओ। राजा ने अपनी पुत्री श्यावाश्व को देने की इच्छा से महारानी से कहा– तुम्हारा क्या विचार है[1] मैं कन्या को श्यावाश्व को देना चाहता हूँ अर्थात् अपनी पुत्री का विवाह श्यावाश्व के साथ करना चाहता हूँ, क्योंकि अत्रि–पुत्र हम लोगों के लिए हीन जामाता नही होगा।"

राजा के ऐसा कहने पर रानी ने कहा– चूँकि मै राजर्षियो के कुल में उत्पन्न हुई थी, अतः मेरा जामाता भी ऋषि होना चाहिए। इस युवक ने मंत्रों का दर्शन नहीं किया है, अतएव जामाता नही बन सकता। अतः कन्या किसी ऋषि को ही दी जाय, तत्पश्चात ही वह वेद माता होगी, क्योंकि ऋषियों ने मंत्रद्रष्टा ऋषि को वेद का पिता माना है।

राजा ने अपनी पत्नी के साथ विचार–विमर्श करने के पश्चात श्यावाश्व को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि "जो ऋषि नही है, वह हमारा जामाता होने के योग्य नहीं है।"

यद्यपि राजा द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने पर श्यावाश्व यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् अपने पिता के साथ वापस लौट आया किन्तु उसका हृदय कन्या के पास ही लगा रहा।

यज्ञ से लौटने के पश्चात् शचीपति और तुरन्त दोनों राजा पुरुमीरुह से मिले।

---

[1] बृहद्देवता, ५/२०–८१

यह दोनों राजा तुरन्त तथा पुरुमीरुह ऋषि विददश्च के पुत्र थे। इन दोनों राजाओं ने भी स्वयं दोनों ऋषियों का पूजन किया।

तत्पश्चात् राजा तरन्त ने ऋषि पुत्र का दर्शन अपनी महारानी को कराया। तरन्त की अनुमति से उस महारानी शशीमुखी ने प्रचुर धन भेड, बकरियॉ, गायें तथा अश्व श्यावाश्व को प्रदान किए। इस प्रकार याजकों द्वारा सम्मानित होकर पिता और पुत्र अपने अत्रि आश्रम चले गये। उन्होंने प्रदीप्त तेज वाले महर्षि अत्रि का अभिवादन किया, किन्तु श्यावाश्व के मन में यह विचार आया कि चूँकि हमने किसी मंत्र का दर्शन नहीं किया है, अतः मैं सर्वाड्.ग सुन्दरी कन्या को नहीं प्राप्त कर सका। अतः हमें मंत्र द्रष्टा हो जाना चाहिए।

जब उसने मन में इस प्रकार चिन्तन किया तब उसके सम्मुख मरूद्गण प्रकट हुए। उसने अपने समक्ष अपने ही समान रूप वाले रूक्मवक्ष मरूतों को देखा।

पुरूषरूप तथा समानवय देवों को देखकर विस्मित श्यावाश्व ने मरूतों से पूछा– "केष्ठ" तब तक उसे ज्ञात हो गया कि यह रूद्र के पुत्र दिव्य मरूद्गण हैं।

उन्हें देखकर उसने यज्ञं वहन्ते[1] ऋचा द्वारा उनकी स्तुति की।

ऋषि नें यह विचार किया कि मरुतों को देखकर उनकी स्तुति किये बिना ही यह पूँछना कि आप कौन हैं ? उसने उनकी मर्यादा का उल्लंघन किया है। स्तुति किये जाने पर और उन स्तुतियों से प्रसन्न होकर पृश्नि के पुत्र मरूद्गण जब चलने लगे तब उन्होंने अपने वक्ष से स्वर्णाभूषण उतार कर ऋषि को दे दिया। जब मरूद्गण वहॉ से चले गये तब वह महायशस्वी श्यावाश्व विचारों में रथीवीति की पुत्री के पास पहुँच गये।

---

[1] ऋ०, ५.६१.११

ऋषि हुए श्यावाश्व ने तत्काल रथवीति को अपने सम्बन्ध में बताने की इच्छा से 'एतं में स्तोत्रम्'[1] से प्रारम्भ दो ऋचाओं द्वारा रात्रि को इस कार्य के लिए नियुक्त किया और रथवीति को न देखने वाली रात्रि को आर्ष नेत्रों से देखकर उन्होंने एष क्षेति[2] द्वारा कहा कि वह हिमवान् के रोचक पृष्ठ पर रहते हैं। ऋषि की आज्ञा को मानकर रात्रि द्वारा प्रेरित होकर दर्भ के पुत्र रथवीति कन्या को साथ लेकर अर्चमानस् के पास गये और उनका चरण पकडने के बाद करवद्ध झुककर यह कहते हुए अपना नाम बताया--

मैं दर्भ का पुत्र रथवीति हूँ-- आप मेरे साथ संबंध करने की इच्छा से गये थे, जिसे मैने अस्वीकृत कर दिया था उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। हे भगवन मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझपर कोधित न हों। आप ऋषि के पुत्र है स्वयं भी ऋषि हैं और हे भगवन! आप ऋषि के पिता भी हैं।

इतना कहने के पश्चात् रथवीति ने अर्चनानस् से कहा-- महाराज आइए आप कन्या को पुत्र-वधू के रूप मे स्वीकार कीजिए। राजा ने ऐसा कहने के बाद स्वयं ही पाद्य अर्ध्य और मधुपर्क द्वारा उनका पूजन किया तथा उन्हे एक सौ शुक्ल घोडे प्रदान करके घर जाने की अनुमति प्रदान की। तत्पश्चात् ऋषि अर्चनानस् नें भी 'सनन्'[3] से आरम्भ छः ऋचाओं द्वारा शशीयसी और तरन्त तथा राजा पुरुमीरुह की स्तुति करने के पश्चात् अपने घर चले गये।

१०. भृगु, अङि.गरस और अत्रि के जन्म की कथा[4]

ऐसी कथा प्रचलित है कि प्राचीन काल में प्रजा की कामना से प्रजापति ने साध्यों और विश्वेदेवों के साथ तीन वर्ष तक लगातार यज्ञ सत्र सम्पादित किया।

---

[1] ऋ०, ५.६१.१७-१८

[2] ऋ०, ५.६१.१९

[3] ऋ०, ५.६१.५-१०

[4] बृहद्देवता, ५/७८२-८६, ५/९७.१०१

उस दीक्षा के अवसर पर वाक् सशरीर वहाँ आई। सशरीर वाक् को वहाँ देखकर एक साथ ही 'क' प्रजापति और वरूण का शुक्र स्खलित हो गया। उनकी इच्छा से वायु ने शुक्र को अग्नि में डाल दिया। तत्पश्चात् शुक्र के उन ज्वालाओ से भृगु उत्पन्न हुए और उसके अङ्गारों से अङ्गिरस् ऋषि उत्पन्न हुए।

जब वाक् ने इन दो पुत्रों को देखा तो स्वयं भी दृष्ट होकर प्रजापति से कहा—हे विश्वेदेवों! इन दो के अतिरिक्त मुझे ऋषि के रुप में एक तृतीय पुत्र भी उत्पन्न हो। जब वाक् नें इस प्रकार प्रजापति को संबोधित किया तब भरती नें कहा ऐसा ही होगा। तत्पश्चात सूर्य और अग्नि के समान श्रुति वाले अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए।

जिस समय सूर्य के प्रकाश को स्वर्भानु द्वारा अदृश्य कर दिया गया था उस समय अन्धकार को दूर करने के लिए अत्रियों ने अग्नि की स्तुति की। इसके साथ ही विभिन्न स्थलों पर अत्रियों ने त्रयरुण त्रस–दस्यु, अश्वमेध, ऋणंचय आदि की भी स्तुति की है।

११. वसिष्ठ और उनके वंशज[1]

प्रजापति के पुत्र के रूप में मरीचि उत्पन्न हुए तथा मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। आगे चलकर दक्ष की पुत्रियाँ कश्यप की तेरह दिव्य पत्नियाँ बनी। जिनका नाम अदिति, दिति, यनु, काला, दनायु, सिहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा और वरिष्ठा, सुरभि विनता तथा कद्र था। इनसे ही देव, असुर गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी, पिशाच तथा अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई। इन पुत्रियों में से देवी अदिति ने भाग, अर्यमन् और अंश, मित्र और वरूण धातु और विधातु, महातेजस्वी विवस्वान्, त्वष्टा, पूषन् तथा इन्द्र और विष्णु नामक बारह पुत्रों को जन्म दिया। इस प्रकार मित्र एवं वरूण का

---

[1] ब ५/१४३–४८

युग्म अदिति से उत्पन्न हुआ। इनके द्वारा उर्वशी के साथ समागम करने के पश्चात् कुम्भ से वसिष्ठ ऋषि का जन्म हुआ। ऋषि वसिष्ठ और उनके वशज हर प्रकार के यज्ञीय कर्मों से संम्बद्ध होने के कारण यज्ञों मे दक्षिणा प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण बन गये थे।

भाल्लविनों की एक श्रुति में यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को वसिष्ठ के उन सभी वशजों को दक्षिणा से सम्मानित करना चाहिए जो कि आज भी यज्ञ सत्र पर उपस्थित होते हों।

मैत्रावरुण के पुत्र ऋषि वसिष्ठ ने अग्निम्[1] से आरम्भ अगले १६ सूक्तों में अग्नि की स्तुति की है, जहॉ जुषत्वनः [2] आप्री मंत्रों से मुक्त हैं।

इसके पश्चात् प्राग्नेय[3] 'प्रसमाज[4] और 'प्राग्नेय[5] भी जिसमें तीन ऋचाएं है, वैश्वानर को सम्बोधित किया गया है। त्येह[6] से आरम्भ मंत्र इन्द्र को सम्बोधित किया गया है, जिसके अन्तर्गत पन्द्रह सूक्त[7] से मरूतों की नेपातिक स्तुति की गयी है। 'न किः सुदासः चः'[8] ऋचा में तथा तेनप्तुः[9] से आरम्भ चार ऋचाओं में वसिष्ठ द्वारा पैजवन सुदास के दान का उल्लेख किया गया है। 'शिवव्य चः[10] को उन लोगों ने इन्द्र को सम्बोधित सूक्त अथवा एक संवाद सूक्त कहा है।

१२. कक्षीवत् और स्वनय की कथा[11]

कहते है कि जिस समय कक्षीवत अपने गुरू से विद्या प्राप्त करके घर लौट

---

[1] ऋ०, ७ ११
[2] तदेव, ७ २
[3] तदेव, ७ ५
[4] तदेव, ७ ६
[5] तदेव, ७ १३
[6] तदेव, ७ १८
[7] तदेव, ७ १८—३२
[8] तदेव, ७ ३२—१०
[9] तदेव, ७ १८.२२—२५
[10] तदेव, ७ ३३
[11] बृहद्देवता, ३ १४२—१५०

रहे थे, मार्ग में थककर वन मे ही सो गये। उस समय भावयप्य के पुत्र राजा स्वनय ने अपनी सभा, पुरोहित और पत्नी के साथ कीडा के लिए जाते हुए मार्ग में कक्षीवत् को सोया हुआ देखा। कक्षीवत् को रूप सम्पन्न तथा देवपुत्र के समान देखकर राजा ने बिना वर्ण और गोत्र आदि के पूछे ही अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करने का विचार कर लेने के पश्चात उनको जगाकर उनसे उनका वर्ण और गोत्रादि पूछा। इस पर प्रत्युत्तर मे कक्षीवत् ने कहा—राजन[1] मैं अडि.गरस वंशोत्पन्न उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा ऋषि का पुत्र हूँ। तत्पश्चात् राजा स्वनय ने कक्षीवत् को आभूषणों से अलंकृत दस कन्याएं उन्हे ले जाने के लिए दस रथ तथा चार—चार के दल में चलने वाले सुदृढ़ सुडौल शरीर वाले अश्व भी उपहार में दिया। इसके साथ ही बहुत सारा धन हीन धातु से निर्मित बर्तन तथा भेड बकरियॉ आदि भी प्रदान किया।

इनके अतिरिक्त राजा स्वनय ने कक्षीवत् को एक 'सौनिष्क' एक प्रकार का 'कण्ठाभूषण' और एक सौ बैल भी प्रदान किया। इसका वणनशतम्[1] से आरम्भ सूक्त की ऋचाओं में वर्णन है। कक्षीवत् ने एक सौ अश्व, एक सौ निष्क कन्याओं सहित दस रथ, चार—चार के दल में चलने वाले रथवाहक अश्व और एक हजार साठ गायें[2] इन सबको प्राप्त करने के पश्चात् स्वनय की प्रशंसा की तथा अपने पिता को प्रातः[3] वाला सूक्त समर्पित किया।

१३. सोभरि और चित्र की कथा[4]

सोभरि और चित्र ने इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहा— हे इन्द्र आप हम लोगों पर कृपा कीजिए जिससे विश्वकर्मा मेरे लिए सुन्दर वर्णो के प्रासादों का निर्माण करें

---

[1] ऋ०, १.१२६ २—३

[2] ऋ०, १.१२६ २—३ निष्कान छतम अश्वान वधूमती दश रथासः षष्टिः सहस्रम्... गव्यम्।

[3] तदेव, ११२५

[4] बृहद्देवता, ५.५६—६२

तथा साथ ही अलग–अलग देव वृक्षों की पुष्पवाटिकाओ का भी निर्माण करें तथा कोई ऐसा कार्य बताये जिससे सहपत्नियों के बीच आपस में कोई स्पर्धा न रहे। ऐसा कहने पर इन्द्र ने कहा ठीक है, ऐसा ही होगा। तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण होगी।

एक समय की बात है कि जब कण्व के पुत्र सोभरि अपने वंशजों के साथ कुरूक्षेत्र मे यज्ञ कर रहे थे उसी समय चूहो ने उनके सारे अन्न और विविध प्रकार के हविष्यों को खा डाला। तत्पश्चात् सोभरि ने "इन्द्रों वा"[1] ऋचा से दान शक्ति का वर्णन करते हुए इन्द्र, चित्र तथा सरस्वती की स्तुति किया।

सोभरि के स्तुति करनें पर चूहों के राजा चित्र उन पर प्रसन्न एव आत्मतुष्ट होकर स्वयं भी चित्र की देववत् स्तुति की। उसने ऋषि को अनेक प्रकार की सहस्रों गायें प्रदान कीं। तत्पश्चात ऋषि ने उनकी स्तुति करते हुए दान को ग्रहण किया। चित्र ने हृदय से प्रसन्न होकर ऋषि को सम्बोधित किया–

हे ऋषि! चूँकि मैने पशु योनि में जन्म लिया है, इसलिए मैं ऋषि के द्वारा स्तुति करने के योग्य नहीं हूँ। अतः आप देवताओं की स्तुति करें। ऐसा कहने के पश्चात भी ऋषि ने ८.२१.१८ ऋचा से उसकी (चित्र) की पुनः स्तुति की और औत्यम्[2] ऋचा से उन्होंने अश्विनों की स्तुति की।

१४. अपाला की कथा[3]

प्राचीन काल में अग्नि की एक पुत्री हुई, जिसका नाम अपाला पडा। अपाला चर्म रोग से पीड़ित थी। इन्द्र अपाला को अग्नि के निर्जन आश्रम में देखकर उस पर आसक्त हो गये।

---

[1] ऋ०, ८.२१.१७
[2] तदेव, ८.२२
[3] वृहद्देवता, ६.९९.१०८

अपाला तपस्विनी थी, अतः वह अपनी तपस्या द्वारा इन्द्र की समस्त इच्छाओ को जान गयी। तत्पश्चात वह जल कुम्भ लेकर पानी लाने के लिए गयी। उस समय वह जल के किनारे सोम को देखा। तदनन्तर वह वन में ही एक ऋचा से उसकी स्तुति की। कन्यावाः[1] मे इसका वर्णन मिलता है।

एक बार जब अपाला ने अपने मुख में सोम को दबा रखा था, तत्पश्चात् 'असो भएषि'[2] ऋचा से इन्द्र का आह्वान् किया। अपाला के आवाहन करने पर इन्द्र ने उसके घर अपूप और सत्तू खाने के पश्चात् उसके मुख से सोम का पान किया तथा अपाला ने एक ऋचा से इन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार अपाला ने तीन ऋचाओं द्वारा[3] उसे सम्बोधित करते हुए कहा– हे इन्द्र! मुझे सुलोभ और दोषरहित अड.गो वाली तथा श्रेष्ठ त्वचा वाली बनाओ।

अपाला के इस वचन को सुनकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। गाडी के जुये के बीच के छिद्र से उसे प्रक्षिप्त करते हुए इन्द्र ने उसे तीन बार बाहर खींचा, जिससे अपाला सुन्दर त्वचा वाली हो गयी।

अपाला की प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक् बन गयी, दूसरी गोध (घड़ियाल) और अन्तिम त्वचा कृकलात (नेवला) बन गयी।

यास्क और भागुरि ने इस सूक्त को एक इतिहास माना है। जबकि शौनक ने कन्या[4] सूक्त को तथा पात्तम[5] से आरम्भ बाद में आने वाले दो सूक्तों[6] को इन्द्र को सम्बोधित माना है।

---

[1] ऋ०, ८.९१.१
[2] तदेव, ८.९१.२
[3] तदेव, ८.९१.४६
[4] तदेव, ८.९१
[5] तदेव, ८.९२–९३
[6] तदेव, ८.९३–९४

१५. सोम के पलायन की कथा[1]

एक बार वृत्र और सोम के बीच युद्ध हो रहा था। उस समय वृत्र के भय से त्रस्त होकर सोम देवों के पास से भाग गया और कुरूओं के प्रान्त में स्थित अंशुमती नामक नदी में रहने लगा।

जिस समय इन्द्र अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त होकर मरुतों के साथ युद्ध के लिए उद्यत थे, उस समय वृत्रहा (इन्द्र) केवल वृहस्पति को लेकर सोम के पास आये। उन लोगों के आते हुए देखकर सोम यह विचार करने लगा कि वृत्र अपनी आकामक सेना सहित उसका वध करने के लिए ही आ रहा है, ऐसा सोचकर सोम अपनी सेना के साथ व्यवस्थित हो गया। धनुष से युक्त ओर व्यवस्थित देखकर उससे वृहस्पति ने कहा–हे सोम! यह मरुतों के स्वामी हैं । हे प्रभो तुम पुनः देवताओं के पास चले जाओ । इस प्रकार देव गुरु का वक्य सुनकर वृत्र के भय से रहित सोम नें इन्द्र नें कहा– "नहीं मैं देवताओं के पास नहीं जाऊँगा"। उसके ऐसा कहने पर बलवान इन्द्र उसको बलपूर्वक साथ लेकर देवों के पास स्वर्ग चले गये। तत्पश्चात् देवों ने उसका विधिवत् पान किया।

सोम का पान करने के पश्चात उन लोगों ने युद्ध में नौ बार नब्बे दैत्यों का वध किया। इन सबका अप[2] से आरम्भ तीन ऋचाओं में उल्लेख मिलता है।

ऋषि ने इन्द्र, मरुतों और वृहस्पति की भी स्तुति की है, क्योंकि इन तीन ऋचाओं के देवता यही लोग हैं। किन्तु शौनक का विचार है कि यहॉ केवल इन्द्र ही देवता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में ऋचाओं को इन्द्र तथा वृहस्पति को सम्बोधित माना गया

---

[1] वृहद्देवता, ६ १०६–११६

[2] ऋ०, ८.९६, १३–१५

है। "अयम्" से आरम्भ तीन ऋचाओं[1] में भृगु के पुत्र नेम ने बिना देखे ही इन्द्र की स्तुति की है।

इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात इन्द्र ने कहा—मै यहाँ हूँ, हे ऋषि! देखो।[2]

इन्द्र ने ऐसा इसलिए कहा कि इन्द्र की स्तुति करते समय अकेले होने के कारण नेम नें यह कहा था कि इन्द्र नहीं हैं।

१६. विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता[3]

इन्द्र ने अपने को प्रकट करते हुए दो ऋचाओं[4] में स्वय अपनी स्तुति की है। इन्द्र द्वारा अपनी स्तुति स्वयं किये जाने पर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और विश्वेता ते[5] से आरम्भ दो ऋचाओं में इन्द्र के दान और उनके विभिन्न प्रकार के कर्मो की प्रशंसा की। किन्तु मनोजवाः[6] ऋचा द्वारा वज्र की स्तुति है।

वृत्र इन तीनों लोकों को त्रस्त करते हुए अपने कोध के कारण अविजित रहा। जब इन्द्र वृत्र का वध करने में समर्थ नही हो सके तब विष्णु के पास जाकर बोले मैं वृत्र का वध करना चाहता हूँ, अतः आप पराक्रम से युक्त होकर मेरे समीप खड़े हों।

'द्यौस्' (आकाश) मेरे उद्यत हुए वज्र को स्थान प्रदान करे। तथास्तु कहकर विष्णु ने वैसा ही किया और द्यौस ने उन्हें स्थान दिया।

---

[1] तदेव, ८.१००, १—३
[2] तदेव, ८.१००, ४—५
[3] वृहद्देवता, ६.१२१—२३
[4] ऋ०, ८.१०० ४—५
[5] तदेव, ८.१००, ६—७
[6] तदेव, ८.१०० ६

१७. सरण्यू की कथा[1]

त्वष्टा के सरण्यू तथा त्रिशिरस् नामक दो युगल सन्ताने थीं। त्वष्टा ने सरण्यू का विवाह विवस्वान् के साथ कर दिया। तत्पश्चात् सरण्यू तथा विवस्वत् ने यम और यमी को जन्म दिया। ये दोनों यमज थे, किन्तु इन दोनों में यम ज्येष्ठ थे।

एक बार सरण्यू ने अपने पति की अनुपस्थिति में अपने समान एक स्त्री की सृष्टि करके उसे ही यमजो को देकर स्वय अश्वी का रूप धारण करके वन मे चली गयी।

विवस्वान् इस परिस्थिति से अवगत नही थे। अतएव अनभिज्ञता से उसने इस स्थानापन्न स्त्री से उत्पन्न किया। आगे चलकर मनु भी विवस्वान के समान तेजस्वी राजर्षि बने। जब विवस्वान को यह ज्ञात हुआ कि सरण्यू एक अश्वी के रूप में चली गयी है, तो उसने भी सलक्षण अश्व का रूप धारण करके शीघ्रतापूर्वक समागम की प्रबल इच्छा से त्वष्टा की पुत्री के पीछे चला गया।

जब विवस्वत् को सरण्यू ने अश्व के रूप में देखा तो वह उसे पहचान गयी, तत्पश्चात् सरण्यू ने विवस्वान् से मैथुन का आग्रह किया। विवस्वत् ने उस पर आरोहण नहीं किया।

अतिशय उत्तेजना के कारण विवस्वान् का शुक्र भूमि पर गिर पड़ा। सन्तान की इच्छा के कारण उस अश्वी ने शुक्र को सूँघा। शुक्र को सूँघने के पश्चात दो कुमार नासत्यौ अथवा दस्रौ प्रकट हुए, जिनकी स्तुति अश्विनों के रूप में की जाती है।

---

[1] बृहद्देवता, १६२–६३, ७.१–१०

यास्क ने त्वष्टा[1] से आरम्भ उन दो ऋचाओं को विवस्वान् और त्वष्टा की कथा माना है, जिनकी देवता सरण्यू है।

१८. घोषा की कथा [2]

प्राचीन काल में काक्षीवत् की पुत्री घोषा एक पाप से अपग होने के पश्चात साठ वर्षों तक अपने पिता के गृह मे रही। घोषा को इस बात की अत्यन्त चिन्ता हुई थी कि बिना पुत्र अथवा पति के मै वृथा ही जरा अवस्था को प्राप्त हो गयी हूँ। अतएव उसने निश्चय किया कि मैं शुभस्पती अश्विनों की शरण में जाऊँगी।

उसने सोचा कि चूँकि मेरे पिता ने शुमस्पती की आराधना करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सर्वभूतहन विष प्राप्त किया था, अतः मै भी उनकी कृपा से रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ। सर्वप्रथम इसके लिए अश्विनों को संतुष्ट करने वाले मंत्रों की प्राप्ति आवश्यक है।

इस प्रकार चिन्तन करते समय उसने 'यो वां परि'[3] से आरम्भ दो सूक्तों का दर्शन किया। स्तुति किये जाने पर दिव्य अश्विन् द्वय उस पर प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् अश्विन् द्वय ने घोषा के शरीर में प्रवेश करके उसे जरा–विहीन, रोगरहित और सुन्दर बना दिया। अश्विन् द्वय ने घोषा को पति और पुत्र के रूप में ऋषि सुहस्त्य को प्रदान किया।

अश्विनौ कक्षीवत् की पुत्री घोषा को जो कुछ दिया उसका 'न तस्य'[4] और 'अमाजुरः'[5] ऋचाओं द्वरा वर्णन मिलता है।

---

[1] ऋ०, १० १७,१–२
[2] वृहद्देवता,
[3] ऋ० १०.३८.४०
[4] तदेव, १० ४४.११
[5] तदेव, १० ३६,३

१६. इन्द्र वैकुण्ठ की कथा[1]

प्रजापति की एक आसुरी पुत्री थी जिसका विकुण्ठा था। उसने इन्द्र के समान पुत्र की महान इच्छा से तपस्या की। इस प्रकार उसने प्रजापति से विभिन्न वरदानों के रूप में समस्त इच्छाओ को प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात दैत्यो और दानवों का वध करने की इच्छा से स्वय इन्द्र उससे जन्म लिया।

किसी समय जब इन्द्र और दानवों के बीच समर भूमि में युद्ध हो रहा था उस समय इन्द्र ने नौ–नौ नब्बे बार और सात–सात की संख्या में सात बार दानवों का वध किया।

इन्द्र ने अपने बाहुबल से दानवों के स्वर्ण रजत और लौह दुर्गों को ध्वस्त करके तीनों लोको में व्यवस्थित दानवों का यथास्थान वध कर दिया। तत्पश्चात् पृथ्वी पर उन्होंने कालकेय और पुलोम जाति के लोगों धर्नुधरों और स्वर्ग में प्रह्लाद की तुष्ट सन्तानों का उन्मूलन कर दिया।

इस प्रकार दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त कर तथा अपनी वीरता के दर्प में असुरों की माया से मोहित होकर उसने देवों को त्रस्त करना आरम्भ कर दिया।

देव लोग उस असीम शक्ति वाले इन्द्र से त्रस्त होकर उससे मुक्ति पाने के लिए श्रेष्ठ ऋषि सप्तगु के पास भाग कर गये ताकि वे इन्द्र को रोक दें। चूँकि सप्तगु ऋषि उनके प्रिय सखा थे, इसलिए उनके हाथ का स्पर्श करते हुए उन्होने उनको 'जागृभ्य'[2] सूक्त से संतुष्ट किया। तत्पश्चात् आत्मबोध करके और सप्तगु की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होनें 'अहं भुवम्'[3] से आरम्भ तीन सूक्तों में अपनीं स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होने अपने प्राचीन काल में किये गये कार्यो का वर्णन किया।

---

[1] –बृहददेवता ७ ५०–६५

[2] ऋ० स० १० ४७

[3] तदेव, १० ४८–५०

प्राचीन काल में किस प्रकार विदेह के राजा व्यंश को सोम पति बनाया था। प्राचीन काल में वशिष्ठ के श्राप से व्यंश विदेह के राजा बन गये। तत्पश्चात् इन्द्र की कृपा से राजा व्यंश ने सरस्वती तथा अन्य नदियों के तट पर यज्ञ–सत्र का आयोजन किया था। इस प्रकार इन्द्र ने अपनी महान शक्ति का, शत्रुओ को पहुँचायी गयी क्षति का मनुष्यों के बीच अपने ऐश्वर्य का तथा भुवनों पर अपने प्रभुत्व का वर्णन किया। उसने 'प्रवो महे'[1] से अपनीं अक्षय शक्ति की स्तुति की।

२०. सुबन्धु की कथा[2]

ऋग्वेद संहिता के 'यत्'[3] से प्रारम्भ होने वाले सूक्त में इतिहास का वर्णन मिलता हैं।

एक बार जब इक्ष्वांकुवंशीय रथ प्रोष्ट राजा असमाति ने अत्रियों के द्विपदो, ऋषि सुबन्धु तथा अन्य उन पुरोहितों को अपने राज्य से निकाल दिया। तत्पश्चात् असमाति ने किरात और आकुलि नामक दो मायावियों को श्रेष्ठ समझकर अपना पुरोहित बना लिया।

सुबन्धु से ईर्श्या रखने वाले तथा गोपायनों के विरूद्ध गायन करने वाले किरात और आकुलि कपोत बनकर अपनी माया और योग बल से सुबन्धु के ऊपर गिर पड़े । उसके आघात से पीड़ित सुबन्धु मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तद्नन्तर कपोत धारी किरात और आकुलि ने सुबन्धु के प्राण को नोच डाला तथा लौटकर राजा के पास चले गये। सुबन्धु के प्राणविहीन होकर भूमि पर पड़े रहने पर गोपायनों ने एक साथ उसके कल्याण के लिए 'मा'[4] सूक्त का जप किया। इस

---

[1] तदेव १० ५० १

[2] बृहददेवता ७ ८३–९३

[3] ऋ० सो० नपि० १० ५८

[4] ऋ० १०.५७

प्रकार उनकी आत्मा को पुनः लौटाने के लिए इन लोगों ने 'यत्'[1] से आरम्भ सूक्त का आश्रय लिया।

'प्रतारि'[2] से आरम्भ जिन तीन ऋचाओ का इन लोगों ने उनके उपचार के लिए जप किया। वहीं इस सूक्त की प्रथम तीन ऋचाएं (१–३) हैं। यहाँ इनका निक्रति को दूर भगाने के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

'माषु'[3] से आरम्भ तीन पाद सोम को सम्बोधित है। अन्तिम पाद् निऋति को सम्बोधित है। बाद की दो ऋचाओ द्वारा[4] असुनीति की स्तुति की गयी है।

यास्क का विचार है कि इन दो ऋचाओं में से अन्तिम पाद अनुमति[5] को सम्बोधित है।

पृथ्वी, आकाश, सोम और पूषन्, वायु, पथ्या और स्वस्ति का विस्तृत विवरण ऋग्वेद[6] में मिलता है। इन सबको पुन रनः[7] ऋचा में सुबन्धु के कष्ट को शान्त करने वाला माना गया है। शम्[8] से आरम्भ तीन ऋचाएं [9] दो लोको को सम्बोधित है। जबकि शम्[10] ऋचा की प्रथम अर्द्धर्च ऋचा इन्द्र को सम्बोधित है। तत्पश्चात आ से आरम्भ चार ऋचाओं[11] से उन्होंने इक्ष्वांकु के वंशज की स्तुति की है। स्तुति करने के पश्चात इन्द्र त्वा से आरम्भ ऋचा में उनके लिए आशीष कहा गया है। उनकी माता ने अगस्त्यस्यं[12] से राजा की स्तुति की है। इस प्रकार स्तुति किये जाने

---

[1] तदेव १० ५८
[2] तदेव १० ५९
[3] तदेव १० ५९–४
[4] तदेव १० ५९ ५–६
[5] ऋ० १० ५९ ६
[6] तदेव १० ५९.६
[7] तदेव १० ५९–६०
[8] तदेव १० ५८.८.१०
[9] तदेव १० ५९.१०
[10] तदेव १०,६० १–४
[11] तदेव १०.६०.५
[12] ऋ० १०.६० ६

पर वह राजा लज्जा पूर्वक गोपायनो के पास गया। तत्पश्चात् अत्रियों ने द्विपद सूक्तों से अग्नि की स्तुति की।

इस प्रकार प्रसन्न होकर अग्नि ने उन लोगों से कहा– सुबन्धु की आत्मा इस अन्तः परिधि में है, अर्थात हित की इच्छा रखने वाले मेरे द्वारा इक्ष्वांकु का यह वशज रहित है। सुबन्धु को उसका प्राण लौटा देने और 'जीवित रहो' कहने के पश्चात गोपायनों द्वारा स्तुति की जाने पर अग्निदेव उन पर प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले गये।

तत्पश्चात् इन लोगों ने प्रसन्न होकर 'अयं माता'[1] ऋचा द्वारा सुबन्धु के प्राण का आह्वान किया तत्पश्चात् भूमि पर पडे हुए सुबन्धु के शरीर को निर्दिष्ट करते हुए उन लोगों ने उसकी चेतना के धारणार्थ सूक्त के शेष अश का गायन किया। और अयम्[2] ऋचा में उन लोगों ने उसकी चेतना प्राप्त कर लेने पर अपने हाथो से उसका पृथक–पृथक स्पर्श किया।

'इदम्' से आरम्भ छः सूक्त[3] विश्वे देवों को सम्बोधित है। इनमें से द्वितीय सूक्त[4] में अंडि.गरस की स्तुति की गयी है।

जन्म, कर्म और इन्द्र के साथ उनका सखा भाव बताते हुए ऋषियों ने स्तुति की। ' प्र नूनम्'[5] तथा शेष ऋचाओं से सवर्ण के पुत्र मन की स्तुति की गयी है।

२१. पुरुरवस् और उर्वशी की कथा[6]

प्राचीन काल मे अप्सरा उर्वशी पुरूरवस् के साथ रहती थी। दोनो आपस में समझौता करके पति–पत्नी का आचरण करने लगे।

---

[1] तदेव, १० ६० ७
[2] तदेव, १० ६० १२
[3] तदेव १० ६१.६६
[4] तदेव १० ६५
[5] ऋ० १०.६२.८–११
[6] वृहददेवता ७ १४३–१५२

उर्वशी के साथ पुरूरवस् के सहवास पर ईर्श्या करते हुए तथा दोनो के प्रगाढ अनुराग को देखकर पाक शासन (इन्द्र) ने उन्हे अलग करने के लिए अपने पार्श्वस्थ वज्र से कहा– 'हे वज्र यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो तो पुरूरवस् और उर्वशी के प्रेम सम्बन्ध को भंग कर दो।"

इन्द्र के ऐसा कहने पर "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर वज्र ने अपनी माया से उनके प्रेम को भंग कर दिया, तत्पश्चात् उर्वशी से अलग होकर राजा पुरूरवस् इधर–उधर भटकने लगे।

भटकते हुए राजा पुरुरवस् ने एक तालाब में पॉच सखियों से घिरी हुई सुन्दरी उर्वशी को देखा। उर्वशी को देखकर राजा ने लौट चलने का आग्रह किया, परन्तु उर्वशी ने दुःख प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि– अब तुम मुझे यहॉ नही प्राप्त कर सकते, तुम मुझे स्वर्ग में ही पुनः प्राप्त कर सकोगे।

२२. सरमा और पणियों की कथा [१]

पणि नाम के असुर गण रसा के उस पार के निवासी थे। इन लोगों ने इन्द्र की गायों का अपहरण कर लिया। और उन गायों को सतर्कतापूर्वक छिपा दिया।

गायों को छिपाते हुए असुरों को वृहस्पति ने देखा तथा इन्द्र से बता दिया । तत्पश्चात् इन्द्र ने सरमा को वहॉ दूती के रूप में भेजा। किम्[२] से आरम्भ होने वाली ऋचा के द्वारा पणियों ने अयुग्म ऋचाओं के माध्यम से सरमा से पूछा– तुम कहॉ से आ रही हो? हे कल्याणी! तुम किसकी हो? अथवा तुम्हारा यहॉ क्या कार्य है?

पणियों के ऐसा प्रश्न करने पर सरमा ने उत्तर दिया– मैं इन्द्र की दूती के

---

[१] –वृहददेवता ८.२१–३६
[२] –ऋ० १०.१०८

रूप में विचरण कर रही हूँ। तुम्हे तथा तुम्हारे गोष्ट और इन्द्र की गायों को ढूँढ रही हूँ, क्योंकि इन्द्र गायों के सम्बन्ध मे जानना चाहते हैं।

असुरगण जब यह ज्ञात हुआ कि यह इन्द्र की दूती है तो असुरों ने सरमा से कहा– हे सरमा! तुम यहॉ से न जाओ। यहॉ हम लोगों की बहन के रूप में रहो।

हम लोग आपस में मिलकर अपने–अपने भाग की गायों का विभाजन कर ले अब से पुनः हमारे लिए अमित्रवत न रहो। सूक्त[1] की अन्तिम ऋचा तथा सभी युग्म ऋचाओं से सरमा ने कहा– हे पणियों मैं न तो तुम्हारी बहन बनना चाहती हूँ और न ही तुम लोगों का धन ही चाहती हूँ, बल्कि जिन गायों को तुम लोगो ने छिपाकर रखा है, मै उनका दुग्धपान करना चाहती हूँ।

सरमा के ऐसा कहने के पश्चात् पणियों ने दूध लाकर दिया। सरमा ने लालच में आकर उस आसुरी दूध का पान कर लिया, जो श्रेष्ठ मोहक आनन्दायक तथा बल को पुष्ट करने वाला था। तत्पश्चात् सरमा पणियों के दुर्जेय पुर से चलकर सौ योजनों के विस्तार वाली रसा को पुनः पार करके इन्द्र के यहॉ पहुँची। इन्द्र ने सरमा से पूछा–तुमने गायों को कहीं देखा है?

सरमा ने आसुरी दुग्धपान के प्रभाव से इन्द्र को नकारात्मक उत्तर दिया। अर्थात सरमा ने कहा–मैने कहीं गायों को नहीं देखा है। सरमा के ऐसा कहने पर इन्द्र कुद्ध हुआ और सरमा को पैर से मारा। तत्पश्चात सरमा दूध का बमन करती हुई भयभीत होकर पुनः पणियों के पास गयी। अपने रथ पर बैठकर इन्द्र ने सरमा के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए जाकर पणियों को मारा और गायों को वापस लाया।

---

[1] तदेव १० १०८.११

२३. अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक सार्जन्य की कथा[1]

प्राचीन काल मे वारशिखो के साथ अभ्यावर्तिन् चायमान प्रस्तोक का युद्ध हो रहा था। उस युद्ध में वारशिखों द्वारा अभ्यावर्तिन् चायमान् तथा संजय के पुत्र प्रस्तोक ये दोनों राजा पराजित हो गये। पराजित होकर ये लोग भरद्वाज के पास पहुँचे।

ऋषि भरद्वाज की स्तुति करते हुए अपना नाम बताने के पश्चात् चायमान और प्रस्तोक ने भरद्वाज से कहा–ब्रह्मन्–हम लोग वारशिखो के द्वारा युद्ध में पराजित हो गये है।

अतः हम लोग आप को अपना पुरोहित बनाकर योद्धाओं को विजित कर सकते हैं। उसे ही योद्धा जानना चाहिए जो शाश्वत ब्रह्म की रक्षा करता है।

चायमान और प्रस्तोक के ऐसा कहने पर भरद्वाज ऋषि ने हॉ कहकर अपने पुत्र वायु को सम्बोधित किया– हे पुत्र! तुम चायमान और प्रस्तोक इन दो राजाओं को अपने शत्रुओं द्वारा पराभूत न होने जैसा बना दो।

वायु ने अपने पिता के कथनानुसार उनके आयुधों को (शस्त्रों को) पृथक–पृथक ' जी भूतस्य' द्वारा अभिषिक्त कर दिया।

२४. इन्द्र और व्यंस की बहन[2]

'अद्यः' वाली ऋचा में एक इतिहास वर्णित है किसी कन्या ने इन्द्र को स्त्री लिंङ्ग से युक्त कहकर संबोधित किया है, क्योंकि इन्द्र ने अपने युवा काम के कारण व्यंस की ज्येष्ठ बहन उस दानव कन्या के साथ प्रेम किया था। 'अग्निना"

---

[1] वृहददेवता ५–१२४–१२८

[2] वृहददेवता ६,७६–८०

अश्विनो को संबोधित सूक्त है। इसके पश्चात् इन्द्र को संबोधित दो सूक्त आते हैं।

तत्पश्चात् आने वाला सूक्त इन्द्र एवं अग्नि को संबोधित है। पुनः एक सूक्त अग्नि एवं इन्द्र को सबोधित है। किन्तु वरूण के सूक्त की ''आ वाम्'' से आरम्भ अंतिम तीन ऋचाएं अश्विनों को सबोधित है ''इमे और सम्'' यह दो सूक्त अग्नि को संबोधित है। इसके बाद के दो सूक्त इन्द्र को संबोधित हैं।

कानीत्, पृथु श्रुवस् द्वारा वश अश्व्य को जो कुछ दान में दिया गया था। इसकी ''आस्'' से आरम्भ ऋचाओ द्वारा स्तुति की गयी हैं। ''आ नाः'' से आरम्भ प्रगाथ ऋचाएं तथा इस सूक्त की अंति ऋचा के पूर्व की एक ऋचा भी वायु को संबोधित है।

२५. इन्द्र और ऋषिगण तप का महात्म्य[1]

ऋषियों के द्वारा स्वर्ग की आकांक्षा करने पर इन्द्र ने कहा– 'हे ऋषिगण! आप लोग महान् तप करें, क्योंकि बिना तप किये। इस कष्ट का निवारण नहीं हो सकता है।'

स्वर्ग की आकांक्षा रखने वाले उन सभी ऋषियों ने तप किया। उग्र तप के परिणामस्वरूप उन लोगों ने सोम पवमान से संबधित ऋचाओं का उच्चारण किया–

जो मन वाणी, शरीर और भोजन से पवित्र होता है वह स्वाध्याय का फल प्राप्त करता है। जो ईर्ष्यालु नही है, जो अध्यवसायी सेवी है तथा तप करने वाले हैं,

---

[1] वृहददेवता ६–१४०–१४६

वह अपने दस पूर्वजों तथा वशजो को पवित्र करते है। साथ ही अपने को भी पवित्र करते हैं।

जो ईष्यालु नहीं जो अध्यवसायी सेवी हैं तथा तप करनें वाले हैं, वह अपने दस पूर्वजो तथा वंशजों को पवित्र करते हैं।

पावमानी गायत्रियॉ ही उज्जवल और सनातन ज्योति रूप परम ब्रह्म हैं, जो अपनें अन्त समय में प्राणायाम करते हुये उनका ध्यान करता है तथा जो पवमान पितरों, देवताओं और सरस्वती का ध्यान करता है, उसके पितरों के समीप दूध, घृत, और जल की धारा बहती है।

सोम को सम्बोधित ११४ सूक्तों वाले इस मण्डल को पवमान मण्डल कहा गया है।

२६. त्रिशिरस् और इन्द्र

त्रित नें अग्नि को सम्बोधित करते हुए "अग्ने" से आरम्भ होनें वाले सात सूक्तों का दर्शन किया है, किन्तु त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरस् नें 'प्र के तुना' से आरम्भ बाद के सूक्त का दर्शन किया।

उस सूक्त की छः ऋचायें से अग्नि को सम्बोधित है, जबकि 'अज्य से आरम्भ बाद की तीन ऋचाओं से उन्होंने एक स्वप्न के अन्त में इन्द्र की स्तुति की है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि असुरों की एक बहन के पुत्र होनें के कारण विश्वरूप को धारण कर सकनें वाले त्रिशिरस् असुरों का लाभ चाहनें की इच्छा से देवों के पुरोहित बन गये।

तत्पश्चात् इन्द्र को यह जानकारी हो गयी कि ऋषि त्रिशिरस् को असुरों ने ही देवों के बीच भेजा। तो उन्होंने शीघ्रता पूर्वक उसके तीन सिरों को अपनें वज्र से काट कर गिरा दिया।

तत्पश्चात् जिस मुख से उसनें सोमपान किया था, वह कपिञ्जल बन गया, दूसरा मुख सुरापान के कारण कलविङ्ग बना तथा तृतीय मुख तित्तिर बन गया।

२७. इन्द्र,मरूद्गण और अगस्त्य[1]

प्राचीन वृत्तान्तों के कथन के समय ऋषियों ने कहा कि एक बार आकाश में भ्रमण करते हुए शतक्रतु मरुतों के साथ गिर गये थे।

इन्द्र नें मरूतों को नीचे गिरा देखकर इनकी तुष्टि की और इन लोगों नें भी ऋषियों के रूप में इन्द्र संबोधित किया। तत्पश्चात् तप की सहायता से अगस्त्य इनके संवाद से तत्वतः अवगत हो गये।

अगस्त्य इन्द्र के लिए एक हवि का निर्माण करके शीघ्रता पूर्वक वहाँ गये और उन्होंने 'तनु नु'[2] से आरम्भ तीन सूक्तों द्वारा मरुतों की स्तुति की।

'महशचित्'[3] सूक्त से इन्होंनें इन्द्र की स्तुति की तथा 'सहस्रम्'[4] ऋचा द्वारा उन्होंनें मरूतों को वह हवि देनें की इच्छा की, जिसे उन्होंने इन्द्र के लिए निर्मित किया था।

इन्द्र नें उसके भाव को जानकर 'न'[5] से आरम्भ यह वचन कहा–वास्तव में न

---

[1] वृहद्देवता, ४ ४६–५५

[2] ऋ०, १.१६६–१६८

[3] ऋ०, १ १६८

[4] तदेव० १.१६७ १

[5] तदेव, १.१७०.१

तो आगत कल के लिए कुछ है और न आज के लिए कुछ है, जो अभी रहा ही नहीं, उसे कौन जानता है। दूसरे का मन चचल हैं हम जो सोचते हैं वह विनष्ट हो जाता है।

अर्थसंचार की अनिश्चितता से मनुष्य का चिन्तन किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है, तब अगस्त्य नें इन्द्र से 'कि नः'[1] अर्थात यह कहा कि मरूद्गण आपके भ्राता हैं। मरूतों से सहमत हो शतक्रतु हमारा वध न करें, किन्तु 'किं नो भ्रातः'[2] ऋचा में इन्द्र नें मान्य (अगस्त्य) का उपालम्भ किया।

किन्तु 'अरम्'[3] में अगस्त्य नें क्षुब्ध इन्द्र को शान्त किया है। शान्त करने के पश्चात् अगस्त्य नें मरूतों को हवि समर्पित किया।

चूँकि सोम सवन के समय मरूतों को भी अपने साथ सोम पान करने वाला बनाया, अतः इन्द्र को सम्बोधित सूक्तों में मरूतों की नैयातिक स्तुति ही प्राप्त होती है।

ऋषि नें हृदय से प्रसन्न होकर 'प्रति'[4] से आरम्भ दो सूक्तो द्वारा पुनः पृथक् रूप से मरूतों की स्तुति की, किन्तु बाद के छः सूक्तो द्वारा इन्द्र की ही स्तुति की गयी है।

२८. अग्नि के पलायन की कथा

ऐसी एक श्रुति प्रसिद्ध है कि वैश्वानर, अग्निगृहपति, यविष्ठ पावक और अग्नि सह सुतं आदि भ्राताओं के वषट्कार द्वारा छिन्न भिन्न होनें पर अग्नि सोचीक देवों के पास से चले गये । तत्पश्चात् वह वसुओं जलों और वनस्पतियों में प्रवेश कर गये।

---

[1] तदेव, ११७०,२

[2] तदेव, ११७०,३

[3] तदेव, १.१७०,४

[4] वृहददेवता, ७६१८१

हव्य वाहन अग्नि नष्ट हो जानें के पश्चात असुरगण प्रकट हुए। युद्ध म असुरों का वध करने के पश्चात् देवगण अग्नि की खोज में इधर उधर भटकनें लगे। तब यम और वरूण नें उसे दूर से देख लिया। वह दोनों उसे अपनें साथ लेकर देवताओं के पास गये। अग्नि को देखकर देवों ने कहा– "हे अग्नि! हमारी हवियों को वहन करों, हमसे वर ग्रहण करो, हे चित्रभानु! हमारी सेवा करो जिस पथ से देवगण गये हैं। उस पथ को तुम श्रेष्ठ भाव से स्वयं सुगम बनाओ। देवों के ऐसा कहनें पर अग्नि नें उत्तर दिया– "आप सब देवों नें मुझसे जो कुछ कहा है, उसे मैं करूँगा मुझे पञ्चजन का हाता बनायें। शालामुख्य, प्रणीत, गृहपति के पुत्र, उत्तर दक्षिणाग्नि इनको पञ्चाग्नि माना गया है।

यास्क और औपमन्वय नें मनुष्यगण, पितृगण देवगण, गन्धर्वगण सर्पगण, राक्षसगण, असुरगण अथवा गन्धर्वगण, पितृगण देवगण, असुरगण यक्ष और राक्षसगण इन्हें ही पञ्चजन माना है।

शाकटायन् के विचार से यह चार वर्ण और पॉचवें निषादगण हैं। फिर भी शाकपूणि का विचार है कि यह चार ऋत्विज और यजमान हैं। इन्हें (ऋत्विजों को) होतृ, अध्वर्य, उद्गातृ और ब्रह्मन् कहते हैं।

आत्मवदियों के कथनानुसार यह चक्षु, श्रोतृ, मन, वाच् और प्राण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें गन्धर्व और अप्सरायें, देवता, मनुष्य और पितर, तथा सर्प कहा गया है, साथ ही अन्य पार्थिव जीवों तथा अन्य देवों को भी (इनके अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है) जो यज्ञ भाग प्राप्त करते हैं। मुझे दीर्घायुष्य और विविध हवियॉ प्राप्त हों तथा मेरे ज्येष्ठ भ्रातागण प्रत्येक यज्ञ में सुरक्षित रहें और प्रयाज तथा अनुयाज, घृत और सोम यज्ञ के बलि–पशु के देवता हम ही हों तथा यज्ञ के देवता भी हम ही हों।

"तवाग्नेयज्ञ"[1] शब्दो द्वारा इसकी स्वीकृति दी गयी और वह स्वीकृति बन गयी । उसे तीन सहस्र तीन सौ उन्तालिस देवो नें सब प्रकार का वर दिया। अपने अडगो को हिलाते हुये भ्राताओ सहित प्रसन्न हुए और अतन्द्रित होकर यज्ञो में होता का कार्य सम्पन्न करनें लगे।

आगे चलकर उनकी अस्थियाँ देवदारू वृक्ष बन गयीं, उनका मेदा और मास गुग्गुल, उनके स्नायु, सुगन्धित तेजन और उनका शुक्र रजत और कंचन। उनके शरीर के रोग काश,उनके केश, कुश, उनके नख कूर्म, उनकी अतड़ियाँ अवका, उनकी मज्जा बालू और शर्करा तथा उनके रक्त और पित्त गेरू आदि जैसी विविध धातुयें बन गये। इस प्रकार "महत्" से आरम्भ तीन सूक्तों[2] मे अग्नि और देवताओं का वार्तालाप वर्णित है।

२६. देवापि की कथा

कुरू वंशीय राजा ऋषिषेंण के दो पुत्र देवापि ज्येष्ठ और शातनु कनिष्ठ थे, किन्तु राजकुमार देवापि त्वचा दोष से पीड़ित था। राजा ऋष्टिषेण का स्वर्गवास होनें के पश्चात उनकी प्रजा नें उन्हें राज्य दिया, किन्तु एक क्षण विचार करके उन्होंनें अपनीं प्रजा से कहा—

"मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ, शान्तनु ही तुम्हारा शासक हो।" इससे सहमत होकर उनकी प्रजा नें राजा के रूप में शान्तनु का राज्याभिषेक किया। कुरु के वंशज चले गये। तत्पश्चात् उस राज्य में पर्जन्य नें बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की। परिणामस्वरूप अपनीं प्रजा के साथ शान्तनुं देवापि के पास आये और उस धर्म व्यतिक्रम के लिये उनका प्रसादन किया तत्पश्चात् अपनीं प्रजा सहित उन्होंनें देवापि

---

[1] ऋ०, १०५१६
[2] ऋ०, १०५१५३

को राज्य देना चाहा एतदर्थ शातनु द्वारा विनम्रता पूर्वक निवेदन करनें पर देवापि नें उत्तर दिया–

मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ, क्योंकि त्वचा दोष से मेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। हे राजन्! मैं स्वयं वर्षा के लिए तम्हारे यज्ञ पुरोहित का कार्य करूँगा। तदनन्तर शंतनु नें देवापि को अपना पुरोहित नियुक्त करते हुए उनसे ऋत्विज के रूप मे कार्य करनें के लिए कहा। इस प्रकार देवापि ने यथा–विधि वर्षा करानें वाला कर्म सम्पन्न किया और उसनें "वृहस्पतेपति"[1] ऋचाओ से बृहस्पति का यज्ञ किया। इस समय जातवेदस् नें उसे इस सूक्त की 'दधामते द्युमती वाचम् आसन्"[2] ऋचा का बोध कराया। फलतः प्रसन्न होकर बृहस्पति नें देवापि को दिव्य वाणी प्रदान की तथा इससे उन्होंनें वर्षा करानें के लिए चार ऋचाओं[3] से देवों की और शेष ऋचाओं[4] स अग्नि की स्तुति की। इस प्रकार शान्तनु के राज्य में वृष्टि हो गयी। प्रज धन्य–धन्य से सम्पन्न हो गयी।

३०.सप्त वध्रि की कथा[5]

ऐसी श्रुति है कि भरत वंशीय राजा अश्वमेध पुत्र विहीन था। पुत्र प्राप्ति के लिए उसनें ऋषि के सहयोग से अनुष्ठान प्रारम्भ किया। परन्तु सात बार वह इस अभिप्राय में असफल रहा। अतः अन्ततोगत्वा आठवीं बार भी विफल हो जानें पर उस ऋषि को वृक्षद्रोणी में रखकर एक गर्त में फेंक दिया। वहॉ वह रात्रि भर पडा रहा। ऋषि नें वहीं पडे रहकर अश्विनौं[6] सूक्तों के माध्यम से शुभस्पति(प्रकाश के अधिपति) की स्तुति की। तत्पश्चात् उस ऋषि को गर्व से ऊपर उठाते हुए मरूत्

---

[1] ऋ०, १० ६८,१–३
[2] तदेव, १० ६८,२
[3] तदेव, १० ६८,४–७
[4] तदेव, १० ६८,८–१२
[5] वृहददेवता, ५.८२–८६
[6] ऋ०, ५ ७८

देवताओं नें उसे सफल कर दिया। इस प्रकार राजा की चिर प्रतीक्षित मनो कामना पूर्ण हो गयी। आगे चलकर ऋषि के द्वारा द्रष्टमंत्र निकलते हुए गर्भों के लिए आमन्त्रण स्तुति के रूप में प्रयुक्त होनें लगे।

३१.चायमान और प्रस्तोक की कथा[१]

प्राचीन काल की बात है। कि अभ्यार्तिन और साज्र्जन्य नें वारशिखों को विजित करके अपनें गुरू भरद्वाज को प्रचुर मात्रा में धन प्रदान किया पर इन्द्र द्वारा देखे जानें पर भरद्वाज और गर्ग नें 'दयान्'[२] और 'प्रस्तोकः'[३] से आरम्भ होनें वाली ऋचाओं द्वारा उसके दान की स्तुति करनें लगे।

'दयान् अग्नेः'[४] ऋचा द्वारा ऋषि अपनी ओर से उसके दान की स्तुति करनें लगे और स्वयं ही प्रदान की गयी वस्तुओं का उल्लेख करनें लगे।

जिन देवताओं का इन सूक्तों मे प्रसंगात्मक वर्णन हुआ है। उन्हीं को रथीतर नें सूक्त भाक् माना है।

३२. अगस्त्य एवं वशिष्ठ का जन्म[५]

एक बार मित्रावरूण देवताओं नें एक यज्ञ में रूपसी उर्वशी को देख लिया। वे उसके ऊपर इतनें आकृष्ट हुए कि उनका वीर्य स्खलित हो गया । उनका वीर्य एक कुम्भ में गिर गया तथा रात भर वहीं पड़ा रहा। उस स्थल पर दो वीर्यवान् तपस्वी ऋषि अगस्त्य एवं वसिष्ठ उत्पन्न हो गये। चूँकि वीर्य विविध रूपो से स्थल, कुम्भ और जल में गिरा था, अतः ऋषि श्रेष्ठ वशिष्ठ स्थल पर अगस्त्य कुम्भ से

---

[१] वृहददेवता, ५/१३६–४२
[२] ऋ०, ६ २७ ८
[३] तदेव, ६ ४७ २२
[४] तदेव, ६ २७ ८
[५] वृहददेवता, ५,१४६–१५७

तथा द्युतिमान् मत्स्य जल से पैदा हो गये। उस समय महा यशस्वी अगस्त्य खूँटे के आकार के समान होकर उदित हुये थे। एकमान से सीमित किये जाने के कारण उनका मान्य नाम भी पड गया।

कुछ लोग कहते हैं कि कुम्भ से नापनें का कार्य किया जाता है तथा कुम्भ से परिमाण लक्षित होता है। अतः कुम्भ से पैदा होनें के कारण ऋषि का दूसरा नाम कुम्भ पड गया।

ऐसी कथा प्रचलित है कि जिस समय जलों को ग्रहण किया किया जा रहा था उस समय वशिष्ठ एक पुष्कर(पुष्प) पर खड़े पाये गये थे।

पुष्कर पर खडे देखकर विश्वेदेवों नें चारों ओर से उस पुष्कर को घेर लिया। तत्पश्चात् जब वशिष्ठ जल से निकले तो वे महान तप करनें लगे। वशिष्ठ शब्द की उत्पत्ति श्रेष्ठ कर्म को उत्पन्न करनें अर्थ वाली वस् धातु से माना जाता है।

अतः इनका नाम इनके श्रेष्ठ गुणों के आधार पर वशिष्ठ पड़ा ।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार तपस्या में लीन वशिष्ठ नें अन्य ऋषियों के लिये उस समय अदृष्य इन्द्र को देखा था ।

ऐसा देखनें पर हरिवाहन इन्द्र नें इन्हें सोमपान को ग्रहण करनें के लिये कहा– 'ऋषयो वा इन्द्रम्' ब्राह्मण वाक्य से भी ऐसा स्पष्ट होता है।

३३. वशिष्ठ और वरूण का कुत्ता [१]

किसी समय रात्रि में सोते समय वशिष्ठ नें स्वप्न देखा कि वह वरूण के द्वार गये हैं। घर पहुंचनें पर उन्होंने अन्दर प्रवेश किया। अन्दर प्रविष्ट होनें पर एक कुत्ता भौकता हुआ वशिष्ट पर टूट पड़ा। काटनें के लिए दौड़ते हुए उस कुत्ते को

शान्त करके उन्होंनें 'यद् अर्जुन'[2] से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा उसे सुला दिया। ऐसा करने पर राजा वरूण नें उन्हें अपने पाश से आवद्ध कर दिया इस प्रकार आबद्ध हो जानें के पश्चात वसिष्ठ नें अपने पिता वरूण की "धीर"[3] से आरम्भ, बाद के चार सूक्तों की स्तुति करने पर उसके पिता नें उन्हे मुक्त कर दिया।

"ध्रवासु त्वासु"[4] ऋचा का उच्चारण करते ही उसके पाश गिर पडे।

३४. नहुष और सरस्वती की कथा

प्राचीन काल में अपनें को एक सहस्त्र वर्ष तक के लिए दीक्षित करानें की इच्छा से राजा नहुष इस पृथ्वी पर सभी नदियों से इस प्रकार कहते हुए कि– "मैं यज्ञ करनें वाला हूँ" इसके लिए या तो पृथक्–पृथक् अथवा द्वन्द्व रूप से अपना–अपना भाग मुझे प्रदान करो। ऐसा कहते हुए एक रथ पर बैठ कर पृथ्वी पर भ्रमण करनें लगे। नदियों नें राजा के ऐसा कहने पर उत्तर दिया–

अत्यन्त शक्तिशाली हम लोग किसी भी प्रकार आपके एक सहस्र वर्ष के यज्ञ सत्र के लिए सभी भाग नहीं दे सकती हैं। अतः हे नहुष! तुम सरस्वती के पास जाओ, वही तुम्हारे लिए सभी भाग लानें में समर्थ हो सकती हैं।

नदियों के ऐसा कहने पर राजा नहुष ने कहा–"ऐसा ही होगा" यह कहकर शीघ्रता पूर्वक सरस्वती नदी के पास गये । वहाँ जानें पर सरस्वती नदी नें नहुष का स्वागत किया और उन्हें दूध और घृत दिया।

राजा के प्रति सरस्वती के इस अद्भुत कार्य की वरूण के पुत्र वसिष्ठ नें दो ऋचाओं[1] में से प्रथम की द्वितीय ऋचा में स्तुति की है।

---

[1] बृहददेवता, ६.११–५
[2] ऋ०, ७.५५,२–३
[3] तदेव, ७८६ ८६
[4] तदेव, ७८८.७

३५.कण्व और प्रगाथ की कथा[1]

घोर ऋषि के दो पुत्र थे कण्व और प्रगाथ गुरू के द्वारा आज्ञा पाकर ये दोनों वन में रहनें लगे। एक बार बन मे प्रवास के वमय प्रगाध अपने ज्येष्ठ भ्राता कण्व की पत्नी की गोंद में सिर रखकर सो रहे थ। कण्व के उपस्थित हो जानें पर भी वे वे वहॉ से उठे नहीं ।

अतः पाप की शङ्का से क्रुद्ध होकर शाप देने की इच्छा से कण्व नें उन्हें अपने पैर से इस प्रकर जगाया जैसे कि वह अपनें तेज से प्रगाथ को भस्म कर देगे। जब प्रगाथ को ऐसा आभास हुआ कि उसके ज्येष्ठ भाई कण्व उस पर क्रुद्ध हैं, तो वह करबद्ध खड़े होकर उन दोनों का अपनी माता और पिता के रूप में वरण किया।

३६. कपिञ्जल के रूप में इन्द्र[2]

किसी समय इन्द्र स्तुति प्राप्त करनें की इच्छा से तीतर पक्षी बन गया। ऋषि के बाहर जानें के समय उस तीतर रूपी पक्षी ने ऋषि के दक्षिण स्थित होकर शब्द किया उस समय गृत्समद् आर्ष नेत्रों से पक्षी के रूप में इन्द्र को पहचानते हुए "कनिक्रदत्"[3] से आरम्भ बाद के दो सूक्तों[4] से उनकी स्तुति किया।

३७. कपोत नैर्ऋत[5]

प्राचीन काल में कपोत नैर्ऋत नाम का ऋषि था, जिसने दीर्घकाल तक किया।

---

[1] वृहददेवता, ६ १४०—१४६
[2] तदेव, ४ ६३—६४
[3] ऋ०, २.४२
[4] तदेव, २.४३.४३
[5] वृहददेवता, ८.६७—६८

ऐसी कथा प्रचलित है कि एक वन में कपोत ने इसके अग्निधान पर अपना पैर रख दिया था, तत्पश्चात् ऋषि आत्महितैषी वाक्यों से "देवाः"[1] सूक्त द्वारा कपोत की स्तुति किया।

३८. भूतांश काश्यप [2]

प्राचीन काल में श्रेष्ठ मुनियों के कोई सन्तान नहीं थी । इसलिए भूताश काश्यप नें सतान की कामना से विविध प्रकार के अनुष्ठानों को सम्पन्न किया।

भूतांश काश्यप की पत्नी नें काश्यप से कहा– "आपकी जितनी इच्छा हो मैं उतनें पुत्रों का प्रजनन करूँगी, आप केवल देवों की स्तुति करें तत्पश्चात् उनके पास समस्त द्वन्द केवल स्तुति की इच्छा से प्रस्तुत हो गये। उन्हें देखकर उसनें एक सूक्त के द्वारा उनकी स्तुति की। अश्विनौ इस सूक्त के सूक्तवाक् देवता हैं।

३६. राजर्षि, त्रसदस्यु और इन्द्र[3]

ऋग्वेद में "अदात्"[4] से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा राजर्षि त्रसदस्यु के दान की स्तुति की गयी है। इन्होने ५० बधुयें ७० गायें प्रदान की। अश्वों तथा ऊँटों के तीन यूथ और विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न, भूरे बैल भी प्रदान किये। इन यूथों को अग्रसर करनें के लिए एक अधिपति भी प्रदान किये।

ऋषि ने विवाह करने के पश्चात् मार्ग में जाते हुए इसका इन्द्र से वर्णन किया तथा "वयम्"[5] से शक्र की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर शचिपति इन्द्र ने कहा, " हे ऋषि! तुम वर मागों इन्द्र के ऐसा कहने पर विनम्रतापूर्वक ऋषि ने उत्तर

---

[1] ऋ०, १०.१६५

[2] वृहददेवता, ८ १८–२०

[3] वृहददेवता, ६ ५१–५७

[4] ऋ०, ८.१६.३६.३७

[5] तदेव, ८.२१

दिया– हे प्रभो! मैं एक साथ ही ककुत्स्थ जातीय पचास कन्याओं का रमण करूँ और इच्छा पूर्वक अनेक रूप धारण कर सकूँ तथा यौवन, अक्षयरति, शङखनिधि तथा पद्मनिधि मेरे गृह में सदैव वर्तमान रहे।

४०. विश्वामित्र गाधिन के पुत्र[१]

पृथ्वी पर शासन करने के पश्चात् तप द्वारा ब्रह्मर्षि पद तथा सौ पुत्रो को प्राप्त कर गाधिन के पुत्र ने अग्नि को सम्बोधित "सौमस्य मा"[२] सूक्त का और इसके बाद वैश्वानर को सम्बोधित दो सूक्तों[३] का उच्चारण किया।

४१. विश्वामित्र सुदास् और नदियाँ[४]

ऐसा प्रसिद्ध है कि दस राजाओं के साथ सुदास् का युद्ध हुआ था। उसमें इन्द्र की सहायता से सुदास् ने विजय प्राप्त की। सुदास् ने युद्ध से प्राप्त धन का कुछ भाग विश्वामित्र को दे दिया। विश्वामित्र उस धन को लेकर लौट रहे थे कि मार्ग में शुतुद्रि एवं विपाश नाम की दो नदियाँ पडी। यज्ञ पुरोहित होने के कारण सुदास् के साथ विपाश और शुतुद्रि के संगम पर जाते समय ऋषि ने 'शम्' शब्द द्वारा इन दोनों नदियों को संबोधित किया। चूँकि नदियों में अथाह जल था अतएव उन्हें पार करना दुष्कर था।

इस प्रकार ऋषि ने ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्वारा[५] नदियों की स्तुति की और उसके प्रत्युत्तर में नदियों के कुछ मंत्रों[६] के द्वारा विश्वामित्र को पार जाने का उपाय बताया। इस प्रकार विश्वामित्र सुदास् द्वारा गृहीत धन को लेकर अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गये।

---

[१] बृहद्देवता, ४.९५
[२] ऋ० ३.१
[३] देवता, ३२, ३
[४] वृहद्देवता ४ १०५–१०६
[५] ऋ० ३.३३.३, ३ ३३.१०,११
[६] तदेव, ३.३३ ६, ८,४,१०

४२. विश्वामित्र और वाच् ससर्परीः वशिष्ठों के विरूद्ध अभिचार[1]

वाच् द्वारा कुशिको के अचेतनत्व को दूर कर दिये जाने के पश्चात् विश्वामित्र ने इन कुशिकों की सहायता से जमदग्नियों (ऋषियों) का पूजन किया तथा स्वयं दो ऋचाओं[2] के द्वारा स्तुति की। विश्वामित्र ने अन्य ऋचाओं[3] द्वारा घर जाते समय गाडी के अडगों और बैलो की स्तुति की। तत्पश्चात् घर जाकर विश्वामित्र ने स्वयं ही इन सब वस्तुओं को रख दिया। इसके बाद विश्वामित्र ने ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं[4] से वशिष्ठ के प्रति अभिचार प्रारम्भ दिया और वशिष्ठ को पराजित किया।

४३.मित्र वरूण और उर्वशी की कथा[5]

ऐसा प्रसिद्ध है जब दो आदित्यों ने अप्सरा उर्वशी को एक यज्ञ सत्र में देखा तो उनका वीर्य स्खलित हो गया। और जल से भरे कुंभ में गिर गया जो रात भर वहीं पड़ा रहा।

चूँकि यह वीर्य विविध रूपों में कुंभ, जल और स्थल पर गिरा था अतः ऋषि श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुए जबकि अगस्त्य कुंभ में और महा तेजस्वी मत्स्य जल में उत्पन्न हुए। इसमें अगस्त्य मित्र हुए और मत्स्य वरूण।

४४. रोमशा और वरूण[6]

वृहस्पति ने रोमशा नामक अपनी पुत्री राजा भावयव्य(स्वनय) को प्रदान किया। तत्पश्चात् इस घटना को जानकर और अपने प्रिय शखा स्वनय को देखने

---

[1] वृहददेवता, ४ ११६–११८

[2] ऋ० ३ ५३.१५

[3] ऋ०, ३ ५३ १७–१२०

[4] ऋ० ३ ५३ २१–२४

[5] वृहद्देवता, ५.१४६–१५२

[6] तदेव, ३ १५६. ४ १–३

की इच्छा से शचीपति इन्द्र तत्काल स्वनय के पास गये। राजा ने उनका हर्षपूर्वक विधिवत स्वागत किया और अडिगरस की पुत्री भी वहाँ आई। हर्षित होकर उसने उन लोगों की चरण वन्दना की। तब इन्द्र उससे मित्र भाव में कहा, "हे रानी! तुम्हे रोग है अथवा नहीं ?"

उसने सरलता पूर्वक बालसुलभ उन्हें संबोधित करते हुए 'उपोम'[1] में अपनी बात कही। इसके पूर्व की ऋचा [2] से सात्वना देते हुए राजा हर्षित हुए। तब उसनें एक पतिव्रता की भॉति अपने पति का अनुगमन किया।

४५. ऋणंचय को वभ्रु का दान[3]

कुछ लोगों का कहना है कि अत्रि ने ऋग्वेद के कुछ सूक्त[4] राजाओं को संबोधित किया, क्योंकि कोई व्याक्ति अपने को स्वयं कुछ नहीं दे सकता, जबकि ऋषि ने राजा से दान ग्रहण किया था। ऋणंचय ने अत्रि के पुत्र वभ्रु को उसने उस सोम यज्ञ के ऋत्विज् के रूप में चुना जिसमें एक सहस्र दक्षिणाऐं प्रदान की गयी। अतः वभ्रु ने ऋणंचय के लिए यज्ञ किया। और रसमों[5] के राजा ने उन्हें चार सहस्र चार सौ गायें और एक सुवर्णयज्ञीय पात्र विशेष दिया[6] और उन्होंने प्रवर्ग्य के लिए सुवर्ण यज्ञ पात्रों को प्राप्त किया। इन्हें प्राप्त करके जाते हुए मार्ग में ऋषि मध्यम अग्नि तथा इन्द्र ने प्रश्न किया और उन्होंने उन सबका भद्रम्[7] से आरम्भ चार ऋचाओं द्वारा वर्णन किया।

---

[1] ऋ० १.१२६–७

[2] तदेव, १.१२६.६

[3] बृहद्देवता, ५.३२.३६

[4] ऋ० ५.४१–५१

[5] तदेव, ५.३०.१४

[6] तदेव, ५.३०.१५

[7] ऋ० ५.३०.१२–१५

४६. अत्रि की दान स्तुति[१]

ऋग्वेद में "यत् त्वा सूर्यं"[२] से आरम्भ पॉच ऋचाओं में अत्रियों के कर्मो का कीर्तन है । कुछ लोग कहते है कि 'अनस्वन्ता'[३] से आरम्भ अग्नि को संबोधित सूक्त में दान से तुष्ट होकर स्वयं अत्रि ऋषि ने इन राजर्षियों की प्रशंसा की है।

राजा त्रयरूण ने दस हजार तीन सौ बीस गायें और दो बैलों सहित एक सुवर्ण रथ अत्रि को दिया। अश्वमेध ने सौ बैल और त्रसदस्यु प्रचुर धन दिया।

४७. भरद्वाज की उत्पत्ति[४]

अंङिगराऋषि के पुत्र वृहस्पति हुए। इनके पुत्र का नाम भरद्वाज था। इन्हें विदधिन् कहा जाता है। इन्हें मरूतों का गुरू कहा जाता है। इस प्रकार ये अंङिगरा के पौत्र के रूप में वर्णित हैं। ऋग्वेद के छठे मण्डल के द्रष्टा ऋषि भरद्वाज एवं उनके पुत्रगण कहे गये हैं।

४८. शश्वती की कथा

अङिगरस की पुत्री शश्वती'अन्वस्य स्थूरम्'[५] ऋचा में शश्वती ने स्त्री के रूप में रहते हुए अपने पति की स्तुति की है।

ऋषि ने उस आसङ्ग को पुनः पुरूष बना दिया,[६] जो स्त्री हो गया था। 'स्तुति' से आरम्भ चार ऋचाओं[७] में आसङ्ग ने स्वयं अपने ही दान का कीर्तन किया है।

---

[१] वृहद्देवता ५.२८–३२
[२] ऋ० ५.४०.५६
[३] तदेव ५.२७
[४] वृहद्देवता ६.४०–४१
[५] ऋ० ८.१–३४
[६] ऋ० ८.१
[७] तदेव, ८.१.३०–३३

४६. इन्द्र के पुत्रवधू की कथा[1]

इन्द्र की पुत्रवधू ने देवताओ को आया हुआ देखकर किन्तु यह देखकर कि यज्ञ के लिए शक्र(इन्द्र) नहीं आये। उन्हें इन्द्र को परोक्ष रूप से सबोधित किया। "मेरे श्वसुर नही आये हैं, यदि आयें तो अन्न का भक्षण और सोम का पान भी करें।"[2] उसके इस वचन को सुनकर वज्रधर इन्द्र उसी समय आये। और उत्तर वेदि पर खड़े होकर उच्च स्वर से सरोस्वत्[3] कहा।

५०. राजा मित्रातिथि की कथा[4]

ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा मित्रातिथि की मृत्यु पर कवष एलूष ऋषि ने "यस्य से आरम्भ चार ऋचाओं[5] के द्वारा मित्रतिथि के पौत्र उपमश्रवस को सांत्वना दी।

५१. सव्य की कथा[6]

सव्य शतर्चिनों में से एक हैं जो इन्द्र के ही एक रूप हैं। इन्द्र के समान पुत्र प्राप्ति की कामना करने वाले अंडिगरस ऋषि के योग बल के परिणामस्वरूप स्वयं इन्द्र ही सव्य के रूप में उनके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए थे।

---

[1] वृहद्देवता ७ ३०—३२

[2] ऋ० १० २८.१

[3] तदेव १० २८.२

[4] वृहददेवता ७.३५—३६

[5] ऋ० १० ३३ १—६

[6] वृहद्देवता ३ ११३—११७

पञ्चम अध्याय

निरुक्त में वर्णित कथाएँ

निरूक्त में वर्णित कथाएँ

१. दिव्य त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा

मैक्डानल के अनुसार त्वष्टा नाम से अनेंक बार उल्लिखित देवता महत्त्व की दृष्टि से सविता के पश्चात् आता है । ऋग्वेद संहिता में इसके नाम का ६५ बार हुआ है त्वष्टा के लिए अलग से एक भी सूक्त समर्पित नहीं है।[1] त्वष्टा धुंधले स्वरूप वाले वैदिक देवों की श्रेणी में हैं।[2]

यास्क ने त्वष्टा को माध्यमिक कहा है। इसलिये इसे निघण्टु में माध्यमिक देवताओं के साथ संकलित किया गया है।[3] आचार्य शाकपूणि इसे पार्थिव अग्नि मानते हैं।

यास्क ने इसके तीन निर्वचन किये हैं–

१. तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ताः।

२. त्विषेर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणः।

३. त्वक्षतेर्वास्यात् करोतिकर्मणः।[4]

- नैरूक्त कहते हैं कि यह अपने भक्ष्य पर शीघ्र ही फैल जाता है, या उसका भक्षण कर डालता है। आग सहसा फैलती है जहाँ ईंधन मिलता है उसे पूर्णरूप से सहसा/शीघ्रता पूर्वक खा जाती है।

- यह दीप्त होती है, प्रकाशित एवं प्रज्जवलित होती है।

---

[1] वैदिक मैथलोजी मैक्डानल, पृ०३०३

[2] तदेव, पृ० ३०७

[3] तदेव, ८.१४

[4] तदेव, ८.१३

◆ तीसरा निर्वचन वैदिक स्वरूप को प्रकाशित करता है–यह करना अर्थवाली त्वक्ष् से निष्पन्न है। ऋग्वेद संहिता में त्वष्टा के पुरुषविध वर्णनो मे हाथ को छोडकर और किसी अंग का उल्लेख नहीं मिलता है।

त्वष्टा के स्थान के बारे में निश्चित् रूप में कुछ कह पाना बहुत कटिन है। ऋग्वेद संहिता में त्वष्टा को सोमपान के लिये बुलाया गया है[1]। अथर्ववेद संहिता में इसे सोम से भरे कलश को धारण करने वाला बताया गया है[2]।

मैत्रायिणी संहिता में इसे द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य अर्थात् अन्तरिक्ष में जाता हुआ कहा गया है।[3]

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि त्वष्टा सोमपायी इन्द्र के लोक (अन्तरिक्ष) का ही देवता है। सम्भवतः इसीलिये यास्क ने इसे माध्यमिक देवताओं में रखा है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से त्वष्टा त्वक्ष् से निष्पन्न है। सम्पूर्ण संहिता और ब्राह्मण साहित्य में इसका कोई आख्यात् रूप प्रयुक्त नहीं हुआ है। यास्क ने त्वक्ष को कृ के अर्थवाला बताया है। अवेस्ता में यह थ्वक्ष् (मेहनत से करना) और भारोपीय में त्वेक् रूप में है।[4]

मैक्डानल का कथन है कि अर्थ में यह तक्ष का समानार्थक दीख पडता है।[5] **अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रम्**[6] ऋग्वेद संहिता में तक्ष् का प्रयोग बनाना अर्थ में हुआ है। फलतः त्वष्टा का अर्थ निर्माता या तक्षक (तराशने वाला) प्रतीत होता है।

---

[1] ऋ० १२२६,६५,६
[2] अ०स०, ६४६
[3] मैं० स०, ४,१४,६
[4] डा० सिद्धेश्वर शर्मा, पृ०४५
[5] वैदिक वेदशस्त्र, मैक्डानल, पृ० ३०७
[6] ऋ० स०, १.६१६

२. पुरूरवस् और उर्वशी की कथा।[1]

निघण्टु में उर्वशी पद संकलित है।[2] उसकी व्याख्या करते हुए यास्क ने निरूक्त में लिखा है–

"उर्वश्यप्सरा उर्वभ्यश्नुत, अस्म्यामश्नुत, उरूर्वावशोऽस्या.।"

अप्सरा का निर्वचन करते हुए वे लिखते हैं–

"अप्सराः अप्सारिणी। अपि वाप्स इति रूपानाम।

.... तद्रा भवति रूपवती, तदनया ५५ त्तमिति वा. तदस्यै दत्तमिति वा।"[3]

इससे निम्न दो बातें विदित होती हैं–

१. उर्वशी रूपवती है। रूप रुच् से निष्पन्न माना है।[4] रुच् का अर्थ चमकना, दीप्त होना है। अतः उर्वशी चमकीली है।

२. अत्यधिक व्याप्त होने वाली है। प्रत्यक्षतः इन दोनों विशेषताओं से युक्त तत्त्व विद्युत् है। इस प्रकार निर्वचन से भी अर्वशी अन्तरिक्ष स्थानीय देवता सिद्ध होती है।

ऋग्वेद संहिता में उर्वशी का अत्यधिक मानवीकरण रूप उपलब्ध होता है। वहां यह पुरुरवस ऐल की प्रेमिका के रूप में वर्णित है। ऐल पुरुरवस् का ऋग्वेद संहिता में उर्वशी के द्वारा परित्यक्त अतएव व्याकुल विरही प्रेमी के रूप में वर्णन हुआ है।[5]

---

[1] शा० ली० एजेज

[2] नि०, ४२४७

[3] नि० ५.१३

[4] तदेव, २३

[5] ऋ०सं०, १०.६५

व्युत्पत्ति की दृष्टि से पुरूरवस् का अर्थ होता है–अत्यधिक शब्दो वाला (पुरु+रवस्) उर्वशी मे भी वशी शब्दार्थक वाश् ही व्युत्पन्न है।

पुरूरवस् को ऐल (इला का पुत्र) कहा जाता है। इला को घुतहस्ता एवम् घृतपेदी कहा गया है।[1]

नदी सहित उर्वशी के प्रसंग में एक बार 'इला' का वर्णन हुआ है।[2]

यास्क ने इला को अन्तरिक्ष स्थानीय देवियों में स्थान दिया है। कदाचित् इसके आधार पर ही पुरूरवस् को ऐल कहा गया है अथवा यह भी हो सकता है कि पुरूरवसृ गरजते मेघ का नामकरण हो। इला ऋग्वेद में दूध और घी के हविष् का मानवीकरण है। मेघ यज्ञ के धूम से बनने के कारण ऐल कहला सकता है।

वस्तुतः इनका जैसा भी स्वरूप हो, ऋग्वेद संहिता में ये दोनों परस्पर अत्यन्त आसक्त प्रेमी और प्रेमिका के रूप में और उर्वशी अप्सरा का रूपवती प्रेमिका (योषा) के रूप में वर्णन है।[3]

३. गृत्समद् इन्द्र और दैत्यगण

गृत्समद–गृत्स–मदन अर्थात मेधावी तथा आनन्दपूर्ण । गृत्समद मेंधावी का पर्यायवाची है। यह स्तुति करना अर्थवाली गृ धातु से व्युत्पन्न है।[4] अथवा गृत्से समूहे मदः यस्य सः अर्थात समूह में हर्षित होने वाला वृहद्देवता कम आचार्य शौनक के अनुसार गृत्समद का अर्थ है स्तुति से आनन्दित होनें वाला ।

जल की वर्षा जिस अवस्था में होनें लगती है। उस प्राकृतिक अवस्था का नाम इन्द्र है। गर्जन–तर्जन होते रहनें पर जब वर्षा होती है उस अवस्था को

---

[1] ऋ०स०, ७ ९६ ८, १० ७० ८

[2] तदेव, ५.४१.६

[3] तदेव, १० १२३ ५

[4] नि०, ६.५

ऋषियों मे वृत्र नाम दिया है। देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र उसे वृत्र से युद्ध करके अपनें वज्र से उसका वध करते हैं तब वर्षा होती हैं। इन्द्र के तीन काम बताये गये हैं ।

१ जल बरसाना।

२.वृत्र का वध करना।

३.कुछ अन्य पराक्रमयुक्त कर्मो को करना ।

४.कपिञ्जल के रूप में इन्द्र

अपनें विशिष्ट कर्म के आधार पर इन्द्र का कपिञ्जल नाम पड़ा है, क्योंकि प्रचण्डता से क्रन्दन करता हुआ यह वाणी को उसी प्रकार प्रवृत्त करता है जिस प्रकार नाविक नाव को। इसके प्रति कहे गये वाक्य इस प्रकार है–

हे शकुनि! अत्यन्त मडगलमय हो। ऐसा हो कि कोई प्रेत तुझे कहीं प्राप्त न कर पाये तथा जान न पाये।

उसकी व्युत्पत्ति कल्याणमय स्तुति करना अर्थवाली 'गृ' धातु से हुयी है अथवा गृ– निगरण से। यह कुत्सित वस्तुओं को निगलता है।

नैरुक्तों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति भ्रस्ज् से हुयी है अर्थात यह आप्लावित करता है। किसी पक्षी नें गृत्समद के प्रति जब कि वह किसी विशेष उद्देश्य को प्राप्त करनें के लिये आगे बढ़नें को था। रम्भण के स्वर में उचारण किया। यह कपिञ्जल ही था।[1]

---

[1] नि० ६.४ गृत्समदमधेमभ्युत्थित कपिञ्जलोऽभिववाशे । तदभिवादिन्येषा ऋग्भवति।।

५.सरण्यू की कथा

प्राचीन काल मे सरण्यू नें अमर स्त्री को मर्त्यो से छिपा लिया और उसी के समान रूपवाली दूसरी स्त्री बनाकर उसे सूर्य को दे दिया। सरण्यू नें अश्विन देवों को धारण किया तथा दोनो मिथुनों को त्याग दिया। इस सम्बन्ध में इतिहास प्रसिद्ध है। नैरुक्तों का कथन है– त्वष्टा की पुत्री सरण्यू नें विवस्वत् आदित्य से यम तथा यमी मिथुनों को धारण किया। वह समान स्वरूप की अन्य स्त्री को स्थानापन्न करके तथा मादा अश्व को ग्रहण करके भाग खडी हुई। उस विवस्वत् आदित्य नें अश्व का रूप धारण करके उसका अनुसरण किया तथा उससे समागम किया। उन दानों से अश्विनौं की उत्पत्ति हुयी। सरण्यू के समान स्वरूप वाली स्त्री से मनु उत्पन्न हुआ।[1]

६. ऋभुओं और त्वष्टा की कथा

यज्ञ के प्रवर्तक ऋभुओं नें परिश्रमपूर्ण कर्मो का उत्साह से सम्पादन करके मनुष्य होते हुये अमरता प्राप्त की । सुबन्धा के पुत्र सूर्य की भॉति देदीप्यमान ऋभुओं नें वर्ष में वस्तुओं को उनके कर्मों के साथ मिश्रित किया।

अत्यधिक शीघ्रता से कर्मो को समाप्त करके मेंधावी ऋभुओं ने अमरता प्राप्त की यद्यपि वे मनुश्य थे। प्रभु सूर्य की भॉति दृष्टिगोचर होते हुए प्रज्ञावान थे। सूर्य की किरणें भी प्रज्ञावान् कहलाती हैं।[2]

त्वष्टा अपनी पुत्री के विवाह का उत्सव मनाता है। अतः यहॉ सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड एकत्र है, जिसका विवाह हो रहा है है ऐसी महान विवस्वत् की पत्नी तथा

---

[1] नि०, १२.१०
[2] नि० १२ १०
[3] तदेव, १२ ११

यम की माता अदृश्य हो गई अर्थात रात्रि जो आदित्य की पत्नी हैं, आदित्य के उदय पर अदृश्य हो जरती हैं।[3]

७.इन्द्र और मरुद्गण

एक बार अगस्त्य नें इन्द्र को हबि देनें का निश्चय करके भी उसे मरुतो को

देनें का विचार बनाया तत्पश्चात् इन्द्र जाकर गिडगिडानें लगे– न तो आज है और न ही कल होगा, जो नहीं हुआ है उसे कौन जानता है? दूसरे का मन अत्यन्त चंचल है, जिससे सुनिश्चित्र वस्तु भी समाप्त हो जाती है। हम सोचते हैं कुछ होता है कुछ और।[1]

८. भृगु और अङ्गिरस और अत्रि के जन्म की कथा

भृगु ज्वालाओं से निकले। भृगु की उत्पत्ति (भृज् भूँजे जानें पर भी न जले) से हुई है। अङ्गिरा अंगारों से निकले। अंगार = अंक (चिन्ह) देने वाले। उन्होंनें कहा–

तीसरे व्यक्ति को यहीं खोजो, उसी से अत्रि उत्पन्न हुए। (अत्रि न तृतीय) अर्थात जो तृतीय नहीं हैं (अ+त्रि)।[2]

६.देवापि की कथा

निरुक्त में देवापि की कथा इस प्रकार मिलती है– कुरुवंशीय राजा ऋषिषेण के देवापि और शन्तनु दो पुत्र हुये। छोठे भाई शन्तनु नें अपना अभिषेक करा लिया तथा देवापि तपस्या करनें के लगा। इससे शान्तनु के राज्य में बारह वर्ष तक पानी नहीं बरसा। ब्राह्मणों नें उससे कहा– पुमनें अधर्म किया है। बड़े भाई को छोड़कर तुमनें अभिषेक करा लिया है, इस लिए तुम्हारे यहाँ पानी नहीं बरसता । शान्तनु नें

---

[1] नि०, ३ १७

देवपि को राज्य देने को कहा । देवापि ने उत्तर दिया – मैं तुम्हारा पुरोहित रहूँगा और तम्हारा यज्ञ कराऊँगा ।

देवों की भक्ति देवापि जानने वाले देवापि होता के स्थान पर बैठे। उन्होंने ऊपर से नीचे की ओर समुद्र अर्थात वर्षा वाले जल को छोडा।

होता के स्थान के लिए चुने जाने पर पुरोहिप देवापि ने शान्तनु पर कृपा करके ध्यान दिया, तब दानी वृहस्पति नें देवापि को देखकर उसे देवताओं के सुननें योग्य और वर्षा की याचना करनें वाली स्तुति प्रदान की की।[1]

१०.त्रित की कथा

किसी समय त्रित गायो को लेकर चारागाह से लौट रहा था। सालावृकी के क्रूर पुत्रों नें उसे कुएँ में ढकेल दिया। कुये में पडा हुआ वह देवताओं से प्रार्थना करता है –

मैं त्रित कुएँ में गिर पडा हूँ। कुएँ की ईटें सपत्नियों के समान कष्ट देती हैं। जिसप्रकार चूहे चर्बीदार (अन्न से युक्त=अन्नादि मिश्रण) सूतों को खा जाते हैं उसी प्रकार हे स्वामिन्! तुम्हारी स्तुति करनें वाले मुझको इच्छायें या चिन्तायें कष्ट देती हैं। हे रोदसी मेंरी इस दशा को जानों।[2]

११.सरमॉ–पणि की कथा

पणि नामक असुरों नें इन्द्र की गायों को चुरा लिया था। इन्द्र नें अपनी गायों को खोजनें का काम लिए सरमा को सौंपा। इन्द्र द्वारा भेजी गयी देवशुनी (सरमा) नें पणि नामक असुरों से गायों को छुड़ानें के लिए वार्तालाप किया।

---

[2] तदेव, ३१७
[1] नि० २१०
[2] नि०, ४६

इन्द्र की गाय को खोजते हुए सरमा पणि के पास गयी और कहा तुम इन्द्र की गायो को लौटा दो। इन्द्र से बैर मत करो पणियो नें उसे लालच दिया पर वह तैयार न हुई।

पुनः पणि कहते हैं कि हे सरमा ! तुम्हे देवताओं ने कष्ट दिया है। इस लिए

तुम इधर आई हो तो हम तुम्हे बहन मान लेते हैं। तुम यहॉ से लौट कर मन जाओ । हम सभी लोग हम सभी लोग मिलकर गायो को बंटवारा कर लेंगे।

सरमा पुनः कहती है—मैं तुम्हारी बहन बनना स्वीकार नहीं करूँगी । गायो को चाहनें वाले इन्द्रादि देवता तुम पर आक्रमण कर देंगे, तुम दूर भाग जाओ ।[1]

१२. विश्वामित्र, सुदास और नदियॉ

किसी समय विश्वामित्र, ऋषि अपनें यजमान राजा सुदास के यहॉ यज्ञ कराकर दक्षिणा में प्राप्त धन लेकर इस पार आनें की इच्छा से विपाशा (व्यास) और शतुद्रि (सतलज) के संगम पर आये। अन्य लोग उनके पीछे—पीछे आ रहे थे। उस समय नदियों में भयङ्कर बाढ़ आई थी। इस पार आनें की कामना से विश्वामित्र, ने सुगमता से तरणीय बन जानें के लिए नदियो से प्रार्थाना की कि हे नदियों ! "अल्प जल वाली हो जाओ।"

एक क्षण के लिए हे महान जल से पूर्ण नदियों! मेरी मैत्रीपूर्ण प्रार्थना पर अपनी गति को रोक दो । मैं कुशिक का पुत्र तथा सुरक्षा का इच्छुक एक उत्तम सूक्त द्वारा तुम्हारा आह्वान करता हूँ।

मेरी मैत्रीपूर्ण प्रार्थना पर प्रवाहित होना छोड़ दो। मैं कुशिक का पुत्र तुम्हारे लिए सोम तैयार करता हूँ। हे महान जल से सम्पन्न नदियों ! एक क्षण के लिए गति को रोक दो ।

---

[1] नि०, ११.२५

मैं रक्षा के लिए महान शक्तिशाली, अत्युत्तम , गम्भीर बुद्धि से पूर्ण स्तुति के द्वारा तुम्हारा आह्वान करता हूँ। नदियों ने उत्तर दिया –

वज्र को धारण करनें वाले इन्द्र नें हमारे मार्गों को खोदा, उसनें नदियो को घेरने वाले वृत्र को नष्ट किया। सुन्दर हाथों वाला देवता सविता हमें यहाँ लाये , उसकी प्रेरणा से विस्तृत हुयी कहती हैं –

हे गायक हम तेरे वचनो को सुनेंगे, तू इस रथ में दूर से आया है। मैं स्वयं को तेरे लिए नीचे झुकाती हूँ जैसे कि दूध पिलाने वाली माँ अपनें शिशु के लिए नीचे के लिए अथवा जैसे कोई कन्या अपने प्रेमी का आलिङ्गन करने के लिए स्वयं को झुकाती है।

षष्ठ अध्याय

बैदिक कथओं की उत्पत्ति एवं उनका संदेश

वैदिक कथाओं का मूल्यांकन एवम् उनका संदेश

साहित्य समाज का दर्पण है । काल विशेष के साहित्य मे तद्युगीन मान्यतायें प्रतिविम्बित हो जाया करती हैं। वैदिक साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। ब्रह्मण युग को यदि कर्मकाण्डयुग कहा जाय तो, सम्भवतः अतिशयोक्ति न होगी । परम्परागत यागो की उहापोह, उनके स्वरूप, विविध चिन्तन तथा सगति इन ब्राह्मण ग्रन्थों का विषय बना। यही सगति की भावना ही अधिकाश ब्राह्मण ग्रन्थो के आख्यानों का मूल कारण बनी। यह बात और है कि कुछ ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक और दार्शनिक तथा अन्य कथाये भी कर्मकाण्ड के प्रयोजन से ब्राह्मणो मे यज्ञो के प्रसंग में विनियुक्त कर ली गई अतएव सारी की सारी कथाये अन्तत कर्मकाण्डपरक हो गई । आधुनिक युग की बदली हुई परिस्थितियो मे विशुद्ध साहित्यिक चेतना वाले पाठको को न तो मानसिक संतोष ही दे सके और न ही कौतुहलवृत्ति को ही शान्त कर सकें, और न ही ये कथाएँ ब्रह्मानन्द सहोदर कहे जाने वाले रस की कल्पनामात्र अनुभूत करा सकें। इसके विपरीत आधुनिक पाठकों को ये कथाएँ नितान्त हास्यास्पद प्रतीत होती होंगी। किन्तु इन कथाओ का अपना एक मूल्य है, कि इनके अध्ययन से हम तत्कालीन मानव के मानसिक तथा मानव के मानसिक स्तर तथा सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियो से अवगत हो सकते हैं। आज के युग मे इन कथाओ के अध्ययन का यही प्रयोजन है। इतना ही नहीं यही कथाएँ परवर्ती लौकिक साहित्य की आधारशिलाएँ हैं। इसदृष्टि से भी इनके अध्ययन की आवश्यकता है। इन कथाओं के अध्ययन एव मूल्याकन के सम्बन्ध में इतना अवश्य अपेक्षित है कि इनका मूल्याकन आधुनिक मानदण्डों की दृष्टि से नहीं अपितु तद्युगीन आधार पर होना चाहिए। इन्हें आधुनिक साहित्यिक कसौटी पर कसना इतिहास के प्रति भारी भूल होगी।

शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों मे वर्णित कथाओं को दार्शनिक, ऐतिहासिक एव सृष्टि प्रक्रिया सम्बन्धी तथा ऐतिहासिक इन तीन वर्गों मे रख सकते हैं। इनसे तत्कालीन इतिहास दार्शनिक चिन्तन के विकास तथा धार्मिक मान्यताओ का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। साथ ही साथ आधुनिक साहित्य का रूप जिसे हम आज देखते हैं अपने मूल रूप में सहिताओ और ब्राह्मणो की विविध कथाओ मे हीं समाविष्ट है। इस दृष्टि से भी इनके विकास क्रम का अध्ययन अति रोचक होगा। संहितागत और ब्राह्मणगत कथाओं में सम्वाद तत्व तो इतने सुन्दर ढंग से उपन्यस्त हैं कि परवर्ती साहित्य में इतना विकास असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। वैदिक साहित्य में रूपक का प्राधान्य और साथ ही अतिशयोक्ति की प्रकृति अवश्य दृष्टिगत होती है। किन्तु इन आख्यानो को मानवीय मूल्यों से वंचित रखना कथमपि न्यायोचित नहीं होगा।

वैदिक कथाओं का संदेश

वैदिक कथाओं के माध्यम से वैदिक कवि ने अपनी तपःपूत ज्ञानरश्मि के आलोक से रजस् एवं तमस् की अरण्यानी मे भकटते हुए मानव के अन्धकाराच्छादित जीवन–पथ को आलोकित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कवियों का संदेश है कि–देवता सरल चित्त भोले–भाले मानवो से प्रेम करते हैं। उनके कष्टो को देखकर द्रवित हो जाते हैं। एक ही आह्वान पर दौड पडते है, रक्षा करते हैं, वरदान देते हैं और स्नेह का स्रोत प्रवाहित करते हैं। वे मानवो के साथ उठते बैठते हैं। इन्द्र, अग्नि, अश्विन, उषस्, सविता और सूर्य के द्वारा दिये गये विविध वर इसके प्रमाण हैं।

यदि इन्द्र और वृत्र को मानवीय वृत्तियो के प्रतीक मान लेते हैं तो उनका युद्ध मानव मन की सहज दैवी और आसुरी वृत्तियो के सतत संघर्ष का रूपक होगा, जो सर्वत्र सभी कालों में सहस्रों रगमंचों पर एक ही साथ अभिनीत हुआ और

आज भी हो रहा है तथा भविष्य मे भी होता रहेगा। च्यवन का वृत्तान्त जहाँ एक ओर वाजपेय विधा का रहस्योन्मेंष है वहीं दूसरी ओर नारी के कौतूहल वृत्ति का, पतिपरायणता का, और इनसे बढकर पिता की इच्छा एव आदेश पालन का तथा दूसरो के अपराधों के लिए दूसरों की रक्षा एव मगल कामना के लिए अपने ही जीवन को उत्सर्ग कर देने का जीवन्त उदाहरण हैं। यदि च्यवन मे वैदिक ऋषि की गरिमा है तो सुकन्या सच्चे अर्थों मे वैदिक नारी हैं, जिसमें चरित्र की उच्चता है, हृदय की उदारता है। वह पति मात्र को देवता मानती है। वह अपनी सभी इच्छाओ उमंगो और स्पन्दनो को दबा देती है। अश्विन कुमारो की अनुकम्पा से च्यवन की यौवन प्राप्ति, सुकन्या के तप का ही फल है। यही कथा गुरूजनो के प्रति अपराध करने के दुष्परिणामो का भी निर्देश करती है। कठोपनिषद् मे वर्णित कथा अतिथि की गरिमा, विश्वास की महिमा, विचारो के निश्चय की दृढता तथा अग्निविद्या के रहस्योद्घाटन का मनोरम निदर्शन है। भारतीय जीवन की मान्यताओं मे अतिथि को इतना गौरव मिला है कि नन्हे से बच्चे की उपेक्षा के कारण तीन रात बिना खाये रह जाने के कारण, मृत्यु के देवता, यमराज को भी बालक नचिकेता को तीन वर देने पड़े। नचिकेता में भी दानशीलता की भावना की पराकाष्ठा है। पिता के द्वारा बूढ़ी तथा दूध देने में असमर्थ गायो के दान से उसका हृदय दुखी हो जाता है। हृदय की विशालता और परोपकार की भावना से वह अपने शरीर को दान करने की प्रार्थना करता है, एव आक्रोशयुक्त पिता के आदेश से शरीर को सार्थक बना देने के लिए यमराज के पास जाता है। यमराज के प्रलोभन एवम् उसको छू तक नहीं पाते हैं। यम ने तरह–तरह के प्रलोभन अद्‌भुत् वैभव दिखाये । वंश, सम्पत्ति तथा जितनी वस्तुओ की प्राप्ति के लिए दुनिया लालायित रहती है वह उसे सब कुछ देने के लिए उद्यत था। आग्रह केवल इतना था कि नचिकेता मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न न पूछे। इस प्रकार की मनोरथ पूर्ति सांसारिक जनो के लिए कितनी दुर्लभ वस्तु होती है। परियों के साथ विचरण, उद्यान, वीणा वादन, नृत्य और सगीत लहरी, नचिकेता

चाहता तो असंख्य वर्षों तक उन्हे भोग सकता था लेकिन सब ठुकरा दिया। जीवन बीस साल का हो, दो सौ साल का हो, दो हजार साल का हो, नश्वर ही होता है। उसने शान्तिपूर्वक कहा "**तवैव वाहास्तव नृत्यगीते**" । मैं तो मृत्यु का रहस्य ही जानना चाहता हूँ। और अन्तत बालक की श्रद्धाभावना और अडिगता के आगे यमराज को झुकना पडा।

ब्राह्मण के घर पैदा होने से कोई ब्राह्मण नही बनता सच्चा ब्राह्मण तो वही है जो सत्यवादी हो। जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने मॉ के पास आकर कहा मै ब्रह्मचारी होना चाहता हूँ किन्तु मुझसे सभी जगह लोग एक ही प्रश्न पूछते हैं कि तेरा वश क्या है? माता–पिता कौन हैं? मॉ उत्तर देती है कि, मेरे बच्चे यह तो मुझे भी मालूम नही । जब मै युवती थी मुझे नहीं मालूम कि मैं किस प्रकार गर्भिणी हुई और तेरी मॉ बन गयी। मुझे यह भी ज्ञात नही कि तेरा पिता कौन हैं? मै तो बस इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जाबाला है, तेरा नाम सत्यकाम है। तू सत्यकाम जाबाल है। वह गौतम के आश्रम मे गया। आचार्य ने पूछा तुम किसके पुत्र हो? और उसने उत्तर दिया— मुझे कुछ नही मालूम महाराज, मैने अपनी मॉ से भी पूछा था उसने भी वही उत्तर सुना दिया। उत्तर सुनकर आचार्य के मुँह से अपने आप निकल पडा तुम सचमुच ब्राह्मण हो। सच कहने में तुम्हे जरा भी भय नहीं हुआ। एक तुम्ही हो जो ब्रह्म विद्या के सच्चे अधिकारी हो।

पुरूरवा और उर्वशी की प्रेमकथा नारी के मातृत्व की उपेक्षा कर उसके विलासिनी रूप को ही सर्वस्व मानने वाले कर्तव्यच्युत, कामातुर मानव के प्रति शक्तिस्रोत नारी की शालीनता का प्रदर्शन प्रथमतः कठोर किन्तु परिणामत. अति मधुर झिडक है जो विभिन्न युगों में घटित होती आयी है। पुरूरवा शासन कार्य से उदास, प्रजानुरंजन से विमुख, दिन–रात भोगलिप्सा को शान्त करने में ही तत्पर किन्तु असफल और अतृप्त, मातृत्व बोध से झुकी हुई उर्वशी की भावनाओ और

इच्छाओ की अवहेलना कर देता है। और अंतत उसे उसका दुष्परिणाम भुगतना पडता है।

वशिष्ठ–विश्वामित्र की कथा परस्पर सौहार्द और स्नेह भावना की सूचक है। दोनो ही तपः पूत, उर्ध्वरेता और क्रान्तप्रज्ञ कवि हैं। दोनो मे ही मैत्री का परम साम्राज्य विराजता है। यदि वशिष्ठ में पृथ्वी की सी क्षमाशीलता है और पर्वत की ऊँचाई है तो विश्वामित्र मे ओज. परिपूर्णता, गरिमा और पुजीभूत पौरुष की व्यापनशीलता।

शौनःशेपाख्यान अति मधुर वैदिक गीत है। इस कथा का चरैवेति– चरैवेति वाक्य भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है। ऐतरेय ब्राह्मणकार के ये शब्द मानव मात्र को कल्पपर्यन्त प्रगति–पथ पर अग्रसर होने की सत्प्रेरणा प्रदान करते रहेगे।

शुनः शेप के आख्यान में रोहित को प्रेरित करने के लिए प्रस्तुत गीत का अभिप्राय आध्यात्मिक है।.. . . . .
रोहित शरीर है और इन्द्र उसकी आत्मा। आत्मा का संदेश है कि चलते रहो, चलते रहो। जागते रहने का नाम ही तो जीवन है। चलने वाला ही आत्मा का वरण करता है। कर्म विहीन, बैठा हुआ व्यक्ति पापी है, जघन्य है। आलस्य ही मूर्खता है, वही मरण है और चलते रहना विकास का प्रतीक है। अतएव चलते ही चलो सतत् गति से, विश्वास की दृढता के साथ सकल्प की गरिमा लेकर। चलते–चलते मनुष्य मधु के निर्झर सोमह्रद को पा लेता है।

निश्चय ही शुनःशेप में देवो की गरिमा, उनकी भक्तवत्सलता तथा हृदय में उद्‌भूत ऋजुता के प्रति अडिग विश्वास है जो अपने आप फूटसा पड़ता है। विश्वामित्र द्वारा शुनःशेप को पुत्र बनाने एवं मधुच्छंदस् को अधिकार वंचित करने की घटना भारतीय सस्कृति में अनुस्यूत गुणग्राहिता की भावना का जीता जागता चित्र

है। श्रद्धा देव मनु की कहानी भारतीय श्रद्धाभावना और देवता की ऋजुता की प्रतीक है। दध्यङ्आथर्वण का आख्यान राष्ट्रीय मगल के लिए जीवन को भी उत्सर्ग कर देने का सदेश देता है। दध्यङ्गुरुभावना की पूर्णता के लिए, विद्या की रक्षा के लिए अस्थि तक दे देता है। अरूण वृषजान की कहानी वैदिक गुरुओ की गाथा है। सोंभरि काण्व की कथा महान जनों की संगति ही श्रेय है, का चूडान्त निदर्शन है। उषास्ति चाक्रायण का वृत्तान्त अन्न के प्रभाव और महत्व को प्रतिपादित करता है। आत्रेय श्यावाश्व की कथा ऋषि की गरिमा के साथ की कवि साधना की कमनीय अभिव्यक्ति है। गर्भस्थ वामदेव के रूप मे भारतीय ऋषि की ज्ञानसम्पत्ति सप्राण हो उठी है। देवापि और शतुन की कथा मे गुरूजन की उपेक्षा का दुष्परिणाम वर्णित है। देवापि मे त्याग और लोक मगल की भावना है। राजगौरव उसकी दृष्टि मे तृण के समान है। अगस्त्य लोपामुद्रा और अन्तेवासी. . .. सवाद म जहॉ शिष्य मे अपराध को स्वीकार कर लेने की क्षमता है, वहीं अगस्त्य मे भी क्षमा कर देने की भावना। गुरू को स्वभाव से ही निश्च्छल निष्कपट हृदय मिला है, जो वैदिक ऋषि की अपनी परम्परा प्राप्त निधि है। लोपामुद्रा मे भी जहॉ तपस्या की ऊँचाई है, वही पर मातृत्व बोझ से झुक जाने की साध भी । वह उसकी पूर्णता के लिए आतुर भी हो उठती है, पति की कामना करती है। कुत्स दिब्य कर्म के लिए अकृत्य कर्म करता है, यज्ञ की रक्षा और देव हित की भावना से दीर्घजिह्वी की हत्या कर देता है। भावयव्य के उपहास पर आतुर रोमशा के वाक्य विचारों के नहीं, वस्तुत उसके भोले भाले नारी हृदय के उद्‌गार हैं। ऋजाश्व और वृकी की कथा भक्त को भगवान की प्रत्येक वस्तु प्यारी होती है, की सूचना देती है। वृकी रूपधारी अश्विनो के रासभ के लिए अंधा ऋजाश्व अकृत्य करता है, दूसरे के पशुओं को भी चुरा कर खिला देता है। प्राशित्रहरण की कथा मत्रों की महत्ता का प्रतिपादन करती है। आदर्श मानव, केवल मानव नहीं देवता या उससे बढकर भी होता है। इस बात का उदाहरण ऋजुओं के देवत्व प्राप्ति की कथा है। उनका चमस् विभाग सह नाववतु

सह नौ भुनक्तु तथा तेन् त्यक्तेन् भुजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् का संदेश देता है। इतना ही नहीं त्याग की पराकाष्ठा तो तब होती है, जब वे अपने माता–पिता को अपना यौवन दे देते हैं।

मनुष्य देवता के वश में नही, देवता ही मानव के वश में होता है। इस तथ्य को देखना हो तो, वशिष्ठो द्वारा पाशुद्युम्न के यज्ञ से इन्द्र को सुदास के यज्ञ में बुला लेने की घटना को देखें। सोचकाग्नि उन्हे अपने तीनो भाष्यों को न केवल पुनरुज्जीवत करता है, प्रत्युत उन्हें याग में भाग भी दिलाता है और आदर्श भाई का सदाचार प्रस्तुत करता है। यम–यमी के सांसारिक प्रलोभनो से विमुख होकर भारतीय मर्यादा की रक्षा करता है। कवष ऐलूष जाति बंधनो को तोड ऋषि कोटि मे आ जाता है। दासी और उशिक का पुत्र होकर भी कक्षीवान् मत्रद्रष्टा ऋषि हो जाता है। स्वनय की कन्या के साथ विवाह कर लेता है। उसके सम्मान में इन्द्र भी अपनी पुत्री वृचया को अर्पित कर देते हैं। आत्रेयी, अपाला और घोषा की कथाएं भक्ति विह्वल नारी के हृदय की निश्छलता और भोलेपन की तथा देवताओं के भक्तप्रेम की प्रतीक हैं। सोमहरण की कथा में लोक मंगल की कामना है। इन्द्र के द्वारा त्रिशिरस वध और त्रित पर उसका आरोपण पापकर्म, परैरपि यत्कृतं तत्तस्य सभाव्यते का अच्छा उदाहरण है। गृत्समद् की कथा में देवता की भक्तवत्सलता टपकती है। सुबन्धु की कथा में ऋषियो की जीवन सचारिणी शक्ति का वर्णन है। कण्व और प्रगाथा आख्यान में नारी की सहज वात्सल्य भावना मातृत्व की लालसा पुरूष हृदय की सकालुता और अंतत उसकी उदारता का चित्र है। मरुतों की जन्म कथा में देवता की दयालुता की मनोरम झाकी है। इन्द्र द्वारा असंग को नारी धर्म की शिक्षा में भारतीय नारी जीवन के प्राण लज्जा का संदेश हैं। ऋभुओं द्वारा तक्षणकर्म करने की घटना भारतीय समाज में कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करती है। मंत्रद्वेष्टा, याग, निंदक, वेदार्थदूषक पुत्र भी त्याज्य हैं।

श्रुति हमें आगे बढते रहने को, चलते रहने को कहती है। चलते–चलते मनुष्य मधु के परम उत्स सोमह्रद को भी पा लेता है, यही वैदिक कथाओं का चरम सदेश है। ऋजु बनो। ऋतानुगामी बनों। श्रेष्ठ का सम्मान करो, सबल बनो और आत्मा का वरण करो, मानव–मानव मे प्रेम हो, प्राणियो मे सद्भावना हो, यही इन कथाओ का निचोड है। आसुरी वृत्तियों को कुचल दो, त्याग के साथ भोग करो, देवताओं मे आस्था रखो यही इनका मूलमंत्र है।

यह श्रुति सदेश वस्तुत. अमृत का निष्कर्ष है। यह वह सोमह्रद् है जिसमे भारतीय ऋषि गोते लगाते हैं। और अन्त में श्रद्धा विनत्, आत्म विभोर ऋषि कहने को बाध्य हो उठता है– अपाम सोमममृता अमूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किम् नून स्मान्कृणवदराति· किम् धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य।

वैदिक देवता मानव के अति निकट हैं। इनकी सभी क्रियाए मानव जैसी है। इनमें गुण भी हैं और दुर्गुण भी। स्वय प्रजापति ब्रह्मा अपनी ही पुत्री उषस् के साथ वासना–तृप्ति करते हैं। सोम गुरु पत्नी तारा का अपहरण कर लेता है। पुरूरवा, आसन्न–प्रसवा उर्वशी के साथ दिन मे तीन बार वासना पूर्ति करता है। इसलिए आदर्श नारी होकर भी उर्वशी वासना के पीछे पागल पुरूरवा को फटकारती ही नहीं प्रत्युत स्त्रियो को भी मित्रता के अयोग्य और उनके हृदय को सालावृक के समान कठोर बताती है। गन्धर्वों की स्त्री लोलुपता प्रसिद्ध ही है। इन्द्र अहिल्या के जार का अभिनय करते है। प्रजापति वाक् को देखकर स्खलित हो उठते हैं। फलत भृगु, अंगिरा और अत्रि का जन्म होता है। वृहस्पति ज्येष्ठ भाई उचथ्य की गर्भिणी पत्नी के साथ बलात् संभोग और गर्भस्थ के मना करने पर उसे अधा होने का शाप दे देते हैं। दीर्घतमा दासी से भी सभोग कर काक्षीवान् को उत्पन्न करते हैं। विश्वामित्र भी अपने पिता के वीर्य से उत्पन्न न होकर पिता के जामाता के द्वारा पत्नी के लिए निर्मित चारू को खा लेने से उत्पन्न हुए थे। सरण्यू का चरित्र भारतीय नारी के

लिए लज्जा की बात है। अगस्त्य उर्वशी को देखकर स्खलित मित्रावरूण के वीर्य से उत्पन्न हुए । इसके अतिरिक्त वध्रिमती सप्तवध्रि असंग–शश्वती, सुकन्या च्यवन, अपाला, दिति–इन्द्र, अगस्त्य–लोपा–मुद्रा, इन्द्र–सेना, परावृक्क–कन्याए भावयब्य एवं रोमशा प्राशित्र हरण आदि की कथाओं मे भी किसी न किसी रूप मे वासना की गंध है। वशिष्ठ वरूण के घर में चोरी करते है। विश्वामित्र सुदास के धन को चुराकर भागते हैं। रुद्र भी देवों के धन को चुराते हैं और दण्ड पाते है। शुनशेप कथा में माता–पिता द्वारा ही पुत्र के विक्रय और हत्या के संकल्प के दर्शन हो जाते हैं। दीर्घतमा को उसकी ही पत्नी और पुत्र त्याग देते हैं। दास त्रेतन् उसे मार डालने का प्रयास करता हैं। वामदेव कुत्ते की मांस पकाते हैं। भरद्वाज पणि तथा वृबु सें दान ग्रहण करते हैं। इन्द्र यत्र तत्र जिस किसी से भी सोम की याचना करते हैं। कभी–कभी बलात् पी जाते हैं। एकत और द्वित अपने ही भाई त्रित को कुए मे गिरा देते हैं। इन्द्र कृत ब्रह्म हत्या का पाप बेचारे त्रित के ऊपर डाल दिया जाता है। किलाता कुलि के कहने पर श्रद्धा देव मनु पत्नी के आलम्भन को स्वीकार किया।

ये सभी दृष्टान्त मानव के भारतीय समाज के जीवन मूल्यो के नितान्त प्रतिकूल है। तो क्या ये देव हमारे लिए आदर्श हो सकते हैं? क्या इनके आचरण मानव के अन्तर्मन पर श्रद्धा के बीच अंकुरित कर सकते हैं? वास्तव मे हमे इनका अंधानुकरण नहीं करना हैं। देवता वास्तव में मानव मस्तिष्क की ही उपज हैं। अतएव तत्कालीन समाज और उसके गुण दोष देवों के चरित्र में भी उभर आये हैं। हमें इन दोषो से पृथक् उनके जीवन के पक्षों को ग्रहण करना होगा। प्रत्येक युग और काल में तत्कालीन समाज की मान्यताएं और अमान्यताएं तद्‌युगीन साहित्य में आरोपित हो जाती हैं। इसमें किसी का दोष भी नही है। अतएव उनसे घृणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम स्वयं भले बुरे की परख करें ।

प्रजापति अपनी तीनो ही सन्तानो– देवो, मानवो तथा असुरों को निर्देश देता हैं– द. .द... . द. ...। एक उक्षर की धारा मे से गगा, यमुना और सरस्वती की तीन अर्थवती धाराएं एकाएक सहस्रद्धा फूट पडती हैं। देवों के प्रति उसका निर्देश है कि दाम्यत–आत्मशासन करो। आत्मशासन जिसका मूल है ब्रह्मचर्य जिसकी शाखा एव प्रशाखा और अमृतत्व जिसका फल है वह दाम्यत अश्वत्थ है। असुरों के प्रति उसका अनुशासन है दयध्वम् दया करो। यह दया धर्म का मूल है। रक्त पिपाशा, हिंसा और विद्वेष दया के अभाव की संताने हैं। वह मनुष्यों से कहता है– दान दो, त्याग के साथ भोग करो। केवल अकेले खाने वाला केवल पापी होता है। **केवलाधोभवति केवलाधी**। यह प्रजापति और कोई नही बादलों मे चमकती, कड़कती विद्युत् है जिसकी चमक कभी–कभी हमारे पाप को इस तरह नग्न करके रख देती है जैसे हमे आत्मबोध कराती हुई सी हमारी कमियो को प्रदर्शित करती हुई सी हमारे लिए दमन, दान और दया की दिशा का संकेत सा कर रही हो। यह दैवी वाक् है। मानो बादल की स्निग्ध गभीर गर्जना प्रजापति के उन अक्षरों को प्रतिवर्ष दोहराती रहती है। एक ही उदार 'द' का पात्र भेद से अर्थ भेद भी हो गया। यही श्रुति की महिमा है।

धर्मात्मा व्यक्ति को चाहिए कि वह देवता और मुनियों द्वारा किये गये कर्मों को न करे और सुनकर उसकी निदा न करे। दूसरो को उलाहना देने से क्या लाभ? उनके आचरण में देखी गयी बुराइयों को कहने में कोई हित नहीं जो हम मानवों के लिए शोभन और अनुरूप हो हमें उसे ही करना चाहिए।

वैदिक कथाओं का राष्टीय जीवन में महत्त्व

वेद हमारे जीवन को सर्वथा शीतल करने वाले ऐसे अजस्र प्रवाह है जो अनन्त काल तक मानव मात्र को ऐहिक और पारलौकिक उदात्तता की सम्प्राप्ति की ओजस्विनी प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। वेद हमें श्रृगार बनकर, अग्निमय होकर,

आलोक विखेरने का उपदेश देता है। सदैव चलते रहने को कहता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, सेनापति और सैनिक, गृहपति–गृहणी और आचार्य सबको समान रूप से उद्‌बुद्ध करता है। कहीं–कहीं तो अचेतन नदियो और पर्वतो पर भी चेतना का आरोप कर उनमे संचरण शक्ति डाल देने तक की भी चेष्टा है। जीवन और जगत् से निराश हो दूर भाग जाने का भाव उसमें नहीं है। वैदिक ऋषि की दृष्टि में यह संसार अत्यंत मनोरम है। अयं वैलोकः प्रियतम (अथर्व सं० ८/१) और शरीर कहीं उससे भी अधिक प्यारी है। **'याः वै प्रियतमा तन्वः'** (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१) यह हमे उत्थान के लिए उत्प्रेरित करता है। **'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।'** उठो जगों हे बंधु जीवन और प्राण हमें प्राप्त है। अंधकार दूर हो गया हैं । ज्योति ने पदार्पण किया है। आत्म सूर्य की ऊर्ध्व मात्रा के लिए उसने मार्ग खोल दिया है। हम उस अवस्था में पहुँच गये है। जहा आयु भी आयु है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल मे सरमा पणि कथा मे सरमा का संदेश भारतीय नीति, राजनीति एवं कूटनीति का नन्हा सा बीज है जो बाद के साहित्य में सहस्रधा मुखरित हो उठा। पणियों सरमा से पूछा तू क्यों इधर उधर घूम रही है? तेरा रास्ता कितना दूरवर्ती है? विपरीत दिशा में गमन करना होता हैं। और तूने नदी के अगाध जल को कैसे पार कर लिया? सरमा ने दृढता से उत्तर दिया– अरे पणियों तुम्हें मालूम नही कि मै इन्द्र की दूती हूॅ। तुम्हारी महान् निधियों की कामना से आयी हूॅ। मेरे अतिक्रमण के भय से रसा भी कॉप उठी और मुझे मार्ग दे दिया। पणियों ने दामनीति से काम लेने की चेष्टा की उससे मित्रता के लिए हाथ भी बढाया और प्रलोभन भी दिया कि आओ तुझे हम तुम्हें अपना मित्र स्वीकार करते हैं। और तुझे अपनी गायो का स्वामित्व भी देते हैं। किन्तु सरमा ने कहा–जिसकी मैं दूती हूॅ उसकी ओर कोई ऑख भी नही उठा सकता। वह स्वयं शत्रु हंता हैं। अगाधसलिता नदियॉ भी उसके आगे सिर झुका देती हैं। यदि तुम लोग बढ–बढ़कर बातें करोंगे तो सदा के लिए सुला दिये जाओगे। पणियों नें अबकी दण्डनीति की चाल चली –

जिनको तुम खोजती हुई इस छोर से उस छोर भटक रही हो, बिना युद्ध किये इतनी आसानी से कोई यहाँ से ले नहीं जा सकता और फिर यदि यही होना होगा तो हमारे तीक्ष्ण आयुध किस दिन के लिये हैं। सरमा नें इस झासे को भी बृथा कर दिया 'अरे पणियों तुम्हारी बाते नांदानी वाली हैं, और फिर तुम्हारे शरीर भी बहुत कच्चे किस्म के हैं, तुम्हारे मार्ग भी भी कुटिल हैं । इतना जान लो कि इन्द्र तुझपर कभी दया नहीं कर सकेगा। पणियो ने फिर भेद की चेष्टा की, देवो ने कौन बडा भला ब्यवहार कर दिया है, तुम अवश्य उनसे सताई हुई हो आओ हम तुम्हे अपनी बहिन कहते और मानते हैं, तुम हमारी गायों की स्वामिनी बनकर रहो। सरमा उनकी अन्तिम चाल को भी व्यर्थ कर देती है मैं मातृत्वव स्वसृत्व कुछ भी नहीं जानती । इन सब बातों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। इसे इन्द्र और अंगिरस लोग जाने, उन्होंनें गायो की खोज मे भेजा है अच्छा हो कि तुम सब यहाँ से शीघ्र ही भाग जाओ अपनी जान तो बचालो।

इसप्रकार मार्ग की दुर्गमताओं को सहकर, रस को पाकर, विविध प्रलोभनो को ठोकर मारते हुये सरमा अपनें लक्ष्य को पूर्ण करती है। उसमे निश्चय की अडिगता है, विश्वास और आत्मसम्मान की सजगता है, और है निर्भीकता पूर्वक लक्ष्य की ओर सतत् गति से बढनें की क्षमता इसी आत्मबल व निर्भीकता और अडिगता के सहारे वह स्वामिकार्य को पूंर्ण कर, पणियों की सारी चालो को विफल कर उनके दुर्गों मे आग लगाकर आदर्श दूती का अभिनय करती है। वह दिखला देती है कि किसी परिस्थिति में किस प्रकार का आचरण होना चाहिए।

राष्ट्रीय अर्थ मे पुरुरवा उर्वशी का पुरुरवा एक दात्रिय राजा है, जिसने अप्सरा उर्वशी को अपनी पत्नी बनाया। प्रजा ने राजा को इसलिए चुना था कि वह दस्युओ से राष्ट्र की रक्षा तथा साम्राज्य की समृद्धि में दत्तचित्त रहेगा। किन्तु राजा प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल पत्नी उर्वशी तथा उसकी सहेलियों के साथ क्रीडा में

अनुरक्त और विलास—परायण हो चला। वह अपने कर्तव्य को भूल गया, विवाह के चार वर्ष बीत गये। पत्नी गर्भवती हो चली, किन्तु राजा की वासना अतृप्त ही रही वह सदैव उर्वशी के पास रहता। उर्वशी ने उसे प्रजापालन की ओर प्रेरित किया पर असफल रही। सभवत वह पितृ गृह भी चली गयी। पुरूरवा वहां भी पीछे—पीछे लगा रहा और उसके अभाव में अपने प्राण त्याग का संकल्प कर बैठा। उर्वशी उसे समझाती है कि स्त्री का हृदय भेड़िये के समान होता है, वह मित्रता के योग्य नहीं होती। तुम्हारे मेरे साथ रहने से न तुम्हारा ही कल्याण है, न मेरा ही, न तो बच्चे का और न प्रजा तथा राष्ट्र का ही बच्चा होने पर हम तुम दोनों साथ—साथ रहेगे उसे तब तुम बडे प्यार से खिलाना। और फिर संभवत· राष्ट्र कल्याण के लिये राजा को उसकी बात माननी पडती है।

इन्द्राणी तृषाकपि मे इन्द्र राजा हैं इन्द्राणी उनकी मंत्रिपरिषद् है। आधिकारी तृषाकपि राष्ट्रीय आय का बहुत बडा भाग स्वयं ले लेता है। परिषद उस पर रूष्ट होती है, और राजा से राजा की इन सब विषयों में सचेत न रहने की शिकायत करती है।

न राजा ही दैवी प्रतिनिधि है, और न तो राज सत्ता ही पैतृक वस्तु। प्रजारंजन करने वाला उसे प्रजा की धरोहर रूप में ही प्राप्त करता है।

राजा का कार्य है, व्यवस्था की स्थापना और बाहय उपद्रवों का शमन। अन्यथा राजा का कोई प्रयोजन नही। देव सर्वत्र असुरो से पराजित हो रहे थे। उन्होने परस्पर विचार किया कि हमारी ये पराजय राजा के अभाव के कारण है। उन्होंने सोम को अपना राजा बना दिया। सोम के नेतृत्व में उन्होंने राष्ट्रीय हित पर आधात करने वाले असुरों पर विजय पा ली। प्रस्तुत कथा शासन की लोकतांत्रिक पद्धति और राजा के कर्तव्यों का सुन्दर निर्देश करती हैं।

राष्ट्रनायक राजा नही वस्तुत. उसका पुरोहित तथा अन्य तपपूत एवं प्रबुद्ध जन होते है। उसे उनके विचारो का समुचित आदर करना होता है। जब उन्हे समुचित सम्मान नहीं देता तो राष्ट्र का पतन होता है।

गोपायनो सुबन्धु, विप्रबन्धु तथा श्रुतबन्धु का तिरस्कार कर मायावी किलाताकुलि को पुरोहित बनाता हैं। देवापि सतनु का अतिक्रमण कर राज्य करता है। त्रयरूण अपने पुरोहित वृषजान को अप्रसन्न करता है। सर्वत्र राष्ट्रीय पतन का आरम्भ हो जाता है। उसके निवारण तब होते है। जब मानवीय पुरोहितों एवं पुरूजनों को प्रसन्न किया जाता है।

एकता राष्ट्र की आत्मा है, प्राण है, एकता रहित प्रदेश भूभाग मात्र है। आत्मा विहीन अवयव सघात है। उसमे एकता रूपप्राण की प्रतिष्ठा के लिए प्राणों की बाजी लगानी होती है। शरीर का मोह छोड़ना होता है। देवासुर स्पर्द्धा मे देव असुरो से डर गये कि कहीं उनके वैमनस्य की सूचना उन्हे न मिल जाय। वे चतुर्द्धा विभक्त हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि शरीर लोभ का कारण है। उसी की रक्षा के लिए लोग पीछे हट जाते है। उन्होंने उसे वरूण राजा के यहॉ रखने का निश्चय किया और वहॉ हममें जो कोई लोभवश ऐसा न करे वह हमारे साथ न चले, उन्होने अपने शरीर को वरूण राजा के यहॉ रख दिया। उसी के प्रतीक रूप में तानूनप्त्र कर्म होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के अवसर पर राजा की सहायता करने वाला व्यक्ति ही सच्चा राष्ट्र प्रेमी है। और वही सच्चे अर्थों में सुखी होता है "जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तब सभी देवों ने समझा कि इन्द्र वृत्र को मार नहीं सका। सभी साथ छोडकर भाग गये केवल मरूतो ने ही इन्द्र का साथ न छोड़ा। अतएव उन्हें की यज्ञ में भाग मिला।" (ऐ० ब्रा० १२ वॉ अध्याय)

गुप्तचर राजाओ की ऑखे हैं। प्रत्येक अधिकारी एव कर्मचारी पर उसकी दृष्टि होनी चाहिए। राष्ट्रीय अर्थ मे वृषाकपि की कथा इसी राजाओ, गुप्तचरों और मंत्रियों का पारस्परिक, वैचारिक सामंजस्य ही राष्ट्र के कतयावव का मूल है। किरातार्जुनीय कार महाकवि भारवि के शब्दो में 'सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिम् नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः इन्द्राणी वृषा कपि' कथा राष्ट्रीय हित के इसी तथ्य को उदधोषिका है।

गुरूजनो के अनुशासन का पालन करना राजा का परम पुनीत धर्म है। इसके अभाव में उसे दण्डित और कलकित होना पडता है। इन्द्र देवराज है। जब इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का अपमान किया, वृत्र को मारा, यतियों को गीदड़ो के सामने फेक दिया, वृहस्पति को फटकारा तो देवो ने इन्द्र को सोमपान से वंचित कर दिया था, वेद कालीन राजपुरोहित प्रजाहित का पोषक एवं राज्य का संरक्षक है। वह राजा के अभिषेंक के समय उसमे अनन्त आकांक्षाओं का विधान करता है। ये जल शिवतम है, सब की औषध हैं, राष्ट्र की वृद्धि करने वालें हैं। उसे धारण करके ....इन्हीं से प्रजापति ने .. इन्द्र का , सोम का, वरूण का, यम एवं मनु का– सबका राज्याभिषेक किया था। इन्हीं जलों से तेरा राज्याभिषेंक करता हूँ कि तू इस संसार का अधिराज है

तेरी देवी रूपा जननी ने तुझे महान् से भी महान् एवं प्रजाओं पर शासन करने के लिए जन्म दिया।। पूषन् देव के हाथो अग्निवर्चस् द्वारा मै तेरा अभिषेक करता हूँ, तुझे केवल श्रीयश और अन्नादि प्राप्त हों किन्तु वह उससे शपथ भी लेने में नही चूकता– जिस रात्रि को तू पैदा हुआ उससे लेकर जिस रात्रि को तू मरेगा, उस क्षण तक जो कुछ तूने लोक में सुकृत किया या आयु पायी, या प्रजा मिली उस सबको मैं छीन लूँगा। यदि तूने मुझसे अर्थात प्रजा से द्रोह किया। और राजा भी शंका से रहित हो श्रद्धा भाव से शपथ करता है–अगर मै तेरे साथ द्रोह करूँ तो

मुझसे जन्म से मृत्यु तक जो कुछ मैने सुकृत किया है या आयु और प्रजा पायी है उसको तू छीन लेना।

यह है भारतीय वैदिक आर्यजनों की राष्ट्रीय हित चिंतन भावना की श्रेष्ठता जिसके बल पर विश्व के किसी भी साहित्य में भारत का मस्तक ऊँचा रखता है। राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है। वही सच्चा धर्म है। राष्ट्र हित के लिए उसकी मंगल कामना और शक्तिमत्ता के लिए राष्ट्ररक्षा रूप सर्वहुतयाग में जनता, जीवन और प्राण सबकुछ हवन कर देना चाहिए। दध्यड आर्थवण असुरों से राष्ट्र की रक्षा के लिए अश्विनों को न केवल मधु विद्या और न केवल अपने शिर प्रत्युत अपने अस्थि तक का दान कर देते हैं। वस्तुत उसका जीवन चरित् राष्ट्रीय इतिहास का अमूल्य रत्न है।

राजसत्ता किसी व्यक्ति पैतृक सम्पत्ति नहीं है। और न तो राजा दैवी प्रतिनिधि। देवों में भी राजसत्ता के लिए स्पर्धा हुई, जिसमे इन्द्र विजयी था। राजा अधिकारो का भोक्ता नहीं, प्रजा के अधिकारो का संरक्षक है राजसत्ता प्रजा की महती सत्ता है। वह उसकी धरोहर है जो राजा के पास रखी जाती है। राजा जब तक उस न्यास को सजोये रहता है तभी तक वह उसके पास रह सकती है अन्यथा राजा को चाहिए कि वह यह धरोहर प्रजा को पुनः लौटा दे। दुष्टरीतु पौंसायन और उसका पुरोहित तभी तक राजपद का अधिकारी है, जब तक वह उस थाती को सॅभालने में समर्थ है। कार्य शक्ति और जनमंगल की भावना के अभाव में प्रजा उन्हे राजच्युत एव वहिष्कृत कर देती है।

पृथ्वी हमारी माता है, हम पृथ्वी के पुत्र हैं माता "भूमिपुत्रोंअहमृपृथिव्याः" राजा जब माता पृथ्वी की और राज्यश्री की रक्षा करता है तब तक वह उसके पास रहती है, जब वह भोग विलास रत हो जाता है तो पृथिवी उसका साथ छोड़ देती है। राष्टीय अर्थ में पुरूरवा उर्वशी की कथा इसी सत्य का उद्घाटन करती है। इन

शाश्वत राष्ट्रीय मूल्यो को ही वैदिक ऋषि ने कथाओ मे उतारा है। कथाये ही किसी राष्ट्र के सुख दुःख की उसके हर्ष विषाद की अनुभवों भावो और ज्ञान विज्ञान की इतिहास है। इन्हीं कथाओ में ही राष्ट्रीय जीवन के श्वास–प्रश्वास, स्पदन स्फुरण निमेषोन्मेषु लडखडाने गिरने उठने और पुनः चल पड़ने के असंख्य निदर्शन भरे पडे रहते हैं। साहित्य में सुरक्षित छोटी–छोटी ए कथायें माला में पिरोई गई अनन्त अमूल्य मणियाँ हैं। हम अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को सँवारते है। तथा भविष्य को नया स्वरूप प्रदान करते हैं। ये कथाएं शताब्दियों से जनमानस का रजन करती हैं। ये ऐसे स्रोत है जो ऊपर गिरते हैं। प्रेरणा की स्रोत हैं। कभी रूक भी जाते हैं किन्तु फिर दुगने वेग से चल पडते हैं। इन कथाओं में कहीं राष्ट्रीय जीवन के ऑसू विखरे हैं तो कही उसकी निश्छल मधुर मुस्कान के चित्र हैं, कहीं हास्य विनोद हैं कहीं गतिमयता है तो कहीं उसके गम्भीर दार्शनिक चिन्तन। ये समय की शिला पर अंकित युग के कठोर सत्य हैं ये कथाए ही वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय इतिहास हैं। इनका अध्ययन ही राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन है। इतिहास मे देशकाल के अतिरिक्त शेष सब सत्य हैं वास्तविकता तो यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनो मिलकर ही सच्चे अर्थों में इतिहास कहलायेंगी। भारतीय इतिहास परमम्परा देशकाल के परे है। वह तो सार्वदेशिक व सार्वकालिक आदर्शों और सत्यों को ही इतिहास मानती है। और इस दृष्टि से वेदमाता में अपने स्नेहिल आंचल मे इतने अधिक रहस्य सजो रखे भारतीय समाज का प्रत्येक श्रद्धालु व्यक्ति इससे आप्यायित होता रहेगा।

वेदमाता के अंक में सुरक्षित इतिहास सस्कृति तथा नवनवोन्मेष के इन्हीं तथ्यों को आत्मसात् करने के लिए इन कथाओं का स्वाध्याय आवश्यक है।

वैदिक कथाएं एवं उनमे उपलब्ध आध्यात्मिक तथ्य

वैदिक वाङ्मय की परिसमाप्ति प्रायश. अध्यात्म में हैं। वेदविद्या क्रान्ति दर्शी कवियों और मननशील मनीषियों के तप· पूत ज्ञान की अक्षय निधि हैं। अनुपम आलोक और दिव्यलोक के द्वारा दृष्ट सत्यचित्र है। अध्यात्म परपरा के अनुसार सम्पूर्ण वैदिक कथाएं अपने सच्चे स्वरूप मे आध्यात्मिक और कहीं–कही आधिभौतिक एवं आधिदैविक अर्थों की प्रतीक हैं। एक ओर यदि इनमें याज्ञिक कर्मों की संगतियो का समावेश है तो दूसरी ओर आधिभौतिक आधिदैवक के साथ ही साथ आध्यात्मिक तथ्यों का उन्मेष भी है याज्ञिक परम्परा के पीछे प्रच्छन्न यह आध्यात्मिक सत्य सामान्य मानव के परे था। कलुषित मानव मंन से वाणी के पवित्र आंचल पर दावा लगाने की उसकी पवित्रता को धूमिल करने की चेष्टा की, तब वाणी ने भी उससे दूर हट कर श्रद्धा विनत कुछ विरले लोगो के लिए अपने आंचल खोल दिए——

उतत्व. पश्यन्न ददर्शवाचम् ।
उतत्वः श्रृण्वन्‌श्रृणोत्यनाम्।।
उत त्वस्मै तन्व विससे।
जायैव पत्ये उशती सुवासाः।। मृ० १०। ७१४ ।।

अनधीतनिरूक्त वेदार्थ ज्ञान रहित व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी उसे नहीं देख पाता। (दूसरा किन्तु अर्थ न जानने वाला) उसे सुनता हुआ भी नही सुनता। किन्तु अर्थग्य के लिए यह अपने अंगो को ठीक उसी प्रकार खोल देती है जैसे पति की कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत श्रतुमती पत्नी अपने पति के लिए।

जो वाग्देवता को वस्तुतः वही जान सकता है जिसमें उस वाग्देवता का स्वयं अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन करने वाला व्यक्ति भारवाही स्थाणु के पुमान किन्तु अर्थज्ञ सारे मंगलों का भोक्ता और अंततः वेदज्ञान के कारण विगत् कल्मश होकर स्वर्ग प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

एक बार शाकपूणि को गर्व हो गया था कि वह सभी देवताओं को जानता पहचानता है। उसके समक्ष तब एक उभयलिगी देवता प्रकट हुआ। शाकपूणि उसे न जान सका, उसकी मिथ्या ज्ञान गरिमा चूर–चूर हो गयी थी। देवों ने एक बार ब्रह्मा की सहायता से असुरों पर विजय पा ली थी। उनको भी इसी प्रकार का गर्व हुआ था, इन्द्र, अग्नि, वायु सभी सोचते कि मैने ही विजय दिलायी है। उनके सामने यक्ष प्रकट हुआ। सबने उसे अग्नि को जीतने के लिए भेजा। अग्नि उसके पास गया। यक्ष ने पूछा– तुम कौन हो? अग्नि ने कहा मै जातिवेदस् अग्नि हूँ।

यक्ष ने पुनः प्रश्न किया– तुम्हारी शक्ति क्या है? अग्नि ने उत्तर दिया मै सबको जला सकता हूँ। यक्ष ने उसके सामने एक तिनका डाल दिया। अग्नि ने लाख प्रयत्न कर भी तृण को जला न सका वह देवो के पास लौट आया। देवों ने अब पुनः वायु को भेजा। यक्ष ने वायु से भी वही प्रश्न किया तुम कौन हो ? वायु ने कहा– मै वायु हूँ मै सबको उड़ा सकता हूँ यक्ष ने उसके समक्ष भी वही तिनका फेंक दिया। वायु ने निरंतर कोशिश की पर वह भी उसे हिला नहीं सके। वायु भी वहॉ से लौट आया। अंत में देवों ने इन्द्र को उसके पास भेजा इन्द्र के पास पहुॅचते ही वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। अब उसके सामने उमा नामिनी शिव शक्ति प्रकट हुई उसने बताया कि जिसे तुम यक्ष समझते हों वह साक्षात् ब्रह्म हैं। अब तो सभी देवों को अपनी वास्तविक शक्ति का ज्ञान हो गया। वस्तुतः यक्ष को वही जान सकता है जिस पर उमा नाम्नी शक्ति कृपालु हों।

किसी भी देश की पुरा कथाए तद्युगीन आधुनिक चिंतन धारा की साहित्यिक अभिव्यक्ति होती है। इन्द्र वृत्र युद्ध की कथा पाप की आसुरी वृत्तियों के दमन करने का रहस्य है। वृत्र पाप रूप है पापम्वै वृत्रः इन्द्र सद्वृत्ति रूप अतएव वृत्र का हन्ता है। वृत्र सद्वृत्ति को भ्रष्ट कर देता है। बुद्धि को मोहित कर देता हैं। वृत्ति ही शंक्वर है। वह शिव अर्थात ज्ञान लोक को ढ़के रहता है। वैदिक इन्द्र अध्यात्म अर्थ

में आत्मा है। इन्द्र से अनुप्राणित होकर ही देवो तथा इन्द्रियों का देवत्व और इन्द्रियत्व है। इसी से इन्द्रदेव देव है। देवाधिदेव है और महादेव हैं।

चत्वारि श्रृगा त्रयौऽस्य पादा·
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धौ वृषमों रोरवीति
महादेवो मर्त्या आ विवेश।।

यह वृषभ वस्तुत आत्मा है। मन , बुद्धि, चित्त और अहंकार उसकी चार सींगें हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान अथवा द्यावा, पृथ्वी और अतरिक्ष इसके तीन पैर है। ज्ञान और कर्म इसके दो सिर है। सात प्राण ही सात हाथ है। बलिष्ठ वृषभ सत् रजस् तथा तमस् के तीन बंधनों से बॅधा है। वृत्र ज्ञान को आवृत्र कर लेता है दिव्यालोकयुक्त आत्म तत्व उसे हटाने के लिए सचेष्ट हो उठता हैं। यही अजस्त्र चलने वाला देवासुर संग्राम है। वेद मे घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् से इसी तुमुल संग्राम का संकेत है। महारथी मानव मन असख्य संकल्पो से सयुक्त देह रूप दिव्य रथ पर बैठकर असुर विजय के लिए आत्मतत्व का आह्वान करता है। और इसी अध्यात्म युद्ध में विजयी बन जाने का नाम ही अमृतत्व प्राप्ति है।

प्राण ही इन्द्र है, प्राण ही असुर है यही दोनो प्रजापति की संताने है। इन्द्र को जब तक वृत्र रूप अज्ञान के मरने का विश्वास नही हो जाता। तबतक वह उचटा– उचटा सा रहता है अज्ञान रूप वृत्र समाप्त हो जाता है। अच्युतच्युतं अनिवारणीयतम् का हन्ता इन्द्र सानन्द विचरण करने लगता है।

यह सब प्राण ही प्राण है। इस प्राण से सब प्राणी प्राणमान हैं। प्राण ही उपासना की वस्तु है। रागादि इन्द्रियॉ उसी की चेतना से अनुप्राणित हैं। प्राण ही सब की सत्ता का कारण है। वृत्र उसके पास पहुँचते ही चूर–चूर हो जाता

है——— जैसे मिट्टी का ढेला शिलाखण्ड से टकराकर। यह उद्गोथ कथा का सदेश है।

वरूण ऋत का अधिष्ठातृ देव है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति उसकी जननी है। इसका फल अमृतत्व हैं। कुटिलमार्गावलम्बन वरूण के व्रत की अवहेलना है। ऋत विरोधियो को वरूण अपने पास में जकड लेता है। इसीलिए 'शुनःशेप सूक्त' मे ऋषि उत्तम, मध्यम, अधम तीनो पाशो को शिथिल कर देने को कहता है, जिससे कि वह अनागा होकर अदिति की ——— प्रकृति की उपासना मे तत्पर हो जाय। जहॉ पाप है वहीं निश्रृति है। निश्रृति असत् है, तम् है, मृत्यु है, बन्धन है। इसीलिए वृहदारण्यक मे ऋषि असत् से सत् की ओर, तम् से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमृतत्व की ओर जाना चाहता है।

प्रजापति के निरूक्त और अनिरूक्त दो रूप है। निरूक्त अल्प है, मृत्यु है। अनिरूक्त अनन्त एव अमृत है। प्रजापति 'क' है, वही 'ख' भी है। 'क' पूर्ण आनन्द है, और 'ख' शून्य ऊर्ण नाभि के तागों की तरह उसी की कुक्षि मे सृष्टि और विलय दोनो है। प्रथम केन्द्र है, शेष उसी की परिधि मे है। पर दोनो ही पूर्ण हैं, एक पूर्ण से दूसरे पूर्ण की व्यक्ति होती है, फिर भी दोनों के दोनो, पूर्ण ही रहते हैं। इसका संज्ञान ही भूमा है। भूमा ही सुख है– भूमा वैसुखम्। वही अमृत है। वही विशिष्ट जिज्ञासा की वस्तु है। वह संदेह और तर्क के परे है। उस पर तर्क करना गार्गी का अति प्रश्न है।

शुनश्शेपाख्यान का शुनश्शेप आध्याप्म अर्थ में

मुमुक्ष मानव आत्माए है। वरूण अपरिमित विस्तार की अधिपति दिव्य शक्ति है। मातृभूता पृथ्वी और पितृभूत द्युलोक ने सब को अन्धकार के राजा के हाथ भौतिक सुखों के बदले बेंच दिया है जगत के प्रपच रूपी यज्ञ में जीवन रूपी

यज्ञस्तम्भ के साथ मन, प्राण और अन्न की लिप्सा ने हमें पाशबद्ध कर दिया है। इसीलिए शुनःशेप वरूण से रोता पाशन्मुक्ति की अभ्यर्थना करता है। और अन्त मे बन्धनहीन हो ऋतम्भरा आदि प्रज्ञाओ को प्राप्त कर अधिमानस होता हुआ अतिमानस की कोटि तक पहुँच जाता है।

उपनिषदों की संवाद–कथाएं अध्यात्म विद्या की प्राण है। इन सवादो मे जनमानस को आकृष्ट करने वाली सर्वाधिक आकर्षक बात यह है कि वह इतने गम्भीर दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों के प्रतिपादन में हमारे प्राचीन महर्षियों की पर्युत्सुक अन्वेषण–वृति निरन्तर वहिरंग तक सीमित न रहकर वस्तु के अन्तस्तत्व तक पहुँचने के लिए आतुर रहती है वृहदारण्योकोपनिषद् (२/११) में एक अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य बालाकि वाराणसी नरेश अजातशत्रु के पास पहुँचता और दावे के साथ कहता है कि, मैं तुम्हे ब्रह्म का प्रत्यक्ष कराने में समर्थ हूँ वह प्रत्येक शरीर मे, सूर्य में, चन्द्रमा में, विद्युत में, आकाश मे, वायुमण्डल में, अग्नि मे, जल में और जल मे पड़ते प्रतिबिम्ब में, धूप और छॉव मे, ध्वनि में, प्रतिध्वनि में , जागरण में और जागने वाले की ऑख में अन्तर्व्याप्त पुरूष तत्व को ही ब्रह्म नाम देता है किन्तु राजा के सामने उसकी ज्ञान गरिमा चूर–चूर हो जाती है। और वह पुरूषत्व के सच्चे स्वरूप को तब जानता है जब समिरपाणि ही राजा की शिष्यता स्वीकार कर लेता है। ब्रह्म सचमुच आत्मानुभव के निरन्तर विकास के अतिरिक्त और आत्मबोध के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह सृष्टि की विविधता यह अनेकता तो सचमुच ऐसी ही है जैसे कही जलती आग से फूटती चिनगारियॉ दिशा–दिशा में फैल जायें, कोई मकडी अपने ही चारों ओर अपने ही उगले थूक से एक जाली सी बुन दे। आत्म बोध की समाप्ति भी इसी एक अनुभव मे जाकर होती है। यह सब चराचर जगत् में सारे लोकलोकान्तर मानव दानव – किसी एक तत्व की बाह्यलीला है– एक ही आत्मा के बोध का विस्तार हैं।

छान्दोग्योपनिषद् (८/७/१२) में आत्मा के स्वरूप की बडी मार्मिक विवेचना है– देवो में इन्द्र और असुरो मे विरोचन प्रजापति के चरणो में ३२ वर्षों तक विधिवत शिष्यवत बैठे कि वे आत्मा के स्वरूप को जान सके प्रजापति ने दोनो की परीक्षा ली– जब दो व्यक्ति परास्परापेक्षी होते हैं तो उनकी ऑखो में पड रही प्रतिच्छाया ही क्या वह आत्मा नही होती है? विरोचन को जैसे आत्म लाभ हो गया। आत्मविभोर हो वह भाइयो के पास पहुँचा, और बताया, शरीर रक्षा ही सर्वस्व है यही आत्म विद्या का आरम्भ और अन्त है। किन्तु इन्द्र जानता था कि प्रजापति चकमा दे रहें है। ३२ वर्षों के चिन्तन मनन के बाद वह पुनः आचार्य के समीप गया। प्रजापति ने इस बार कहा– आत्मा शरीर मे नहीं है, ऑख में पड़ती छाया मे नही– स्वप्न में प्रत्यक्षवत दृष्ट कोई अभय अमरत्व है जिसे कुछ लोग ब्रह्म भी कह लेते है। इन्द्र को इससे कुछ सन्तोष अवश्य हुआ, किन्तु अभी वह देवों के समीप नहीं पहुँच पाया था कि सन्शय ने उसे रोका 'आत्मा स्वप्न की तरह कोई अनित्य वस्तु नही हो सकती है।' ३२ वर्षों के बाद उसे पुनः आचार्य ने आदेश दिया–'आत्मा के दर्शन मनुष्य गहरी नींद में ही कर सकता है, उस नींद में जिसमें कि स्वप्नों का कोई नामोनिशान न रह गया हो। किन्तु इस शून्यता मे भी इन्द्र को सन्तोष न हुआ पॉच वर्ष और बीते। इस बार प्रजापति का दीक्षान्त कथन था– 'यह शरीर सचमुच मर्त्य है–मृत्यु का निधान है, किन्तु साथ ही अमर और अशरीर आत्मा का निवास स्थान भी । जब तक आत्मा इस शरीर से लिप्त रहती है, सुख और दुख का अनुभव करती है। यह परिज्ञान होते ही कि शरीर आत्मा का अपना धर्म नहीं है, वह एक ही क्षण में ही सुख दु ख से ऊपर उठ जाती है।

आत्म तत्व को ही कहीं कही उपनिषदों में प्राण तत्व भी कहा गया है यह प्राण ही वस्तुतः उपासना की वस्तु है। इन्द्रियों की सामर्थ्य उसके समक्ष अति तच्छ है एक बार इन्द्रियों और प्राण मे विवाद हुआ कि कौन श्रेष्ठ है? निर्णय के लिए सबने प्रजापति को चुना। प्रजापति ने कहा–'मुझे क्यों व्यर्थ मे ही बीच में लाते हो?

आपस में ही निर्णय क्यो नही कर लेते? महान वह है जिसके शरीर छोड चले जाने पर शेष के लिए और भी बढ जाय।'

सबसे पहले वाणी विदा हुई। एक वर्ष तक रूठी रहीं, किन्तु शरीर का काम वैसे ही यथापूर्व चलता रहा जैसे कि पहले चलता आया था। आखिर मूक व्यक्ति तो भी जी ही लेते हैं।

ऑखें गयी, फिर कान चला गया, यहॉ तक मन भी चला गया। किन्तु इससे जीवन में बाधाएं ही आयीं, मृत्यु नहीं। क्योंकि अन्धे बहरे भी तो जी ही लेते हैं, और तो और विचार शक्ति के नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य आत्म हत्या तो नहीं कर लेतें। सभी इन्द्रियॉ पुनः लौट आयीं। इससे उनमे कुछ विनम्रता तो अवश्य ही आयी। अब प्राण की बारी थी। उसके भी जाने की तैयारी की। पर जैसे कोई घोडा बलपूर्वक रस्सी को खींचकर भागने का प्रयास करे और जमीन में गडा कीला इधर उधर उखड़ने लगे वही अवस्था इन्द्रियों की होने लगी। यही बात है कि शेंष इन्द्रियों को प्राणनाम तो दिया जाता है। लेकिन वाणियां श्रोत्राणि तथा मनांसि आदि बहुवचनान्त रूपों में कोई नहीं कहता, किन्तु प्राण को प्राण न कहकर उसे 'प्राणाः' कहा गया।

'याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–संवाद' परमार्थिक सत्य के स्वरूप को उद्‌घाटित कर देने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं। प्रव्रज्या के समय याज्ञवल्क्य कात्यायनी और मैत्रेयी में सम्पत्ति का विभाजन करना चाहते हैं, किन्तु मैत्रेयी चौंककर कहती है–स्वामी ! सम्पत्ति के इस बॅटवारे में यदि आप मुझे धन से परिपूर्ण सारी पृथ्वी भी दे दें तो भी क्या मै उससे अमृत को आसानी से प्राप्त कर लूँगी। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया– धन–धान्य और सम्पत्ति से अमृत तो प्राप्त नहीं होगा किन्तु तुम्हारा जीवन वैसा ही हो जायेगा, जैसा प्रायः साधन वान लोगों का हो जाया करता है। मैत्रेयी ने कहा– तो मै यह सब लेकर फिर क्या करूगीं? 'इतने दिन अमृत खोज करके यदि आपने

कुछ पाया हो तो मुझे दो, बस उसी की दो बूँद चाहिए। मै आपसे मात्र उसी की याचना करती हूँ। और तब अन्तत याज्ञवल्क्य देवार्थ के विश्लेषण का संदेश दे, आटम तत्व की खोज का उपाय बताते हैं।

उद्दालक वारुणि और श्वेतकेतु सवाद में आत्मतत्व की सूक्ष्मता और एक ही तत्व की विविध नामरूपता का वर्णन है बारह वर्षों तक विद्याध्ययन के पश्चात् श्वेतकेतु अतीव हर्षित हो उठा। अपने को अनूचान मान बैठा। किन्तु उसका ज्ञानाभिमान उस समय चूर्ण–चूर्ण हो गया जब पिता ने उससे ब्रह्म विषयक प्रश्न किया जिसके जानने से सबकुछ ज्ञात हो जाता है। श्वेतकेतु मौन साधे रहा। ब्रह्म के बारे मे कुछ न बता सका। अन्त में पिता ने उसे उपदिष्ट किया। जिस प्रकार तरह–तरह के फूलों से रस लेकर मधुमक्खिया मधु का निर्माण करती हैं और सब रसों को एक कर देती हैं– उसी प्रकार देहान्त कं समय उस आदि सत् में विलय के अनन्तर प्राणिमात्र में दृष्ट वह पूर्वविविधता पुन दृष्टिगत नही होती जैसे कि मधु में सम्पृक्त विभिन्न पुष्पों के सुरभि और माधुर्य को अलग कर सकना असम्भव होता है उसी प्रकार प्राणी को– शेर, चीता, भेडिया, पक्षी, कीड़े –मकोड़े कुछ भी हो मूलतः सब एक ही थे। और एक ही हो जायेंगे।

अधीत–ग्रन्थ–सूची

१. **वैदिक साहित्य एवं संस्कृति :** आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा सस्थान,३७ बी० रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी पंचम स०१९८०

२ **साहित्य एवं संस्कृति :** डा० निर्मला भार्गव, देवनागर प्रका० जयपुर, २,१९७२

३ **वैदिक साहित्य :** प० रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी ४५८

४ **वैदिक साहित्य की रूपरेखा**–छा० रसिक बिहारी जोशी एव डा० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, साहित्य निकेतन कानपुर

५ **वैदिक माइथालोजी :** अनु० रामकुमार राय, चौखाभा विद्या भवन, वाराणसी १९६१

६ **संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास :** वाचस्पति गेरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,१९६७

७. **हिस्टी आप संस्कृत निदरेवर**– आ० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर काशी.

८. **हिस्टी आफ संस्कृति लिटरेचर**–ए०ए० मैक्डानल, मोतीलाल बनारसी दास, नयी दिल्ली

९. **ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर**– वा०१, पार्ट१,एम० विण्टर नित्ज, युनिवर्सिटी आफ कोलकत्ता,१९५९

१० **ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर** · एम मैकडानल, इलाहाबद१९२६

११ **ए हिस्ट्री ऑफ एन्सिएण्ट संस्कृत लिटरेचर** मैक्समूलर, चौ०स० सिरीज आफिस, वाराणसी १९६८

१२ **रिलीजन आफ द वेद :** ब्लूमफील्ड , लन्दन १९५३, न्यूयार्क १९०८

१३ **ऋग्वेदिक लिजेण्ड थ्रू द एजेए :** एच एल० हरियप्पा, हिसेडक्सन सिरीज,१९५३

१४. **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन इन वेदिक एथिक्स :** आर० आर० मरेर, न्यूयार्क १९५३

१५. **ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ रिलिजन इन वेदिक लिटरेटर :** पी०एस० देशमुख, आक्सफोर्ड, १९५३

१६. **आर्कटिक होम इन द वेदाज :** बालगगाधर तिलक–क, बम्बई,१६५६ स,कलकत्ता १६५६

१७ **वैदिक आख्यान** · गगाधर राय–चौ० भवन, वाराणसी।

१८ **ऋग्वेद संहिता मण्डलः** १ वाल्यूम सायणाचार्य, एन०एस०सन्त लोक स्माकर मदिर ,पूना १६३३

१६ **ऋग्वेदसंहिता** ७ भाग सायणाचार्य सा० विश्वबन्धु बी०बी०आर० आई १६६३–६४

२० **शतपथ ब्रम्हण :** सायण तथा हरीश्वरमिश्र भाष्य सहित ५ भाग लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेत, बम्बई,१६४०

२१ **ऐतरेयब्राम्हण** ख० १–२ सुधाकर मालवीय–तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

२२ **ऐतरेयब्राम्हण :** सायणभाष्यसहित–आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावली १६३०

२३. **शतपथब्राम्हण भाग–१ .** गगाविष्णु श्रीकृष्णदास मलिक–लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई १६४०

२४. **शतपथब्राम्हण :** वेवर सम्पादित– बर्लिन लन्दन १६५६

२५. **ऋग्वेद :** पं० गंगा सहायक शर्मा–सस्कृति साहित्य प्रकाशन दिल्ली १६७६

२६ **ऋग्वेदका हिन्दी भाष्य :** स्वामी दयानंद सरस्वती नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली–७

२७ **ऋग्वेदानुक्रमणी :** आचार्य शौनक

२८. **निरूक्त :** शिवनायण शास्त्री, इण्डलोजिकल बुक हाउस, वाराणसी दिल्ली।

२६ **निरूक्तम् :** खण्ड१, उमाशकर शर्मा, चौ०वि०भवन वाराणसी १६८३

३० **ऋग्वेदिक आर्य :** राहुल सांस्कृत्यायन –किताब महल, इलाहाबाद तथा दिल्ली १६५७

३१. **वृहददेवता :** रामकुमार राय चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

३२. **महाभारत :** भाग १–४ महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन–गीताप्रेस, गोरखपुर

३३ **महाभारत :** ख १–२, जयदयालगोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय गोरखपुर

३४. **संक्षिप्त महाभारत :** चिन्तामणि विनायक वैध–रामचन्द्र गोविन्द दास एण्ड सन्स, वैभव प्रस, बम्बई–१६२१

३५ **नीतिमंजरी :** द्या द्विवेदी—शालिग्राम शर्मा हरिहर मण्डल कालभैरव बनारस सिटी

३६ **वैदिक माइथालोजी :** ए०ए० मैक्डानेल, बाम्बे एजूकेशन सोसाइटी प्रेस,१६८६

३७ **निरक्त दो खण्ड :** दुर्गाचार्य कृत वृत्ति समेत—आनदाश्रम, पूना १६२१—२६

३८ **महाभारत** : बी०एस० भण्डारक—रिसर्च इन्स्टीट्यूट , पूना

३६ **ऋग्वेदसंहिता :** अनु०एच०एच०विल्सन,७भाग—लन्दन १६५०,८८

४० ————————विश्वेश्वरानद वैदिक रिसर्च इ० होशियारपुर,१६२६ १६६३—६५

४१ **ऐतरेय ब्राम्हण :** हरिनारायण आप्टे—आनदाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना १६३०—३१

४२. **रिलिजन आफ वेद** . ओल्डेन वर्ग, लदन १६२५

४३ **ऋग्वेदभाष्यभूमिका :** हरिदत्त तडेकर आगरा १६७१

४४ **काठकसंहिता :** सातवलेकर—स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्र १६४३

४५ **छान्दोग्योपिनिषद** . प्रो० रघु श्रीवास्तव तथा लोकेश चन्द्र नागरपुर, १६५४

४६. **साण्डय ब्राम्हण :** चौ० संस्कृत सिरीज,१६३५—१६३६

४७. **तैत्तिरीय ब्राम्हण :** आनंदाश्रम ग्रन्थावली,१६३४मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १६६४

४८. **निघण्टु पदकोष** : कलकत्ता १६५२

४६ **पंचविश्वब्राम्हण** : केन्द्रीय सस्कृत विद्यापिठ तिरूपति १६६७

५० **मैत्रायाणी संहिता :** सातवेलकर— आध्रसतारा १६४२

५१ **वैदिक देवशास्त्र :** डा० सूर्यकान्त—मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, नयी दिल्ली१६६१

५२ **वैदिक देवता :** उद्भव एवंविकास, गयाचरण त्रिपाठी, भारतीय विद्याप्रकाशन दिल्ली, वाराणसी

५३ **वैदिक गाड्स :** डा० रेले, ऑक्सफोर्ड १६५१

५४. **संस्कृत साहित्य का समीझात्मक इतिहास** डा० कपिलदेव द्विवेदी

५५ **संस्कृति साहित्य की प्रवृत्तियाँ :** डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाहन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

५६. **वैदिक वाड्.मय का इतिहासः** डॉ० सूर्यकान्त मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास नयी दिल्ली

५७. **वैदिक वाड्.मय का इतिहासः** भगवाददत्त—वैदिक अनुसंधान मण्डल माडल टाउन, पंजाब,

५८ **वैदिक इण्डेक्सः** मेक्डानेल तथा कीथ—मोतीलाल बनारसी दास चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

५६ **वैदिक कोष** हसराज १६३६

६० **वैदिक पदानुक्रमकोष** : स० विश्वबन्धु शास्त्री, १६ भाग विश्वेश्वरानद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर १६५६

६१ **वैदिक बिब्लियोग्राफी** : प्रथम भाग—आर०एन० दार्ण्डेकर कर्नाटक पब्लिशिग हाउस १६४६

६२ **वैदिक बिब्लियोग्राफी** : दूसरा भाग—आरएन० दाण्डेकर, पूना विश्वविद्यालय, १६६१

६३ **वैदिक कोश** : सूर्यकान्त—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय १६६३

६४ **हिम्न्स आफ द ऋग्वेद** : अनु० आर०टी०एच० ग्रिपिथ दो, भाग चौ० सस्कृत सिरीज, चतुर्थ स० १६६३

६५. **महाभारत की नामानुक्रमणिका** : हिन्दी अनु०सहित, रामनरायण लाल इलाहाबाद, १६४६—१६५१

६६. **डिस्कवरी ऑफ इण्डिया** प० जवाहरलाल नेहरू

६७. **मिसलेनियस एस्सेज** : एच०टी० कोलब्रुक

६८. **एथिक्स ऑफ इण्डिया** : वा८, हाप्किन्स